CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत चिंतामणि

द्वितीय खंड

- आचार्य बृहस्पति

- श्रीमती सुमित्रा कुमारी
- श्रीमती सुलोचना बृहस्पति

लय
णसी-५
2A

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

7 3

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, भदैनी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत चिंतामणि

(द्वितीय खण्ड)

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अ:1/52A
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, कबीरचौरा
वाराणसी-5

संगीत चिंतामणि

(द्वितीय खण्ड)

आचार्य बृहस्पति
श्रीमती सुमित्राकुमारी
श्रीमती सुलोचना बृहस्पति

बृहस्पति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
करुणानिधि, करौंदी
वाराणसी-5

प्रथम संस्करण—१९८७

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :
वृहस्पति पब्लिकेशन्स
D/४-C डी० डी० ए० फ्लैट्स
मुनीरका, नई दिल्ली-११००६७

मूल्य : १२० रुपये

आवरण :
नरेश्वरदत्त शर्मा

मुद्रक :
रूपाभ प्रिंटर्स
४/११५ विश्वासनगर, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

दो शब्द

मेरे पूज्यपाद गुरु और पति आचार्य बृहस्पति ने अपनी प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री के नवीन संग्रह की जो कल्पना की थी, वह आज साकार हो रही है, यह मेरे लिए अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है। हमारे मँझले आत्मज चि० आमोद वर्धन इस तर्पण कार्य के श्रेय के एकमात्र अधिकारी हैं। मैं उनके समग्रतया सुखी और सफल जीवन के लिए हार्दिक आशीर्वाद देती हूँ। वे चिरायु हों और पितृ-तर्पण के इस पुनीत कार्य में सतत सफल हों, यह केवल मेरी नहीं, सभी संगीत-साधकों, शोधार्थियों की शुभ कामना होगी ऐसी मेरी श्रद्धा है।

मेरे नाम से इस संकलन में जो सामग्री जा रही है, वह "त्वदीयं वस्तु गोविन्द" वाली उक्ति को ही चरितार्थ करती है।

आशा है प्रस्तुत संग्रह की सामग्री का संगीत जगत् में व्यापक स्वागत होगा। पूज्यपाद आचार्य जी की आत्मा हमें सत्प्रेरणा देती रहे यही प्रार्थना है।

डा० प्रेमलता शर्मा ने सदा ही हमारा मार्गदर्शन किया है। इस पुस्तक के प्रकाशन के कार्य में उनका सहयोग मार्गदर्शन व पुस्तक की भूमिका लेखन के लिए मैं हृदय से उनकी कृतज्ञ हूँ। संकलन में सहयोग के लिए मेरी बड़ी बहन सुश्री सरयू कालेकर एवं आर्थिक सहयोग के लिए कलकत्ता के श्री नन्दलाल जी टाँटिया का धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। मुद्रण कार्य में अपूर्व तत्परता के लिए रूपाभ प्रेस के संचालक श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल धन्यवाद के पात्र हैं। आचार्य जी की स्मृति को सजीव करने से संबंधित हमारे प्रत्येक आयोजन में जिनका सहयोग और उत्साह वर्धन हमारा सम्बल रहता है, उन परम आत्मीया श्रीमती रविप्रभा वर्मन के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

निवेदिका
सुलोचना बृहस्पति

बुधवार दिनांक १४ जनवरी १९८७
मकर संक्रान्ति
वि० सं० २०४३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

आचार्य बृहस्पति की लेखनी से हिन्दी जगत् और विशेष रूप से भारतीय संगीत मण्डल प्रायः तीस वर्ष से सुपरिचित है। उनके लेखों का बृहत् संग्रह 'संगीत चिन्तामणि' के नाम से सन् १९६६ में प्रकाशित हुआ था। इसी संग्रह में श्रीमती सुमित्रा कुमारी के कुछ लेख भी उसी जिल्द में द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत रखे गए थे। ये लेख आचार्य बृहस्पति द्वारा अनुमोदित थे।

सन् १९७६ में 'संगीत चिन्तामणि' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसमें केवल आचार्य बृहस्पति के ही लेख थे। प्रथम संस्करण की अपेक्षा ग्यारह नवीन लेख इसमें थे और कुछ लेखों का परिवर्तन-परिवर्धन कर दिया गया था। आचार्यजी के कई लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। इन लेखों के एक नवीन संग्रह का 'संगीत चिन्तामणि' के द्वितीय खण्ड के रूप में उन्होंने संकल्प किया था। इस संकल्पित संग्रह में 'संगीत चिन्तामणि' के प्रथम संस्करण में प्रकाशित श्रीमती सुमित्रा कुमारी के लेखों में से कुछ चुने हुए लेखों का भी समावेश करने का उनका विचार था। साथ ही, श्रीमती सुलोचना बृहस्पति के कुछ अप्रकाशित लेखों को सम्मिलित करने का भी संकल्प था। ये लेख सुलोचनाजी द्वारा आचार्यजी के जीवन-काल में ही लिखे गए थे और आचार्यजी द्वारा अनुमोदित थे। इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह की पूरी सामग्री आचार्यजी की विचार-धारा की ही प्रतिनिधि है। उनके संकल्प के अनुसार ही यह संग्रह प्रस्तुत है।

सभी पूर्व प्रकाशित लेखों का सन्दर्भ देने का यथासंभव यत्न किया गया हैं। किसी भी लेखक की चिन्तन-धारा के पूर्वापर-क्रम का ज्ञान शोधार्थी के लिए आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से लेखों के प्रकाशन का सन्दर्भ देना उचित समझा गया है। ऐतिहासिक यथार्थ की दृष्टि से यह आवश्यक भी है।

स्वयं आचार्यजी की लेखनी से प्रस्तुत अथवा उनकी छत्रच्छाया में प्रस्तुत यह सामग्री संगीत के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त मूल्यवान है। विशेष रूप से, आचार्यजी के देहान्त के बाद इसका मूल्य असीम हो गया है। इसलिए इस बिखरी हुई सामग्री का एकत्र संकलन और प्रस्तुति सर्वथा स्वागत-योग्य है। आचार्यजी के अप्रकाशित लेख भी इस संग्रह में हैं।

प्रस्तुत संग्रह में शुद्ध स्वरावलि जैसी अवधारणाओं पर विचार-विमर्श, भारतीय संगीत की परम्परा का वाद्यों, प्रबन्ध-प्रकारों (ध्रुपद-धमार आदि) के माध्यम से आकलन, कथक नृत्य के परम्परागत रूप का विश्लेषण, अमीर खुसरो के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण, शोध-प्रक्रिया का विवेचन, विद्याधरी बाई और अच्छन महाराज जैसे समर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयोद्धाओं का परिचय, भातखण्डे-काल की चिन्तन-धारा की समालोचना इत्यादि के रूप में लक्ष्य—लक्षण का समालोचनात्मक आकलन है। यह सामग्री भारतीय संगीत के विविध आयामों को स्पर्श करती है और भावी शोध के लिए आधार-भूमि प्रस्तुत करती है।

मुझे पूर्ण आशा है कि प्रस्तुत संकलन का भरपूर स्वागत होगा।

प्रेमलता शर्मा
उपकुलपति
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़ (म० प्र०)

बुधवार
दिनांक १४ जनवरी, १९८७
मकर-संक्रान्ति
वि० सं० २०४३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

आचार्य बृहस्पति

१. शुद्ध स्वरावलि, प्राकृतिक स्वरावलि तथा आधार स्वरावलि (पृ० १७-२३)

स्वरों की शुद्धता और सार्थकता; षड्जग्रामीय शुद्ध सप्तक और काफी ठाठ; भातखण्डे जी के मूल स्वर; कल्याण-प्रथम ठाठ; भैरव-प्रथम राग; वीन पर श्रुति-दर्शन; श्रुतियों के विषय में भ्रान्ति।

२. महाभारत के सांगीतिक स्वर (पृ० २४-२७)

प्रविभागवान्; इष्ट, अनिष्ट और संहत

३. धैवत (पृ० २८-२९)

तंबूरा-गान्धार; मध्यम-धैवत भाव।

४. भारतीय वाद्य परम्परा (पृ० ३०-३५)

वाद्यों का उत्पत्ति; वाद्योंके प्रकार; गीत अनुकरण के प्रकार; वृत्ति; वीणा के प्रकार; वंश का महत्व; अवनद्ध वाद्यों के प्रकार; घनवाद्यों के प्रकार।

५ खयाल और उसका विकास (पृ० ३६-४१)

(एक विचार-विमर्श)

६. 'बंदिश' अर्थात् 'चीज़' और उसका महत्व (पृ० ४२-४७)

निबद्धगान; तानसेन के ध्रुवपद; सदारंग की रचनाएं; नई बंदिशें; स्व० भातखण्डे जी के विचार; भातखण्डे जी की दृष्टि में गीत रचना के सिद्धान्त;

७. धमार (पृ० ४८-५३)

औरंगजेब का संगीत प्रेम; होली पर्व की विशेषता; 'धमार' शब्द का अर्थ; लोक-संगीत में 'धमार'; वैष्णवसंतों के 'धमार' पद; सदारंग परम्परा के पखावजी; राम-पुर-दरबार के तन्त्री-वादक; धमार ताल की मात्राओं का विभाजन; मुग़ल दरबार तथा अन्तःपुर की होली; सदारंग की रचनाएं; मनरंग, नूररंग, सबरंग तथा अदारस द्वारा रचित 'धमार' के एक-एक पद का उदाहरण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. कथक : एक पुरातन तथ्य (पृ० ५४-५६)

प्राचीन वाङ्मय में कथक शब्द; नृत्त, नृत्य और नाट्य; नाचने वालों के भेद; लास्य और कथक शैली; मुहम्मद करम इमाम और कथक-शैली; जानी साहब और कथक शैली; कथक और जयपुर; कथक नाच की सीमाएँ; कथकों का कर्त्तव्य;

९. मन्दिरों में कथक नृत्य (पृ० ६०-६६)

कथक शब्द का अर्थ तथा पर्याय; तेरहवीं शती ई० में कथक रीति का उल्लेख; चौदहवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में सम्प्रदायों का पुनरुद्धार; सोलहवीं शती ई० में रासलीला और रामलीला का प्रचार; राधागोविन्द-संगीतसार ग्रन्थ की रचना; दरबारों में कथक नृत्य का रूप।

१०. भारतीय संगीत के परम भक्त अमीर खुसरो (पृ० ६७-८२)

भारतीयों का उच्चारण-नैपुण्य; भारत, ज्ञान-कोष; ब्राह्मणों की विद्वता और श्रेष्ठता; भारतीय संगीत की श्रेष्ठता; अरब के संगीत की अपेक्षा भारतीय संगीत की श्रेष्ठता; विदेशियों के लिए भारतीय संगीत की अगम्यता; भारतीय संगीत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अमीर खुसरो के प्रयत्न; हिन्दी-भक्त खुसरो; कैकुबाद के युग में खुसरो के साथी; जलालुद्दीन खिलजी के युग में अमीर खुसरो और उनके संगीतजीवी साथी; अलाउद्दीन खिलजी के युग में अमीर खुसरो और उनके संगीतज्ञ साथी; अचल सारिकाओं वाली वीणा का जन्म; दक्षिण-भारत पर इस वीणा का प्रभाव; राग वर्गीकरण का नवीन आधार; कव्वाल बच्चों का परहेज और कलावंतों का सामीप्य; खुसरो कव्वाली के आविष्कारक नहीं; खुसरो कौल के आविष्कारक नहीं; खुसरो तराना के आविष्कारक नहीं; खुसरो सितार के आविष्कारक नहीं; तबले के आविष्कारक अमीर खुसरो नहीं; खुसरो के समसामयिक कुछ अन्य कलाकार; गायक खुसरो; उपसंहार।

११. अमीर खुसरो की संगीतज्ञता (पृ० ८३-८८)

(एक पाकिस्तानी मुस्लिम की दृष्टि में)

१२. अमीर खुसरो, किंवदंतियां और पृष्ठभूमि (पृ० ८९-९४)

(एक पाकिस्तानी मुस्लिम की दृष्टि में)
अमीर खुसरो के मत्थे अनेक बातों को मढ़ने का कारण; शाहजहां के युग में कपोल-कल्पनाओं में वृद्धि; औरंगजेब के युग में सैफुद्दीन फकीरुल्लाह का कमाल; मुहम्मद करम इमाम की गप।

१३. शोध का पहला पाठ और कुछ उदाहरण (पृ० ९५-९८)

शोध का पहला पाठ संदेह; कुछ उदाहरण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१४. गीत और रस (पृ० ९९-१०१)

गीत का लक्षण; रसास्वाद; नाट्य में रस-परिपाक की प्रक्रिया; गीत में रस-परिपाक।

१५. गीत (रञ्जक स्वर-सन्दर्भ) और रस (पृ० १०२-११०)

स्वर-लक्षण; रञ्जक स्वर-सन्दर्भ; गीत में रस-परिपाक की प्रक्रिया।

१६. क्या हिन्दुस्तानी संगीत भारत में ही विदेशी है ? (पृ० १११-११६)

(भारतीय संगीत के विषय में विश्व के समक्ष एक चिन्तनीय वक्तव्य)

१७. स्वर-शास्त्र दोहावली (पृ० ११७-१२३)

मंगलाचरण; ग्राम-स्थापना; षड्ज-ग्राम; मध्यम-ग्राम।

१८. स्वर्गीय विद्याधरी बाई (पृ० १२४-१२८)

१९. स्वर्गीय अच्छन भैया (पृ० १२९-१३१)

श्रीमती सुमित्रा कुमारी

१. मुआरिफुन्नग्मात की कुछ शंकाएँ और उनका समाधान (पृ० १३२-१८१)

'लक्ष्य संगीत' के विषय में स्व० भातखण्डे जी की अस्पष्ट उक्तियां, उन उक्तियों से उत्पन्न भ्रम और उसके परिणाम; रामपुर दरबार में भातखण्डे जी का प्रवेश; रामपुर से होने वाले लाभों के विषय में भातखण्डे जी का कथन; ठाकुर नवाबअली खां और भातखण्डे; दोनों में कुछ मतभेद; ठाकुर साहब की कुछ मान्यताएँ; ठाकुर साहब और हारमोनियम; अखिल भारतीय संगीत-परिषदों में ध्रुवपद गायन; ठाकुर साहब की मान्यताओं से उठने वाले प्रश्न; ठाकुर साहब के प्रश्न, उनका आधार और समाधान; श्रुतियों का मूल उपयोग; विभिन्न मूर्च्छनाओं में बीस ध्वनियां; भातखण्डे बिलावल; विभिन्न रागों में प्रयोज्य बीस ध्वनियां; दरबारी; आधुनिक मेलों में मध्यमग्राम; षड्जग्राम और मध्यमग्राम के आधुनिक राग; रत्नाकरोक्त रागों में कोमल गान्धार और कोमल निषाद; कल्लिनाथकृत मूर्च्छना-व्याख्या की यथार्थता; मूर्च्छना-मेल और ठाठ; संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में शुद्ध तान; षड्जविहीन तान; स्वरों की शुद्ध अवस्था; षड्जग्राम का ही अवशेष (भ्रान्ति); दक्षिण के राग-वर्गीकरण पर मुस्लिम प्रभाव; ग्राम सिद्धान्त के ज्ञान का अभाव; मेलवादियों द्वारा षड्ज शब्द का अनर्थ; ईरानी बारह स्वरों का प्रभाव; रामामात्य, अहोबल, श्रीनिवास, गोविन्द दीक्षित और वेंकटमखी; तानप्पा या तानभट्ट; भावभट्ट, वेंकटमखी एवं रामामात्य; भातखण्डे जी का षड्जग्राम; श्रुतिसंख्या का प्रयोजन; ऋषभादि श्रुतिमण्डल; 'लक्ष्य-संगीत' पर हारमोनियम का प्रभाव; बिलावल के निषाद की मूर्च्छना; रामकृष्ण कवि की महत्त्वपूर्ण टिप्पणी; वेंकटमखी की चौबीस श्रुतियाँ; श्रीनिवास की चौबीस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुतियां; मेल और मूर्च्छना का मूलभूत पार्थक्य; चक्रिक प्रक्रिया; दाक्षिणात्यों के ऋषभ-धैवत; श्रीकण्ठ की श्रुति-व्यवस्था; अहोबल और श्रीनिवास का तन्त्री-विभाजन और श्रुतिसंख्या-नियम; चक्रिक प्रक्रिया में श्रुति-संख्या नियम का अभाव; श्रुतियों का नामकरण और पश्चाद्वर्तियों द्वारा उसका दुरुपयोग; निष्कर्ष।

(पृ० १८२-२०६)

२. एक शोध-यात्रा

स्व० वज़ीर खां और सैयिद इब्नेअली; सैयिद साहब और वज़ीर खां की सन्तति; अब्दुर्रहीम नाई; सैयिद साहब और वीरेन्द्रकिशोर रायचौधरी; हैदरअलीखां और वज़ीर खां; वज़ीरखां और छम्मनसाहब के सम्बन्ध; इनायतखां ध्रुवपद गायक; मुहम्मद अलीखां; रामपुर परम्परा का व्यवहार; सैयिद साहब का संग्रह; अल्लाबन्दे खां और नसीरुद्दीनखां; नवाबहामिदअलीखां का गाना; फिरोज खां (अदारंग); रौशन खां डागुर; मुहम्मदहुसेन दतिया वाले; अहमद अलीखां सरोदिये; बाबू अलाउद्दीन (अब उस्ताद अलाउद्दीन खां) और अहमद अलीखां, आबिद अलीखां; वज़ीर खां और बाबू अलाउद्दीन; हाफिज अलीखां और मुन्ननखां; मांझ, जिला; लक्ष्य-संगीत; नज़ीरखां और ठाकुर नवाबअली; मुआरिफुन्नग़मात प्रथम भाग का प्रथम संस्करण; हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की तीनों भागों का प्रकाशन १९१४ ई० पूर्व; भातखण्डे जी और छम्मनसाहब; अखिल भारतीय संगीत-परिषद (१९१६, १९१८) और रामपुर; छम्मनसाहब की मृत्यु; तत्पश्चात् क्रमिक-पुस्तक-मालिका का प्रकाशन; हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में रामपुर के गुणियों की चर्चा और उसका कारण; बन्दिशों के साथ उनके सिखाने वालों के नाम का लेना; वजीरहुसेन खां से प्रश्नोत्तर; बुनियाद हुसेन खां; नसीरुद्दीन खां और अल्लाहबन्दे खां; पूरब और पंजाब की ठुमरी; सलामतहुसेन खां और उनके पूर्वज; इस वंश के द्वारा बाबू अलाउद्दीन को शिक्षा; सरगम करना; सलामत हुसेनखां छम्मनसाहब के शिष्य; कुछ और महत्त्वपूर्ण बातें; छम्मन साहब और उनके सखा; छम्मनसाहब और हारमोनियम; भैया गनपत राव अखतर जान और मुईजुद्दीन खां; ठुमरी और तवक्कल हुसेनखां 'सनद'; छोटा ख़याल और बड़ा ख़याल; क्रमिक-पुस्तक-मालिका में छोटा खयाल समझी जाने वाली ठुमरियां; ठुमरी और ख़याल में स्वर-प्रयोग; तोड़ी और गूजरी; दरबारी तोड़ी; बिलासखानी; वज़ीर हुसेनखां और आडिशन; सूहा और सुघराई में अन्तर; नायकी; सूर मलार और सूरदासी; चाँदनी केदार; बिहाग और बिहागड़ा; औडुवबिहाग; पूरिया और मारवा में गान्धार; बिडार अंग; भैरवी में षड्ज चालन; छोटा ख़याल और बड़ा ख़याल; अड़तालीस मात्रा का इकताला; नारियों के कण्ठ का स्वर; गले की तैयारी के उपाय।

(पृ० २०७-२१६)

३. ठुमरी और स्व० भातखण्डे

चीज के चार तत्व; ठुमरी के दो भेद; 'सनदपिया' की ठुमरियां; ठुमरी में शृंगार-संवद्ध भावनाओं का चित्रण; भातखण्डे जी के विचार रामपुर दरबार के नवाब के प्रति; 'कदरपिया' की ठुमरियां; भैया गनपतराव द्वारा ठुमरी रचना और उनके शिष्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमती सुलोचना बृहस्पति

१. वेद और गान (पृ० २१७-२२४)

'ऋग्वेद' प्राचीनतम ग्रन्थ; गेय रूप सामवेद; सामगान में स्वरों का प्रयोग; यज्ञ में गान का उपयोग।

२. इन्द्रप्रस्थ-मत और उसका जन्म (पृ० २२५-२२८)

सूफी सन्तों का भारत में प्रवेश; अमीर खुसरो का जन्म स्थान; भारतीय और ईरानी कलाकारों की गोष्ठियाँ; इन्द्रप्रस्थ-मत सम्प्रदाय का जन्म; सप्तक और अष्टक में भेद; ऐमन-पहला ठाठ।

३. दरबार और संगीत (पृ० २२९-२३२)

हुजूरी वर्ग; शहरी कलाकार; सदारंग का युग; रामपुर दरबार में संगीत; वर्तमान युग में संगीत।

४. हज़रत अमीर खुसरो (पृ० २३३-२३६)

अमीर ख़ुसरो की भारतीयता; संक्षिप्त जीवनी; खुसरो का संगीत ज्ञान; ख़ुसरो के विषय में प्रसारित भ्रान्त धारणाओं का निराकरण; अमीर ख़ुसरो का सांगीतिक महत्व।

५. तानसेन विषयक ऐतिहासिक तथ्य (पृ० २३७-२४५)

शेख अबुल फ़जल; मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूनी; जहाँगीर; मुजतमदखां; शाहजहाँ; फ़खरूल्लाह; जीवन सम्बन्धी तथ्य; शेख मुहम्मद गौस और तानसेन; स्वामी हरिदास और तानसेन; तानसेन की जाति; तानसेन के गुरू; तानसेन का धर्म; तानसेन की योग्यता; तानसेन से सम्बद्ध भ्रान्तियाँ और उसका मूल।

६. उत्तम गाना (पृ० २४६-२४७)

गायक की प्रमुखता; गायन में राग, ताल तथा बंदिश का महत्व; वाग्गेयकार; गायन में भाषा का महत्व।

७. स्वर्गीय दबीरखां (पृ० २४८-२५१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशित लेखों का सन्दर्भ

आचार्य बृहस्पति

१. शुद्ध स्वरावलि, प्राकृतिक स्वरावलि तथा आधार स्वरावलि ।	(सं० क० वि०, जून, १९७६)
२. महाभारत में साङ्गीतिक स्वर ।	(संगीत, मई, १९७९)
३. धैवत ।	नवीन
४. भारतीय वाद्य परम्परा ।	,,
५. ख़याल और उसका विकास ।	(संगीत, जुलाई, १९७६)
६. 'बंदिश' अर्थात् 'चीज़' और उसका महत्व ।	(संगीत, सितम्बर, १९७६)
७. धमार ।	नवीन
८. कथक : एक पुरातन तथ्य ।	,,
९. मन्दिरों में कथक नृत्य ।	,,
१०. भारतीय संगीत के परम भक्त अमीर खुसरो ।	(संगीत, मई, १९७६)
११. अमीर खुसरो की संङ्गीतज्ञता	(संगीत, जुलाई, १९७६)
१२. अमीर खुसरो, किंवदन्तियां व पृष्ठभूमि	(संगीत, अप्रेल, १९७७)
१३. शोध का पहला पाठ और कुछ उदाहरण	(संगीत कला विहार, जुलाई, १९७६)
१४. गीत और रस ।	नवीन
१५. गीत (रञ्जक स्वर सन्दर्भ) और रस	,,
१६. क्या हिन्दुस्तानी संगीत भारत में ही विदेशी है ?	(संगीत, अक्तूबर, १९६७)
१७. स्वर-शास्त्र दोहावली ।	(संगीत, दिसम्बर, १९६९)
१८. स्व० विद्याधरी बाई	(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवम्बर, १९६९)
१९. स्व० अच्छन भैया ।	नवीन

श्रीमती सुमित्रा कुमारी

१. मुआरिफुन्नग़मात की कुछ शंकाएँ और उनका समाधान ।	(सं० चि० प्रथम संस्करण)
२. एक शोध-यात्रा ।	(सं० चि० प्रथम संस्करण से)
३. ठुमरी और स्व० भातखण्डे ।	(ठुमरी-सम्मेलन विशेषांक १९६५)

श्रीमती सुलोचना बृहस्पति

१. वेद और गान ।	नवीन
२. इन्द्रप्रस्थ मत और उसका जन्म ।	,,
३. दरबार और संगीत ।	,,
४. हज़रत अमीर खुसरो ।	,,
५. तानसेन विषयक ऐतिहासिक तथ्य	,,
६. उत्तम गाना	,,
७. स्व० दबीर खां	(मार्च १९७०, साप्ताहिक हिन्दुस्तान)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्ध स्वरावलि, प्राकृतिक स्वरावलि तथा आधार स्वरावलि

अनेक पुस्तकों में यह लिखा मिलता है कि अहोवल हमारे 'काफी-ठाठ' के स्वरों को शुद्ध मानते थे, कुछ लोग कहते हैं कि भरत के षड्जग्राम के स्वर काफी-ठाठ के स्वरों से मिलते-जुलते थे, कुछ लोगों का कथन है कि पश्चिम वालों के शुद्ध स्वर ही शुद्ध स्वर हैं, अर्थात् प्राकृतिक हैं और दक्षिण भारत के लोग अपने मुखारी मेल (स, रे, रे, म, प, ध, ध, सं) को अपने शुद्ध स्वर कहते हैं।

हम इन सभी के सन्मुख 'नतमस्तक' हैं, परन्तु प्रश्न यह है कि वह 'शुद्धता' क्या है जो किसी शुद्ध स्वरावलि में होना चाहिए।

'प्राकृत' शब्द का अर्थ 'संस्कारहीन' है, प्राकृत वस्तु संस्कारयुक्त होने पर 'शुद्ध' होती है। 'शोधन' एक क्रिया है, जो वस्तु को निर्मल बना देती है। अतः शुद्ध स्वरावलि किसी विशिष्ट शोधन क्रिया का परिणाम होना चाहिए।

स्वरों के नाम सार्थक हैं। षड्ज का अर्थ छः अन्य स्वरों को उत्पन्न करने वाला या 'आदिम' स्वर है, 'निषाद' का अर्थ है, जिस पर स्वरों की समाप्ति हो, या जो 'अन्तिम स्वर' हो और 'मध्यम' का अर्थ है, आदिम (षड्ज) और अन्तिम (निषाद) के ठीक बीचोबीच का स्वर।

सुरीला तानपूरा मिलाने में समर्थ यदि कोई भी गुणी एक ऐसा 'स्वर मंडल' ले ले, जिसमें मन्द्र, मध्य और तार सप्तक की स्थापना के लिए ढंग के तार चढ़े हों, तो वह पहले तार पर मन्द्र षड्ज चौथे चार पर मध्यमं और सातवें तार पर उस मध्यम के संवादी निषाद की स्थापना कर सकता है। यही षड्ज, मध्यम और निषाद अपने-अपने अर्थ के अनुसार शुद्ध हैं, क्योंकि 'मध्यम' इन तीनों में ठीक बीच का स्वर है।

अब तीसरे तार पर निषाद के संवादी गान्धार और पांचवें तार पर षड्ज के संवादी पंचम की स्थापना कर लीजिए।

अब मध्यम के तार को छेड़ते-छेड़ते छठे तार को वहाँ मिला लीजिए कि बागीश्वरी का धैवत (स्वयम्) बोलने लगे। मध्यम और धैवत का यह स्वयम्भू संबंध सनातन और सहज है। 'धैवत' का अर्थ ही 'धीवानों' (स्वरज्ञों) से सम्बन्ध रखने वाला स्वर है। अब दूसरे तार पर धैवत का संवादी ऋषभ मिला लीजिए।

यह क्रिया तनिक भी कठिन नहीं। अवशिष्ट तारों पर मध्य और तार सप्तक के स्वर पर स्थापित कर लीजिए। ऐसी अवस्था में प्रथम तार पर मन्द्र षड्ज, आठवें तार पर मध्य षड्ज और पन्द्रहवें तार पर तार षड्ज होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि आप क्रमशः 'स, रि, ग, म, प, ध, नि, ध, प, म, ग, रि, स, ऽ' छेड़ें, तो यह 'षड्ज' की मूर्च्छना होगी। आरम्भ और अन्त में होने के कारण इसमें 'षड्ज' उभरता अर्थात् मूर्च्छित होता है। इस प्रसंग में मूर्च्छित होने का अर्थ उभरना है, चेतनाहीन या बेहोश होना नहीं।

इस सीधी-सादी विधि से भरत से भी पूर्व तुम्बुरु ने भारतीय स्वर-सप्तक पूर्ण करके मन्द्र; मध्य और तार-स्थान का ज्ञान प्राप्त किया था। धैवत और निषाद का द्रष्टा तुम्बुरु को कहा गया है।

इस स्वरावलि के ऋषभ और पंचम को यदि साथ-साथ छेड़ा जाये, तो लगेगा कि यदि पंचम को 'तनिक सा' उतारा जाये, तो 'रे-प' में षड्ज-मध्यम-संबंध हो जाये। यह 'तनिक सा उतार' ही भरत की प्रमाण-श्रुति है और ऋषभ का संवादी यह 'पञ्चम ही मध्यमग्राम का पंचम' है।

अस्तु, षड्जग्राम में 'पंचम' षड्ज का संवादी होता है और मध्यम-ग्राम में ऋषभ का।

इस क्रिया के करने में कागज, कलम, दवात या वैज्ञानिक प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं, एक स्वर-मण्डल और दो सुरीले कान आवश्यक हैं।

प्रस्तुत 'म, ग, रि, स' को सामगान करने वाले लोग क्रमशः उदात्त (ऊंचा) अनुदात्त (नीचा) स्वरित (उच्चता और नीचता से युक्त अर्थात् ऊंचे की अपेक्षा नीचा और नीचे की अपेक्षा ऊंचा) और उदात्त कहते थे।* जब म, 'ग रि, स' के संवादी 'सं, नि, ध, प' स्थापित हुए, तब ये भी क्रमशः उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और उदात्त थे। इनमें 'स' नवीन स्वर न होकर 'स' का अग्रिम स्थानीय रूप था। अतः मध्यम अवशिष्ट सात स्वरों के बीच में रहा।

उपर्युक्त मूल शुद्ध सप्तक के आधार पर उसके स्वरों का ठीक-ठीक पारस्पर अन्तराल जानने के लिए स्वरशास्त्र के प्रवर्तकों ने प्रसिद्ध चार सारणाएं कीं ? और इस निश्चय पर पहुंचे कि उदात्त ध्वनियां चतुः श्रुतिक, अनुदात्त ध्वनियां द्विश्रुतिक और स्वरित ध्वनियां त्रिश्रुतिक हैं।[१]

यह निश्चित होने पर निष्कर्ष निकला कि षड्ज-पंचम, ऋषभ-धैवत और गान्धार-निषाद में तेरह श्रुतियों का तथा षड्ज-मध्यम और मध्यम-निषाद में नौ श्रुतियों का अन्तर है।

मध्यम-धैवत में धीवानों को स्वभावतः सुनाई देने वाला सात श्रुतियों का अन्तर है।

---

* 'ऊंचे' का अर्थ 'सबसे अधिक क्षेत्र वाला', 'नीचे' का अर्थ सबसे कम क्षेत्र वाला' और 'स्वरित' का अर्थ 'ऊंचे की अपेक्षा कम और नीचे की अपेक्षा अधिक क्षेत्रवाला है। —ले०

१. संगीत चिन्तामणि, पृष्ठ ३५८ प्र० संस्करण, भरत का संगीत सिद्धान्त पृ० २२-२५।

२. आचार्य अभिनव गुप्त, संगीत चिन्तामणि, पृ० ९६-९७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह भी कहा गया कि यदि धैवत से संवादी करने के लिए गान्धार को दो श्रुति चढ़ा दिया जाए, तो वह 'अन्तर गान्धार' हो जाता है। इस अवस्था में 'स, रे, ग, म, प, ध, नि' ही मध्यमग्राम के 'मप्धनिसरेग' हो जाते हैं।[3]

चौदहवीं सदी ई०, में अमीर खुसरो और गोपाल नायक के सहयोग से ऐसी वीणा का निर्माण हो चुका था, जिस पर आधुनिक बारह स्वरों की ध्वनियों के लिए अचल पर्दे थे और कल्लिनाथ (१४४८ ई०) के समय जनसाधारण ग्राम-मूर्च्छना-तत्त्व भूल चुके थे, षड्ज और पञ्चम अचल हो गये थे, षड्जग्रामीय शुद्ध सप्तक का स्थान काफी ठाठ ने ले लिया था, जन्य और जनक के मेलन में भेद हो गया था, क्योंकि अमीर खुसरो की मृत्यु (१३२५ ई०) से केवल ग्यारह वर्ष बाद १३३६ ई० में स्थापित विजयनगर-साम्राज्य के संस्थापक हरिहर (शासन-काल १३३६-१३५३ ई०) के मार्गदर्शक प्रसिद्ध विद्वान् विद्यारण्य (माधवाचार्य) पन्द्रह मेलों में पचास उपलब्ध रागों का वर्गीकरण, कल्लिनाथ की टीका (१४४८ ई०) से प्रायः सौ वर्ष पूर्व कर चुके थे।[4]

अस्तु, देशी रागों में श्रीराग को शार्ङ्गदेव ने सर्वप्रथम गिनाया है, जो कल्लिनाथ के समय काफी ठाठ में गाया जाता था, अतः अहोबल ने काफी ठाठ को शुद्ध-स्वरयुक्त मेल कह दिया, उनके सामने स्वरों की शुद्धता की कोई परिभाषा न थी। मेरु, दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें, दसवें और बारहवें पर्दे पर अहोबल के शुद्ध, स्वर्गीय भातखण्डे की काफी और दाक्षिणात्यों के खरहरप्रिया मेल के स्वर ही बीन पर गूंज रहे हैं।

अकबरी युग में आगरे के कलाकार शंकराभरण या भातखण्डे जी के बिलावल को ही मूल स्वर (शुद्ध स्वर नहीं) मानते थे, क्योंकि ईरानियों की दृष्टि में यही 'बुजुर्ग (श्रेष्ठ) 'मुकाम' था। वास्तव में ये स्वरावलि भरत के शुद्ध षड्जग्राम की निषाद से आरम्भ होने वाली 'रजनी' मूर्च्छना थी।[5]

भातखण्डे जी के बिलावल में 'म-ध' का अन्तर आठ श्रुति और 'ग-ध' का अन्तर दस श्रुति है। वास्तव में भातखण्डे जी का धैवत उनके चार श्रुतियों वाले ऋषभ का संवादी है।

स्व० ओंकारनाथ जी का बिलावल ठाठ उत्तर भारतीय बीन के सातवें, नवें, ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, सोलहवें और अठारहवें पर्दे पर मिलता है, यही पाश्चात्यों का प्राकृतिक स्वर-सप्तक या षड्जग्राम की मध्यमादि सान्तरा मूर्च्छना है।

रही दक्षिण के रामामात्य, सोमनाथ, वेंकटमखी और स्व० के० वासुदेव शास्त्री की बात, तो शुद्ध स्वरों के सम्बन्ध में इनकी भूल 'संग्रह चूड़ामणी' की भूमिका में मान ली गई है और कनकांगी मेल की तथाकथित शुद्ध स्वरता का खण्डन भली-भाँति हो चुका है।[6]

श्रीनिवास शास्त्री आयंगर

---

३. आचार्य अभिनव गुप्त, पृ० ९६, भरत का संगीत-सिद्धान्त, पृ० ११-१२।

४. संगीत शास्त्र, १४१, १५३, १५६, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ३५।

५. संगीत चिन्तामणि, पृ० २५०, मुकाम मूर्च्छना और मेल।

६. 'भरत का संगीत सिद्धान्त', पृ० २३-२४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कल्याण' को प्रथम ठाठ मानने वाले लोग इसी के स्वरों को आधार मान कर अन्य ठाठों की प्राप्ति करते हैं। यही दाक्षिणात्यों का कल्याणी मेल और भरत के षड्जग्राम की, निषाद से प्रारम्भ होने वाली सान्तरा मूर्च्छना हैं। अहोवल ने इस स्वरावलि को कल्याण, लोचन ने रामन तथा वेंकटमखी ने इसे कल्याणी कहते हुए 'तुरुष्कप्रिय' बताया हैं।[७]

इन्द्रप्रस्थ-मत के लोग भैरव को प्रथम राग कहते हैं। कोई भी हस्तलिखित ध्रुवपद-संग्रह उठा लीजिये आप को आरंभ में भैरव के ध्रुवपद मिलेंगे। सूर्योदय से दिन का आरम्भ होता है, अतः दिन के प्रथम प्रहर से रात्रि के अन्तिम प्रहर तकके रागों की 'चोजें' ऐसे हस्तलिखित संग्रहों में दी होती हैं। भैरव के स्वरों को शुद्ध स्वर कहने का साहस आज तक किसी को नहीं हुआ। इस भैरव के ऋषभ-गांधार तथा धैवत-निषाद में पाँच-पाँच श्रुतियों का अन्तर है। भैरव ठाठ को आधुनिक आचार्यों ने 'ग्राम-संश्लेष' का परिणाम कहा है, जो लोकरुचि का परिणाम है।[८]

भैरव ठाठ के स्वरों को विद्यारण्य 'गुर्जरी मेल' कहते थे, परन्तु सोलहवीं शती ई० में दक्षिणके भारत भ्रमणकारी सन्त पुरन्दरदास ने इस ठाठ को 'मालव-गौड' (मालवा और गौड की स्वरावलि) मेल कह कर इसे कर्नाटक-पद्धति के राग-शिक्षण का आधार बनाया, इस उत्तर भारत के प्रथम राग भैरव की स्वरावलि कर्नाटक में राग-शिक्षण का आधार बन गई।[९] इस स्वरावलि को उत्तर या दक्षिण में किसी ने शुद्ध स्वरावलि न कहा। 'संगीतदर्पण' में महाराष्ट्र निवासी दामोदर ने भैरव को आदि राग कहा है।[१०]

अस्तु, दाक्षिणात्यों का शंकराभरण, भातखण्डे जी का विलावल, ओंकारनाथ जी का बिलावल, मेलवादियों का कल्याण, भरत की किसी-न-किसी मूर्च्छना के आदिम स्वर को 'स' कह देने का परिणाम हैं।

अहोबल का 'श्री' या हमारा काफी ठाठ मध्यमग्राम की, ऋषभ से आरम्भ होने वाली वह मूर्च्छना है, जिसमें अन्तर गान्धार और काकली निषाद का प्रयोग हुआ है।[११]

बीन पर श्रुति-दर्शन

वीन पर दाहिनी ओर से तार क्रमशः 'म', 'स' और अतिमन्द्र 'प' में मिले होते हैं। 'म' वाले तार को चौथे पर्दे पर दवाने से 'ध' त्रिश्रुतिक बोलेगा, परन्तु अनुमन्द्र 'प' वाले तार को दूसरे पर्दे पर दवाकर छेड़ने से चतुःश्रुतिक धैवत बोलेगा। कारण यह है कि चौथा पर्दा दूसरे पर्दे की अपेक्षा तीन श्रुतियों के अन्तर पर या मेरु से सात श्रुतियों के अन्तर पर स्थापित है, अतः इस पर बोलने वाला धैवत त्रिश्रुतिक होगा, देवल, क्लेमेंट्स और ओंकारनाथ जी इसे पसन्द करेंगे, बिलावल राग में यही

---

७. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ५०, १४१, चतुर्दंडी प्रकाशिका मेल प्रकरण।
८. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २७९, २८०।
९. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० १४१।
१०. भरत कोष पृ० ४४५।
११. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ३७ एवं पृ० १३४ अर्थात् ५ घटक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयुक्त होता है और पाश्चात्यों का शुद्ध धैवत यही है। अनुमन्द्र अथवा अतिमन्द्र पंचम में मिले हुए तार को दूसरे पर्दे पर दबाने से चतुःश्रुति धैवत प्राप्त होगा, क्योंकि दूसरा पर्दा मेरु से चार श्रुतियों के अन्तर पर स्थापित है, इसे सुनकर अहोबल, भातखण्डे, वेंकटमखी इत्यादि के मत का पोषण होगा। काफी और भीम-पलासी जैसे रागों में यही प्रयुक्त होता है। पूर्वोक्त दोनों धैवतों का पारस्परिक अन्तर ही प्राचीनों की 'प्रमाण श्रुति' है।

जो लोग 'श्रुति' की चर्चा ही करते हैं, उनकी बात जाने दीजिये, परन्तु जिन्हें भगवान् के दिये हुए कान उपलब्ध हैं, वे बीन पर प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि उत्तर भारतीय 'नि-नि' और 'नि़-स' में 'पाये जाने वाले ही श्रुत्यन्तर बराबर नहीं हैं, नि-नि' का अन्तराल 'नि़-स' के अन्तराल की अपेक्षा अणुमात्र कम है 'ध-ध़' का अन्तराल 'नि-नि़' के अन्तराल की अपेक्षा भी कम है। वैज्ञानिक भाषा में 'नि-नि' के अन्तराल को २३ घटक और 'नि-स' के अन्तराल को २८ घटक कहा जाता है। प्रमाण श्रुति का अन्तराल ५ घटक है।

सारणा-क्रिया के परिणामस्वरूप तीन प्रकार की श्रुतियाँ सिद्ध होती हैं। महती श्रुति अर्थात् २३ घटक, उपमहती श्रुति अर्थात् १८ घटक और प्रमाण श्रुति।

इस प्रकार आप देखेंगे कि 'महती' श्रुति का परिमाण तेईस घटक, स और अतिकोमल ऋषभ के अन्तराल के रूप में हो तो एक श्रुति का परिमाण कहलाता है। देशी रागों में एक श्रुतिक प्रयोग भी पाया जाता है। कोमल ऋषभ की अपेक्षा अति-कोमल ऋषभ एक प्रमाणश्रुति (५ घटक) उतरा हुआ है, अतः एक श्रुतिक अति कोमल ऋषभ का परिमाण एक 'महती' श्रुति (२८ — ५ = २३) है।

बीन पर षड्ज पंचम और पंचम का संवादी ऋषभ चतुःश्रुतिक हैं। शुद्ध मध्यम कोमल गांधार से तीन श्रुतियों के अन्तर पर स्थित होने के कारण त्रिश्रुतिक रह गया है। शुद्ध धैवत त्रिश्रुतिक है।

प्रचलित बीन पर पर्दे एक विशिष्ट सिद्धान्त के अनुसार अचल रूप में स्थापित किये हुए हैं। अतः जिज्ञासुओं को उसमें एक-श्रुतिक, द्विश्रुतिक त्रिश्रुतिक इत्यादि अन्तराल प्रत्यक्ष दिखाई दे जाएंगे।

त्रिश्रुतिक और चतुःश्रुति के धैवत में प्रमाण श्रुति अन्तराल और 'स' एवं अतिकोमल ऋषभ के रूप में महती श्रुति (२३ सेवर्ट) का अन्तराल बीन पर प्रत्यक्ष है ही उपमहती श्रुति (१८ सेवर्ट या घटक) भी बीन के ध-ध और ग-ग के पारस्परिक अन्तरालों में प्राप्त होती है।

'स' से 'ग' का अन्तराल ९७ घटक या सप्तश्रुति है और 'स' से 'ग' का अन्तराल ७९ घटक या षट्श्रुति है। ९७ — ७९ = १८ घटक का अन्तर एक उप-महती श्रुति (१८ सेवर्ट) का अन्तर है।

जब स्वरों के अन्तराल समान नहीं हैं, तो उनके आधार पर प्राप्त श्रुतियों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तराल भला समान कैसे हो सकते हैं।

जिन आचार्यों ने तार की लम्बाई पर अपने स्वरों के स्थान स्थिर किये हैं, उन्होंने बाईस श्रुतियों के स्थान तार की लम्बाई पर निश्चित करने का साहस नहीं किया। एक ही तंत्रीवाद्य पर भरत की सारणा-विधि से एक ही समय भरत के स्वरों की बाईसों श्रुतियों का प्रदर्शन श्रुति दर्पण पर १९५६ ई० में प्रसिद्ध गुणियों के समक्ष पहली बार किया गया।[१२] इसमें मूल सप्तक और चार सारणाओं के लिए पाँच तार स्थापित किये थे।

श्रुतियों के विषय में भ्रान्ति

कुछ सज्जनों को यह भ्रम हो गया कि 'स' से 'सं' तक बराबर की बाईस ऊँचाइयों पर बाईस श्रुतियाँ स्थित हैं और विभिन्न रागों में विभिन्न श्रुतियों का चुनाव कर लिया जाता है। इन्होंने अपने विचार के अनुसार पहली श्रुति को टर्मिनस (बस या ट्रेन चलने का अड्डा) मान लिया। इन लोगों को ग्राम, मूर्च्छना इत्यादि की कल्पना आवश्यक और दुरूह प्रतीत हुई और इन लोगों ने बारह ध्वनियों को रागवर्गीकरण का आधार मान कर व्यवहार किया। इसका मत था कि श्रुतियों का प्रयोग स्वरों की विभिन्न संगति में होता है, ये लोग श्रुति का अर्थ केवल बड़ी मनोरंजक बात यह है ऐसे लोग अपने शिष्यों को क्रमशः 'अपनी समझ की' बाईसों श्रुतियाँ भी गले से गाकर बता दिया करते थे।[१३]

भरत ने तो 'शारीरी वीणा' (मानव-कण्ठ) में स्वर ग्राम, अलंकार, वर्ण, स्थान, जाति एवं साधारण स्वरों की ही सम्भावना बताई हैं, 'श्रुति-निदर्शन' के लिए दारू-वीणा (काठ की वीणा) का सहारा लिया है, क्योंकि एक साथ कई ध्वनियों की गूंज 'मत्तकोकिला' या 'स्वर-मण्डल' जैसे वाद्यों पर ही सम्भव है और उसी अवस्था में विभिन्न ध्वनियों की ऊँचाई-नीचाई की तुलना हो सकती है। कण्ठ के द्वारा, सप्तक के अन्तर्गत प्राप्त वास्तविक बाईस श्रुतियों का क्रमशः प्रयोग असम्भव है।

अस्तु, सौभाग्य की बात यह है कि उत्तर भारत की वीन और दाक्षिणात्यों की तंजोर वीणा में 'पर्दों' की स्थापना एक जैसी है। अतः आज के विद्यार्थियों को बीन की सहायता से यदि चतुःश्रुतिक एवं द्विश्रुतिक अन्तरालों के विषय में ज्ञान कराया जाये, तो अत्यन्त उपयोगी होगा। बीन में पर्दे 'अचल' है, अतः सुविधा होगी।

गायक को तंत्री का ज्ञान परमावश्यक है, क्योंकि विभिन्न सूक्ष्म अन्तरालों का तुलनात्मक ज्ञान वाद्य में ही सम्भव है।

कुछ लोगों ने यह मिथ्या प्रवाद फैला दिया है कि जिनका कण्ठ गाने के योग्य नहीं होता वही वादक होते हैं। सरस्वती जो वीणावादिनि है, उनका कण्ठ गाने के योग्य न होगा, ऐसा कौन कह सकता है।

स्व० बुन्दूखाँ जैसे सारंगीवादकों को इस दृष्टि से कैसे देखा जा सकता है।

---

१२. हमारे संगीत रत्न, द्वितीय संस्करण, पृ० १३ 'प्रमाण श्रुति' समझते थे।

१३. भातखण्डे स्मृति ग्रंथ, पृ० ३१०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारंगी भी एक प्रकार की वीणा[14] है, इसकी उपतंत्रियाँ (तरबें) ढंग से मिलाना अभ्यास-साध्य कार्य है।

वास्तविकता की खोज में सदैव श्रम और आयास होता है। जो लोग सुविधा-वादी हैं, उन्हें शोध के क्षेत्र से दूर रहना चाहिए।

मक्खी की छोटी-सी टाँग भी अभक्ष्य है, परन्तु निगलने वाले जीती हुई मक्खी भी पचा लेते हैं। जिन्हें मक्खी की टाँग दिखाई देती है, वे उसे कैसे खा सकते हैं? ●

---

१४. भरत-कोष, पृ० ७२१, पृ० ६६८ पर उद्धृत संगीत नारायण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाभारत में सांगीतिक स्वर

'महाभारत' को ज्ञान-विज्ञान का कोष कहा जाता है। कहा तो यहाँ तक गया है—'जो-कुछ 'महाभारत' में कहा गया है, अन्यत्र उसकी पुनरावृत्ति-मात्र है। जो-कुछ उसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

अश्वमेध-पर्व के अंतर्गत अनुगीता-पर्व में कहा गया है—

"आकाश में उत्पन्न 'प्रविभागवान्' शब्द दस प्रकार का है—१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गांधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. निषाद, ७. धैवत, ८. इष्ट, ९. अनिष्ट और १०. संहत।"*

'महाभारत' की प्रसिद्ध टीका नीलकंठी इस पर मौन है। अस्तु, इस कथन में 'प्रविभागवान्', 'इष्ट', 'अनिष्ट' और 'संहत' शब्द विचारणीय हैं।

प्रविभागवान्

शब्द तो अखंड है, विशिष्ट श्रुति-संख्या के अनुसार मंद्र, मध्य, तार-स्थान में स्वर-सप्तक की स्थापना उसका 'विभाजन' या 'विभाग' (विशिष्ट रूप में बाँटना) या षड्जग्राम एवं मध्यम-ग्राम के अंतर्गत स्वरों को व्यवस्थित करना है।

वर्णमाला के आधार पर जब सार्थक शब्दों की योजना होती है, तभी भाषा की सृष्टि होती है, इसी प्रकार स्वर-सप्तक के आधार पर रंजक जातियों अथवा रागों की अवतारणा से स्वर-सप्तक में रंजकता की सृष्टि ही स्वर-सप्तक को 'प्रकर्ष' (महत्त्व, गौरव) देकर व्यवहार के योग्य बनाती है। अतः 'प्र+वि+भागवान्' (प्रविभागवान्) शब्द का अर्थ ग्राम, जाति एवं राग इत्यादि के विभाग से युक्त 'शब्द' हुआ।

इष्ट, अनिष्ट और संहत

शब्द के उपर्युक्त दस भेदों में सात स्वर-संज्ञाएँ हैं, जो सप्तक में स्वरों के निश्चित स्थान का बोध कराती हैं। इष्ट, अनिष्ट, संहत स्थापित स्वरों के पारस्परिक संबंध की ओर संकेत करते हैं।

इष्ट का अर्थ 'वांछनीय, प्रिय या चाहा हुआ' है और 'अनिष्ट' का अर्थ 'अवांछनीय, अप्रिय या अनचाहा' है। जिससे प्रयोजन की सिद्धि हो, सुख हो, वही

---

* षड्जर्षभश्च गांधारो मध्यमः पंचमस्तथा।
अतः परं तु विज्ञेयो निषादो धैवतस्तथा॥
इष्टश्चानिष्ट शब्दश्च संहतः प्रविभागवान्। ('महाभारत' मूल, भाग ४, पृष्ठ ३२१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'इष्ट' है और प्रयोजन-सिद्धि में जो बाधक हो, वह अनिष्ट है।

दोनों ग्रामों में स्वरों की स्थिति देखिए—

षड्जग्रामीय स्वर	सा	रे͇	ग	म	प	ध	नि͇	सां
पारस्परिक श्रुत्यंतर	०	३	२	४	४	३	२	४
आदिम स्वर से श्रुत्यंतर	०	३	५	९	१३	१६	१८	२२
मध्यमग्रामीय स्वर	सा	रे	ग͇	म	प	ध	नि͇	सां
पारस्परिक श्रुत्यंतर	०	३	२	४	३	४	२	४
आदिम स्वर से श्रुत्यंतर	०	३	५	९	१२	१६	१८	२२

जो स्वर क्रमशः प्रयुक्त होने पर अच्छे प्रतीत हों और ठीक अपने स्थान पर स्वाभाविक रूप से लगें, वे परस्पर 'इष्ट' कहलाते हैं। तीन, चार, छह, सात, नौ और तेरह श्रुतियों के अंतर पर स्थित स्वर परस्पर 'इष्ट' हैं।

पाँच, आठ और दस श्रुतियों का अंतर 'अनिष्ट' है। 'सा-ग͇'. में पाँच श्रुतियों का अंतर है और 'प-नि͇' में भी। अतः 'सा-ग͇' प्रयोग में गांधार अपने स्थान से एक प्रमाणश्रुति चढ़कर स्वतः षट्श्रुतिक अंतर पर हो जाएगा, परंतु 'सा म ग͇' कहने पर पंचश्रुतिक ही रहेगा, क्योंकि उस अवस्था में गांधार का प्रयोग मध्यम के पश्चात् होगा। 'सा+९ म—४-ग̱' क्रम में श्रुत्यंतराल इष्ट हैं। 'प-नि͇' कहने पर निषाद एक प्रमाण-श्रुति चढ़कर पंचम की अपेक्षा छहः श्रुतियों के अंतर पर चला जाएगा, परंतु 'प सां नि͇' में निषाद अपने मूल स्थान पर रहेगा। कल्लिनाथ ने इसीलिए पंचश्रुतिक अंतर को अनिष्ट बताया है।[1]

षड्जग्रामीय स्वर-सप्तक में 'रे-प' में दस और 'ग̱-प' में आठ श्रुतियों का अनिष्ट अंतर है। अतः ये स्वर-संगतियाँ षड्ज-ग्राम में नहीं होतीं। मध्यम-ग्राम के 'रे-प' में नौ श्रुतियों का और 'ग̱-प' में सात श्रुतियों का इष्ट अंतर है, अतः मध्यम-ग्राम में ये स्वर-संगतियाँ होती हैं। सचमुच तो इन दोनों स्वर-संगतियों के कारण ही मध्यम-ग्राम की सृष्टि हुई है।

स्वरों का पारस्परिक 'विवाद' संबंध अत्यंत अनिष्ट है। 'रे-ग͇' एवं 'ध-नि͇'

१. स्वराणां पंचश्रुतित्वमनिष्टम्।
('संगीत-रत्नाकर', प्रथम अध्याय, साधारण-प्रकरण, आठवें श्लोक की टीका।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतराल 'ग-म' अंतराल 'नि-सां' अंतराल को 'विवाद' कहा गया है। 'ग' को अंश या आधार-स्वर होने पर 'रे' एक प्रमाण-श्रुति चढ़ता और 'रे' के अंश होने पर 'ग' एक प्रमाण-श्रुति उतरता है, इन अवस्थाओं में 'रे-ग' का पारस्परिक अंतराल एक 'महती श्रुति' (तेईस सेवर्ट या घटक) रह जाता है। 'ध' के अंश होने पर निषाद एक प्रमाण-श्रुति उतरता और निषाद के अंश होने पर धैवत एक प्रमाण-श्रुति चढ़ता है और इस अवस्था में 'ध-नि' का अंतर एक महती श्रुति रह जाता है। ये अवस्थाएं प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण होती हैं। स्वरों का यह उतरना-चढ़ना 'अनिष्टता' के निवारण के लिए है।[२]

'संहत' का अर्थ (संघातयुक्त) या 'समूही-भूत' है। परस्पर संवादी स्वर साथ-साथ छिड़ने पर अच्छे प्रतीत होते हैं। 'सा प', 'रे-ध', 'ग-नि' और 'सा-म' जुड़वाँ भाइयों-जैसे हैं, इसीलिए इन्हें 'यम' कहा गया है। 'यम' का अर्थ 'जुड़वाँ' है, मध्यमग्रामीय 'प-रे' भी यम हैं और षड्जग्रामीय 'ध-रे' का ही प्रतिरूप हैं। इसीलिए सात स्वरों को शौनक ने—'सप्त स्वरा ये यमास्ते' अर्थात् "जो सात स्वर हैं, वे 'यम' हैं।" कहा है।

'ऋक्-प्रातिशाख्य' में कहा गया है—'तथा सामसु क्रुष्ट प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ मंद्रातिस्वार्य्या इति ते यमा नाम वेदितव्याः।' अर्थात् 'सामवेद' में (अवरोह-क्रम से) क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र, अतिस्वार्य (षड्जग्रामीय प, म, ग, रे, सा, नि, ध) होते हैं।

'त्रितंत्र भाष्य' में कहा गया है—'तेषां खलु यमानां उत्तरोत्तर दीप्तिजा पूर्वपूर्वोपलब्धिः स्यात्। तत्कथम् अतिस्वार्य दीप्तिजा मंद्रोपलब्धिः, मंद्राच्चतुर्थोपलब्धिः, चतुर्थात्तृतीयः, तृतीयाद्द्वितीयः, द्वितीयात् प्रथमः, प्रथमात् क्रुष्ट उपलभ्यते।' अर्थात्—"उन 'यमों' की उत्तरोत्तर दीप्ति करने (चढ़ाने) से (अवरोही-क्रम से)

---

२. श्रुतियों के परिमाण तीन हैं—प्रमाण-श्रुति (५ घटक), उपमहती श्रुति (१८ घटक) और महती श्रुति (२३ घटक)। द्विश्रुतिक स्वरों में २८ घटक का अंतर है, जो पूर्ववर्ती स्वर के साथ ही उनके विवाद का द्योतक है। २८ में एक प्रमाण-श्रुति (५ घटक) का अंतर घट जाने के कारण यह विवाद दूर हो जाता है।
आधुनिक स्वर-संज्ञाओं की दृष्टि से 'सा' और अतिकोमल ऋषभ में, 'प' और अतिकोमल धैवत में, अतितीव्र 'नि' और 'सां' इत्यादि में एक महती श्रुति (२३ सेवर्ट) का ही अंतर है। ऐसे प्रयोग को ही काश्यप इत्यादि आचार्यों ने एकश्रुतिक प्रयोग कहा है—

काकल्यंतरयोगेन चतुस्त्रिद्व्येकक श्रुतीन्।
स्वरान् सर्वान् प्रयुज्जति रागभाषासु सर्वथा॥ ('भरतकोष', पृष्ठ ५४२)

आचार्य अभिनवगुप्त की दृष्टि में काश्यप की अपेक्षा भरत परवर्ती हैं। उनका कहना है—
कश्यपादिभिस्तावान् यो विनियोग उक्तः सोऽप्यत्र। अयमपि मुनिविनियुक्तोऽस्तु। परमतमप्रतिषिद्धमभिमत मिति न्यायात्।
('नाट्यशास्त्र', अध्याय २९, पृष्ठ ७०, 'अभिनवभारती')

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्व-पूर्व स्वरों की उपलब्धि होती है। वह कैसे ? अतिस्वार्य (ध) को चढ़ाने से 'मंद्र' (नि) की उपलब्धि होती है, 'मंद्र' (नि) को चढ़ाने से 'चतुर्थ' (षड्ज) की प्राप्ति होती है, चतुर्थ (षड्ज) को चढ़ाने से 'तृतीय' (ऋषभ) की प्राप्ति होती है, 'तृतीय' (ऋषभ) को चढ़ाने से 'द्वितीय' (गांधार), 'द्वितीय' गांधार को चढ़ाने से 'प्रथम' (मध्यम) और प्रथम (मध्यम) को चढ़ाने से 'क्रुष्ट' (पंचम) की प्राप्ति होती है।"

इन सातों स्वरों में परस्पर संवादी स्वरों को साथ छेड़ना अथवा अवरोही-क्रम से सातों स्वरों को वेगपूर्वक छेड़ना ही 'संहत' शब्द है।

यह विवेचन सिद्ध करता है कि दोनों ग्रामों, जातियों, जातिरागों इत्यादि का ज्ञान तो भारतीयों को 'महाभारत' की रचना से कहीं पूर्व हो ही चुका था, वे स्वरों के 'एक-श्रुति' प्रयोग से भी भली-भाँति परिचित हो चुके थे।

जो लोग 'नाट्यशास्त्र'-बोधित स्वर-सिद्धांतों को दूसरी शती (ईस्वी) का मानकर भरत पर 'पायथोगोरस' का प्रभाव सिद्ध करना चाहते हैं, उनकी आँखें खोलने के लिए महाभारतोक्त शब्द-लक्षण पर्याप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धैवत

अच्छे ढंग से मिलाये हुए तंबूरे की ध्वनि को यदि ध्यानपूर्वक सुना जाये, तो मन्द्र षड्ज की ध्वनि से, गूँज के रूप में, जो गांधार सुनाई देता है, उसे बम्बई के लोग 'तंबूरा गांधार' कहते हैं। यह 'तंबूरा गांधार' डॉक्टरों, वकीलों, हलवाइयों या मिनिस्टरों को तब तक नहीं सुनाई देगा, जब तक कि वे योग्य गुरु की सेवा में बैठ कर स्वर-साधना न करें।

मन्द्र षड्ज और तंबूरा गांधार का यह अन्तराल संसार में जिस व्यक्ति ने सबसे पूर्व सुना था, उस व्यक्ति का नाम था, 'तुम्बुरु'। यदि इस मन्द्र षड्ज की ध्वनि को 'मध्यम' कहें, तो 'तंबूरा गांधार' 'धैवत' हो जाएगा। अत: इस मध्यम और धैवत के पारस्परिक अन्तराल को हम 'मध्यम-धैवत-भाव' कहेंगे, पाश्चात्यों की भाषा में इसे 'कॉन्सोनेंस ऑव् थर्ड' कहा जाता है।

'मध्यम-धैवत-भाव' के रूप में इस प्राकृतिक सम्बन्ध का ज्ञान संगीत जगत् की एक अनुपम महत्वपूर्ण घटना है। इसी ज्ञान का परिणामस्वरूप 'सप्तक' की पूर्ति है। सभी भारतीय मनीषी इस बात पर सहमत हैं कि 'धैवत' और 'निषाद' का दर्शन तुम्बुरु को सबसे पहले हुआ।

मध्यम की ध्वनि से उपध्वनि के रूप में गुंजित होने वाली ध्वनि का नाम 'धैवत' रखा गया। 'धी' का अर्थ वह 'शक्ति' है, जो उपध्वनि के रूप में 'धैवत' को सुन सकती है। उस विशिष्ट शक्ति या 'धी' युक्त व्यक्ति 'धीवान्' है और 'धीवानों' के द्वारा प्रतिपादित स्वर 'धैवत' है।

'मध्यम और धैवत' का यह पारस्परिक सम्बन्ध नित्य और नैसर्गिक है, यह अलग बात है कि इस सम्बन्ध का ज्ञान सबसे पहले हमारे पूज्य पूर्वज तुम्बुरु को हुआ।

प्रसिद्ध यूनानी विद्वान् 'पायथॉगोरस' को इस प्राकृतिक अन्तराल का ज्ञान नहीं था, एक लम्बे युग के पश्चात् 'पायथॉगोरस' के अनुयायियों को इस 'कॉन्सोनेंस ऑव् थर्ड' का ज्ञान हुआ।[1]

पायथॉगोरस का काल ईसा से चार शताब्दी पूर्व माना जाता है, उस युग तक पाश्चात्य देशों का परम गुरु देश यूनान 'मध्यम-धैवत-भाव' अथवा 'कॉन्सोनेंस ऑव् थर्ड' से अपरिचित था।

बड़े से बड़ा दुस्साहसी व्यक्ति भी महर्षि वाल्मीकि को 'पायथॉगोरस' की

---

१. 'एनुसाइक्लोपीडिया ऑन रिलीजन एण्ड एथिक्स' नवम खण्ड, पृष्ठ ३७, सम्पादक जेम्स हेस्टिंग्स, न्यूयॉर्क।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपेक्षा परवर्ती कहने का साहस नहीं कर सकता, न भगवान् वेदव्यास को 'पायथॉगोरस' का परवर्ती कह सकता है। महर्षि वाल्मीकि ने 'विपञ्ची' का वर्णन किया है[२], जिसमें नौ तारों पर 'षड्ज, ऋषभ, गांधार, अन्तर गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद और काकली निषाद, के रूप में षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम का मूल ध्वनित रहता है और भगवान् वेदव्यास ने सातों स्वरों के अतिरिक्त स्वरों के पारस्परिक इष्ट, अनिष्ट और संहृत अन्तरालों का वर्णन किया है। ●

२. 'संगीत चिन्तामणि', द्वितीय संस्करण, 'वाल्मीकि और संगीत' नामक लेख। अथवा 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' भूमिका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय वाद्य-परम्परा

भारतीय शास्त्रकारों के मत में वाद्यों की उत्पत्ति का कारण देवाधिदेव शंकर हैं। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने के पश्चात् उद्वेग को शान्त करने के लिए भगवान् शंकर ने नंदी, नारद, तुम्वुरु इत्यादि को वाद्य-निर्माण के लिए प्रेरणा दी, फलस्वरूप वाद्यों का जन्म हुआ।

गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं। संगीत का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति है। वाद्य भी संगीत का मुख्य अंग है, इसलिए उसकी महिमा भी कम नहीं। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि श्रुति तथा शास्त्र प्रमाण को जानने वाला, वीणा वादन में संलग्न तथा ताल से अभिज्ञ पुरुष मोक्ष को अनायास प्राप्त कर लेता है।

राजाओं के अभिषेक तथा यात्रा के समय, विवाह, उपनयन आदि संस्कारों के अवसर पर, उत्पात, सम्भ्रम तथा युद्धकाल में, वीर रौद्ररस-प्रधान नाटकों के प्रयोग में, साधारण मंगल कृत्यों में, गाने नाचने वाले रंगस्थ व्यक्तियों के विश्राम के समय वाद्य बजाए जाते हैं। इन अवसरों पर इन वाद्यों का बजाया जाना उत्साह-वर्धन और मंगल करता है तथा दुःख का उन्मूलन करके हृदय में स्फूर्ति भर देता है।

स्वरूप की दृष्टि से भारतीय वाद्यों को चार प्रकारों में विभक्त किया गया है। इन चारों प्रकारों के नाम तत, सुषिर, अवनद्ध और घन हैं। जिन वाद्यों में तन्त्री अर्थात् तार का प्रयोग होता है, वे तत कहलाते हैं और जिन वाद्यों में वायु किसी छिद्र में होकर शब्द उत्पन्न करता है उन वंशी आदि वाद्यों का नाम सुषिर है। वीणा इत्यादि तत तथा वंशी इत्यादि सुषिर वाद्यों का कार्य गीत का पूर्णतया अनु-करण करना है। गायक के द्वारा प्रयुक्त स्वर, श्रुति, राग, मूर्च्छना और अलंकार इत्यादि का आदर्श अनुकरण वीणा इत्यादि तत वाद्यों में भी गीत की उत्पत्ति कर देता है।

जिन वाद्यों में चमड़ा, डोरी या बद्दी से बंधा होता है, वे अवनद्धवाद्य कहलाते हैं। तत और सुषिर वाद्यों का कार्य जहाँ गीत का उत्पादन और अनुकरण है, वहाँ मृदंग इत्यादि अवनद्ध वाद्यों का कार्य गीत में प्रयुक्त भाषा संबंधी ध्वनियों क, ख, ड इत्यादि का अनुकरण है। इस प्रकार मृदंग इत्यादि अवनद्ध वाद्य गीत का उप-रंजन करते हैं।

कांसा इत्यादि धातुओं से बने हुए वे वाद्य जिनमें दो धातु खण्डों के परस्पर आघात से ध्वनि उत्पन्न होती है, घन अथवा मूर्ति वाद्य कहलाते हैं। झांझ और मंजीरा इत्यादि की गणना इनमें है। इन घन वाद्यों का कार्य लय की दृष्टि से गीत और वादन का नापना है। घन वाद्य गति का अनुकरण भी करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीत का अनुकरण भी तीन प्रकारों में विभक्त है। ये प्रकार क्रमशः 'तत्व', 'अनुगत' और 'ओघ' कहलाते हैं। गीत के साथ-साथ मिलकर उसका पूर्ण अनुकरण मात्र 'तत्व' है। विलम्बित लय में गाये जाते हुए गीत के अनुकरण के साथ ही साथ वाद्य में द्रुत लय का प्रयोग चतुरतापूर्वक करके दिखाना और गीत से भिन्न स्थानों पर भी स्थितियों का प्रदर्शन 'अनुगत' कहलाता है तथा गीत के अन्त में विभिन्न वादकों के समुदाय के द्वारा गीत का भागशः सामूहिक अनुकरण 'ओघ' कहलाता है।

लय के भेद से तत और सुषिर वाद्यों की वादन-शैली में अन्तर पड़ता है। ये शैलियाँ तीन हैं और 'वृत्ति' कहलाती है। 'चित्र' नामक वृत्ति का प्रयोग द्रुतलय में होता है, इस वृत्ति में वाद्य की प्रधानता और गीत की अप्रधानता रहती है। 'वृत्ति' नामक वृत्ति का प्रयोग मध्यलय में होता है। इसके प्रयोग के समय गीत और वाद्य का महत्व समान रहता है तथा 'दक्षिणा' नामक वृत्ति का प्रयोग विलम्बित लय में होता है, जिसमें गीत प्रधान और वाद्य अप्रधान रहता है।

जहाँ वाद्यों का कार्य उत्पादन, उपरंजन और मान द्वारा गीत का अनुगमन है, वहाँ केवल वृत्त द्वारा सम्मिलित गीत वाद्य का अनुगमन भी है। यही नहीं, वाद्यों का स्वतंत्र महत्व भी है। वाद्यों के बजाने की स्वतंत्र शैली में केवल वादन होता है गीत और नृत्त की चर्चा तक नहीं होती। अभिनययुक्त नर्तन नृत्य तथा अभिनयरहित गात्र-विक्षेप नृत्त है। वाद्यों का स्वतंत्र वादन निर्गीत वादन कहलाता है, इसे गोष्ठी-वादन अथवा शुष्कवादन भी कहते हैं।

संगीत-दामोदर-कार शुभंकर के मत में वीणा के उनतीस प्रकार हैं, नारद के मत में वीणाएँ उन्नीस प्रकार की हैं और निशंक शार्ङ्गदेव ने ग्यारह प्रकार की वीणाओं का निर्देश किया है। निशंक शार्ङ्गदेव के द्वारा निर्दिष्ट भेदों में एक निशंक वीणा भी है, जिसके निर्माता स्वयं शार्ङ्गदेव थे। इस सम्बन्ध में शार्ङ्गदेव की व्यवस्था है कि जिस प्रकार भी स्वर में स्पष्टता एवं आकर्षण की उत्पत्ति हो, उसी प्रकार का आशय लेकर नये तंत्री वाद्यों का भी निर्माण कर लेना चाहिए।

स्वरों की उत्पत्ति का स्थान होने के कारण गायक के शरीर को भी शास्त्र-कारों ने 'गात्रवीणा' कहा हैं, मनुष्य निर्मित वीणाएं तो इस ईश्वर निर्मित वीणा का अनुकरण मात्र हैं। तत वाद्यों में वीणा प्रमुख है। वीणा का अर्थ यहाँ तार का बाजा है।

मुख्यतः वीणा के दो भेद हैं श्रुति-वीणा और स्वर-वीणा। श्रुति-वीणाएँ केवल छेड़ी जाती हैं। इनका कार्य गीत अथवा लय का अनुकरण नहीं है। एकतारे, दोतारे और तानपूरे इत्यादि की गणना श्रुति-वीणाओं में की जा सकती है। प्राचीन-काल में एक तो सात तार वाली श्रुति-वीणा होती थी जिसे चलवीणा कहा जाता था और दूसरी बाईस तार वाली श्रुतिवीणा होती थी जिसे ध्रुववीणा कहते थे। श्रुति-वीणा में सारें नहीं होती थीं।

गीत का अनुकरण करने वाली अथवा स्वतंत्र वादन में प्रयुक्त की जाने वाली वीणाएँ स्वर वीणाएँ कहलाती हैं। जिनमें बाएँ हाथ से सारों पर तारों को बजाकर विभिन्न स्वरों की सृष्टि की जाती है।

एकतंत्री वीणा में एक तार, नकुलवीणा में दो, त्रितन्त्रिका में तीन, चित्रा में सात, विपंची में नौ तथा मत्तकोकिला में इक्कीस तार होते हैं। शार्ङ्गदेव के मत में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इक्कीस तार वाली मत्तकोकिला तीनों सप्तकों तथा सातों स्वरों से स्वभावतः सम्पन्न होने के कारण सब वीणाओं में प्रधान है। अन्य वीणाएँ तो इसके साथ बज कर इसका उपरंजन मात्र करती हैं। वीणा वादकों के वृन्द में समस्त वीणा वादक मत्तकोकिला वादक का सहयोग और उसका अलंकरण रहता है। कल्लिनाथ के मत में मत्तकोकिला ही का दूसरा नाम 'स्वरमण्डल' है।

वीणाओं में मन्द ध्वनि को उत्पन्न करने वाले तार बाँस की छाल तथा स्नायु के भी हुआ करते थे। प्रायः गृध्र के वक्षस्थल की एक अंगुल से अधिक मोटी नली की 'सारें' रहती थीं। लम्बाई, चौड़ाई, तोंबों की संख्या, निर्माण तथा आकार सम्बन्धी तथा ध्वनि सम्बन्धी भेदों के कारण वीणाओं के अनेक प्रकार संभव हैं। साधारणतया वीणाओं की डाँड खैर अथवा रक्त चन्दन की लकड़ी से बनाई जाती थी, परन्तु आलपिनी नामक वीणा की डाँड बाँस की होती थी और इसमें तोंबे तीन होते थे। लघु किन्नरी वीणा की लम्बाई केवल तीन बित्ता होती थी और इसमें हाथी के बालों के बराबर मोटे लोहे के तार हुआ करते थे। बृहत् किन्नरी वीणा के तार स्नायु निर्मित होते थे। पीनाकी वीणा में डाँड का काम इकतालीस अंगुल लम्बे धनुष से होता था, जिसके दोनों कोने घोड़े के बालों से बनी इक्कीस अंगुल की डोरी से बँधे रहते थे। बीच में धनुष की चौड़ाई सवा दो अंगुल होती थी, धनुष के नीचे तोंबे बँधे रहते थे।

एकतन्त्री वीणा की डाँड तीन हाथ लम्बी और इसकी गोलाई एक बित्ता होती थी। एकतन्त्री वीणा के माहात्म्य का वर्णन करते हुए शार्ङ्गदेव ने कहा है कि इसके दर्शन और स्पर्श से भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है और मनुष्य ब्रह्म-हत्यादिक पापों से मुक्त होता है। वीणा का दण्ड शिव है, तन्त्री पार्वती है, ककुभ विष्णु है, पत्रिका लक्ष्मी है, तुम्ब ब्रह्मा है, नाभि सरस्वती है, दोरक वासुकि है, जीवा चन्द्रमा है और दोरिका सूर्य है। इस प्रकार सर्वदेवमयी होने के कारण यह वीणा सर्वमंगला है।

संस्कृत साहित्य में नारद और सरस्वती तो वीणाधर प्रसिद्ध ही हैं, परन्तु अनेक साहित्यकारों ने जिस अवन्तिराज उदयन के चरित्र का वर्णन करके अपनी वाणी को प्रसिद्ध किया है, उसकी जगद्वशीकारिणी वीणा घोषवती की कथा भी अमर है। घोषवती ने ही महासेनपुत्री वासवदत्ता को उदयन के प्रणय-बन्धन में बाँध दिया था। श्रुति का कथन है कि अश्वमेध यज्ञ में समवेदी लोग वीणा के साथ समगान करें।

वीणावादन में दाहिने हाथ के व्यापार नौ, वाएँ हाथ के दो तथा दोनों के मिलित व्यापार तेरह होते हैं और बाज के प्रकार दस हैं और बोल चौबीस हैं। कुछ वीणाएँ अंगुलियों और कुछ काष्ठ के कोण नामक उपकरण से बजाई जाती थीं।

एक कुशल वीणावादक को श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति, राग और ताल इत्यादि का वेत्ता, सुशरीर, स्थिरासन का अभ्यस्त, जितेन्द्रिय, निर्भय, बुद्धिमान, सावधान और गीतवादन-कोविद होना चाहिए। दोनों हाथ भी पूर्णतया इच्छानुसारी होना आवश्यक है।

सुषिर वाद्यों का महत्त्व तत वाद्यों के समान ही है, क्योंकि दोनों का प्रयोजन एक है। शार्ङ्गदेव ने सुषिर वाद्यों के दस भेद बताए हैं—वंश, पाव, पाविका, मुरली,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुकरी, काहला, तुंडुकिनी, चुक्का, शृंग और शंख।

सुषिर वाद्य बाँस, ताँबे, चाँदी, लोहे या सोने के, चन्दन, रक्तचन्दन, खैर की लकड़ी, नीलकड़ी हाथीदाँत के होते थे। सुषिर वाद्य में प्रथम वंश है।

वंश का महत्त्व भी अद्वितीय है। शारंगदेव का कथन है कि वंश, वीणा और शरीर ये तीन स्वरोत्पत्ति के स्थान हैं, इन तीनों में ललित, मधुर और स्निग्ध होने के कारण वंश सर्वश्रेष्ठ है। यही नहीं, वंश को संगीत का प्रधान उपकरण बताते हुए शारंगदेव कहते हैं कि मनुष्य, वीणा और वंश के सहयोग से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसके आकर्षण को विद्वान लोग जानते हैं।

प्राचीन आचार्यों के मत में वंश के सोलह भेद हैं परन्तु शारंगदेव ने इनके उन्नीस भेद माने हैं। वंशी की नली में सिरे से दो, तीन या चार अंगुल छोड़कर एक छेद होता है। इस छेद को मुखरन्ध्र कहते हैं। मुखरन्ध्र से एक अंगुल दूर एक छेद होता है, जिसके खुले रहने पर वंश की सर्वोच्च ध्वनि होती है, इसेताररन्ध्र कहते हैं। ताररन्ध्र से आध-आध अंगुल की दूरी पर सात छिद्र और होते हैं, जिनका आकार बेर की गुठली के समान होता है। एक आठवाँ छिद्र वायु के निकलने के लिए बनाया जाता है। नीचे दो अंगुल नली छूटी रहती है। वंश के इस प्रकार का नाम 'एकवीर' है। प्रत्येक प्रकार के वंश की नली का छिद्र कनिष्ठिका की मध्यग्रन्थि के बराबर चौड़ा होता है। मुख्यरन्ध्र और ताररन्ध्र के मध्य का अन्तर जितना-जितना बढ़ता जाएगा, वंश की ध्वनि उतनी ही गम्भीर होती जाएगी। मुख्यरन्ध्र और ताररन्ध्र का यह अन्तर बाईस अंगुल तक हो सकता है, परन्तु अतितार और अतिमंद्र ध्वनि वाले वंश अनुपयोगी होते हैं।

मतंगाचार्य का मत है कि पथिकों के प्रवास, प्रिया-विरह तथा शोकार्त दशा के प्रदर्शन के समय मध्यलय में वंश की मृदु ध्वनि का प्रयोग किया जाना चाहिए, शृंगार के प्रदर्शन में द्रुत इत्यादि ललित ध्वनियों का प्रयोग उचित है। तथा क्रोध तथा अभिमान के अवसरों पर वंश के द्वारा द्रुतलय में कम्पित तथा स्फुरित ध्वनियों का प्रयोग प्रभावोत्पादक होता है।

वंश के इन प्रभावों को जानकर ही मुरलीमनोहर ने इसे अपना प्रिय वाद्य बनाया था, व्यास से लेकर सूरदास तक सभी कवि मोहन की जादू-भरी वंशी के प्रभाव का वर्णन करते रहे हैं।

पाव, पाविका, मुरली और मधुकरी भी सुषिर वाद्यों के ही भेद हैं। काहली ताँबे, लोहे या सोने की बनती है, इसकी लम्बाई तीन हाथ होती है। इसमें 'हा हू' इत्यादि ध्वनियाँ निकलती हैं। काहली का प्रयोग वीरों के विरुदोच्चारण के लिए होता है, यदि काहली की लम्बाई दो हाथ हो तो इसे तुण्डकिनी कहते हैं, तुण्डकिनी का नाम तुरुतुरी या तित्तिरी भी है, इसका जोड़ा बजता है। चार हाथ की तुण्डकिनी चुक्का कहलाती है। काहली के ये प्रकार वीरों के उत्साह का वर्द्धन करते हैं।

भैंसे के सींग में बैल के सींग को फंसाकर शृंग नामक सुषिर वाद्य बनाया जाता था। इसकी ध्वनि गंभीर होती थी। यह वाद्य ग्वाल लोग प्रयोग में लाते थे।

'शंख' नामक वाद्य की बनावट साधारण शंख से कुछ पृथक् होती थी। 'हुंम्, युम, थो, दिगदित्' इत्यादि गंभीर और भयंकर ध्वनियों को उत्पन्न करके वीर योद्धा शत्रुओं के हृदय को कंपा देते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवनद्ध अर्थात् खाल से मढ़े हुए वाद्यों का कार्य गीत के शब्दों में प्रयुक्त अक्षरों का अनुकरण है। खंजरी जैसे कुछ अवनद्ध वाद्य केवल एक हाथ से बजाए जाते हैं। दोनों ओर मढ़े हुए वाद्य दोनों ओर दोनों हाथों से अथवा बायीं ओर हाथ से और दाहिनी ओर चोब से बजाए जाते हैं।

व्याकरणशास्त्र के आचार्यों का मत है कि भगवान् शंकर ने नृत्त के अन्त में ढक्का नामक वाद्य को चौदह बार बजा कर व्याकरण के आदिम चौदह सूत्र उत्पन्न किए। इन चौदह सूत्रों में सभी स्वर और व्यंजन हैं। इसलिए कुशल ढक्कावादक कोण अर्थात् वादनदण्ड के द्वारा ढक्का में सभी ध्वनियाँ उत्पन्न कर सकता है।

इन ध्वनियों के समूह जब अवनद्ध वाद्यों में उत्पन्न किए जाते हैं, तब वे पाट कहलाते हैं।

अवनद्ध वाद्यों में सबसे पहला पटह है। मार्ग पटह ढाई हाथ लम्बी खैर अथवा लालचन्दन की लकड़ी से बनाया जाता था। इसकी परिधि साठ अंगुल होती थी, बीच में मोटाई अधिक रहती थी। दायीं मुहार की चौड़ाई साढ़े ग्यारह अंगुल तथा बायीं मुहार की दस अंगुल होती थी। दोनों ओर खाल से मढ़ा होता था। इसमें क ख ग घ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, र और ह वर्ण निकलते थे। बायीं ओर हाथ से इसमें 'देङ्' तथा दायीं ओर से 'झेङ्' ध्वनि उत्पन्न की जाती थी। पटह वादनदण्ड तथा हाथ दोनों से बजाया जाता था। पटह में निकलने वाले बोलों की संख्या अट्ठासी है।

मर्दल पटह से छोटा होता था। मर्दल का ही नाम मुरज तथा मृदंग भी है। पटह में निकलने वाले अक्षर तो मृदंग में निकलते ही हैं, उनके अतिरिक्त तत्, धी, थो, टें, हें, न तथा दें भी निकाले जाते हैं। कुछ लोगों के मत में मृदंग में म, झ और भ भी निकाले जाते हैं, पटह में नहीं निकलते। कुछ आचार्यों के मत में मृदंग में केवल बत्तीस पाट हैं। पटह और मृदंग का प्रयोग गीत के अनुकरण में तो होता ही था, नाटक तथा युद्ध में भी इसका वादन संस्कृत साहित्य में वर्णित है।

अवनद्ध वाद्यों में मृदंग बजाने वालों के चार प्रकार होते हैं। वादिक, मुखरी, प्रतिमुखरी और गीतानुग। वादिक का काम मुख्यतया अपने पक्ष का मण्डन होता था। मुखरी रंगमंच पर प्रयोग के समय अन्य मृदंगिकों का नायक होता था, जिसके संकेतों का आश्रय लेकर अन्य मार्दंगिक गीत और नृत्त की संगत करते थे। प्रतिमुखरी मुखरी का सहायक होता था तथा गीतानुग का कार्य गीत का अनुकरण होता था। मार्दंगिकों के वृन्द में दो से चार तक मार्दंगिक होते थे जो मुखरी के संकेतों पर चलते थे।

मृदंग वादक के हाथ वादक की इच्छानुकल आचरण करने वाले और छोटे होने चाहिए। नख दृढ़ हों, अंगुलियाँ चलने पर भी न पसीजें, चिकने हों, फैल सकने वाले, न थकने वाले और उपयुक्त आघात करने वाले हों।

वादक को हस्त तथा वादनदण्ड के प्रहार को जानने वाला, गीतवादन में चतुर, यति ताल और लय से अभिज्ञ, पाटज्ञ, हस्तगण-युक्त, पात्र के मनोनुकूल वादन में समर्थ, वाद्य ध्वनियों का मर्मज्ञ, सम इत्यादि ग्रहस्थानों में निपुण, गीत, वादन तथा नृत्य के दोषों को छिपाने में सफल, गीत तथा नृत्त के प्रमाण को जानने वाला तथा ग्रह मोक्ष के अवसरों को समझने वाला होना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकार, स्वरूप, ध्वनि, प्रयोग इत्यादि की भिन्नता के कारण अवनद्ध वाद्यों के अनेक भेद हैं। कुछ छोटे अवनद्ध वाद्यों को स्वयं बजाती हुई नर्तकियाँ नाचती थीं। शारंगदेव ने तेइस प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है। इसमें भेरी तथा निस्सारण प्रधानतया युद्ध वाद्य थे। भेरी दाहिनी ओर वादनदण्ड से तथा बायीं ओर हाथ से बजाई जाती थी। इसका शब्द शत्रुओं के लिए भयंकर होता था। निस्सारण के शब्द से कायरों के हृदय फट जाते थे, दुन्दुभि अर्थात् धौंसा वादन-दण्ड के द्वारा बजाया जाता था। इसकी ध्वनि मेघगर्जन के समान गंभीर होती थी। मंगल कृत्यों के अवसर पर मन्दिरों में तथा विजयोत्सवों में तो यह बजाया ही जाता था युद्ध के समय जब सहस्रों भेरियाँ तथा सैकड़ों ढक्काएं बजती थीं, तब उस भयंकर शब्द समूह में भी दुन्दुभि-घोष स्पष्ट सुनाई देता था। 'वेणी-संहार' नाटक में दुन्दुभि-ध्वनि को सुनकर भीम कहता है कि यह दुन्दुभिवादन किसने किया, जिसकी ध्वनि सागर-मंथन के समय मन्थन के कारण उछल-उछल कर गुफाओं में भरे हुए जल से युक्त और घूमते हुए मन्दराचल की भयंकर ध्वनि के समान है, गर्जन करते हुए प्रलयकालीन मेघों के पारस्परिक संघर्षण के शब्द से समता करती है, द्रौपदी के क्रोध की अग्रदूतिका है और दुर्योधन इत्यादि की मृत्यु का पूर्व संदेश देने वाली उस निर्धारित ध्वनि के समान है, जो मेघ और पवन के घोर संघर्ष से उत्पन्न हुई है।

घनवाद्य प्रधानतया काँसे के होते हैं। शार्ङ्गदेव ने घनवाद्यों के आठ भेद बताए हैं, ताल, कांस्यताल, घंटा, क्षुद्रघण्टिका, जयघंटा, कम्रा, शुक्ति और पट्टवाद्य। ताल इनमें प्रधान वाद्य है जिनमें सभी पाट निकलते हैं। इसका प्रधान कार्य ताल का धारण करना है। कांस्य-ताल में निकलने वाले मुख्य शब्द झ, न, क, ट हैं। घण्टा का वादन देवार्चन के समय होता है। युद्धवाद्यों में भी इसकी गणना है। इसके शब्द से सैनिक मूर्च्छित हो जाते थे। क्षुद्रघंटिकाओं का प्रयोग नृत्य में होता है। नर्तकियाँ इन्हें बाँध कर नाचती हैं, ये एक साथ अनेक बजती हैं। जयघंटा डण्डे से बजाई जाती है। कम्रा लकड़ी की होती है, एक-एक हाथ में दो-दो लेकर बजाई जाती हैं। शुक्ति लोहे के वादनदंड से बजाई जाती थी इसे किरकिट्ट भी कहते थे। पट्टवाद्य गोद में रख कर हाथ से बजाया जाता था।

प्राचीन काल में रंगमंच पर आकर अभिनय करने वाले एक पात्र के अभिनय में साथ करने के लिए इकसठ व्यक्ति होते थे। पात्र सहित बासठ व्यक्तियों का सम्प्रदाय कहा जाता था। सम्प्रदाय में एक पात्र, दो प्रधान गायक, आठ सहगायक, दो वंश-वादक, दो काहला-वादक, एक मुखरी, दो प्रतिमुखरी बत्तीस मार्दंगिक, दो कटरा बजाने वाले, दो तालधर तथा आठ कांस्यतालधर होते थे तथा वीणा बजाने वालों की संख्या इन बासठ से पृथक् होती थी।

भारतीय रंगमंच के लुप्तप्राय हो जाने के कारण इनमें से बहुत से वाद्य केवल इतिहास की वस्तु रह गए। उत्तर भारत में तो इनके प्रयोग में भी अन्तर आ गया है। वीणा जैसे वाद्य से गीतानुकरण सर्वथा छूट गया है। भारतीय संगीत में सर्वमोहकता को पुनः लाने के लिए परिश्रमपूर्वक खोज की आवश्यकता है। पिछले प्रायः एक सहस्र वर्षों में संगीत के क्षेत्र में हमने पाया कम और खोया बहुत अधिक है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खयाल और उसका विकास

(एक विचार-विमर्श)

संगीत-क्षेत्र में कुछ ऐसे सज्जन हैं, जो संगीत के विषय में भी यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में लिखते हैं, परन्तु जिनका क्षेत्र कोई और है, कुछ लोग ऐसे हैं जो केवल उपाधि-प्राप्ति के लिए 'थीसिस' लिखकर निश्चित हो जाते हैं, कुछ महानुभाव पाठ्य-पुस्तकें लिखते हैं, कुछ ऐसे भी हैं, जो केवल संगीत के ही विषय में निरन्तर सोचते हैं, पढ़ते हैं और निरन्तर लिखते हैं। भूलें भी लिखनेवालों से ही होती हैं और लोग सहृदयतापूर्वक दूसरों की भूलों का परिमार्जन करते हैं, अपनी भूलों को मान लेते हैं, और भूल की ओर संकेत करनेवाले के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं।

अस्तु, प्रस्तुत लेख के शीर्षक के विषय में हम आदरणीय ठा० जयदेवसिंह जी के ऋणी हैं, क्योंकि 'संगीत' के 'खयाल अंक' (जनवरी-फरवरी, १६७६) में ठाकुर साहब का एक लेख प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत ही प्रकाशित हुआ है।

अस्तु, प्रस्तुत विषय की ओर आया जाए।

आदरणीय ठाकुर साहब का कथन है—"मेरा मत यह है कि सांगीतिक संरचना की तथाकथित खयाल-गायकी और कुछ नहीं, बल्कि 'साधारणी गीति' का स्वाभाविक विकास-मात्र है, जिसमें सभी गायन-शैलियों के अनुपम विन्यास का प्रयोग होता है। जब 'साधारणी गीति' में 'भिन्न' का प्राधान्य रहने लगा, तब वही 'साधारणी गीति' बाद में खयाल बन गई।"[1] "गायन की साधारणी शैली', जिसमें उदारता के साथ गमकों का अधिक प्रयोग होने लगा था, हमारी खयाल-गायकी के नाम से प्रचलित हुई।"[2]

यहाँ ठाकुर साहब 'खयाल-गायकी' को 'साधारण गीति' का रूपांतर मानते हैं, परन्तु थोड़ी ही पंक्तियों के बाद उनका कथन है—" 'रूपकालप्ति' से ही हिन्दुस्तानी संगीत में खयाल का प्रवर्तन हुआ है।"[3]

परम सम्माननीय ठाकुर साहब दार्शनिक हैं, यह भली-भाँति जानते होंगे कि ऐसे परस्पर विरोधी वक्तव्य तर्कशास्त्र की दृष्टि से दोष हैं।

प्रातःस्मरणीय ठाकुर साहब कहते हैं—"प्रबन्ध व्यापक शब्द है' जिसका अर्थ सांगीतिक-रचना है।"[4] साथ-ही-साथ ठाकुर साहब का अमूल्य और मौलिक कथन है—"शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रंथ में पाँच प्रकार की सांगीतिक रचनाओं की चर्चा की है। उनके नाम हैं—शुद्धा, भिन्ना, गौड़ा, वेसरा और साधारणी।"

---

१. 'खयाल अंक', पृष्ठ ५६।

२. वही, पृष्ठ ६६ ३. वही, पृष्ठ ६८ ४. वही, पृष्ठ ६७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठाकुर साहब की दृष्टि में वे स्वराश्रित 'गीतियाँ' भी सांगीतिक रचनाएँ हैं, जिनके आधार पर शुद्ध, भिन्न, गौड़, वेसर और साधारण राग-प्रकारों का निर्माण हुआ है और 'प्रबन्ध' भी। अब तक 'वस्तु' और 'शैली' पृथक्-पृथक् मानी जाती थीं, परन्तु ठाकुर साहब के पौरुष ने 'सुन्दरी' को 'भंगिमा' भी बना दिया और 'भंगिमा' भी इसी भाव से 'सुन्दरी' हो गई है।

ऐसी स्थिति में स्वर्गीय शार्ङ्गदेव जी क्या करें। उनका तो कथन है—

पंचधा ग्रामरागाः स्युः पंच गीति समाश्रयात्।
गीतयः पंच शुद्धा च भिन्ना गौडी च वेसरा ॥
(संगीत-रत्नाकर', अड्यार-संस्करण रागविवेकाध्याय, पृष्ठ ३)

असंस्कृतज्ञ पाठकों के लिए 'भरत का संगीत-सिद्धान्त', पृष्ठ २४८ पर यों लिखा है—"स्वराश्रित गीतियाँ पाँच हैं—शुद्ध, भिन्न, गौडी, वेसरा और साधारणी यही गीतियाँ शुद्ध, भिन्न, गौड, वेसर और साधारण नामक पाँच ग्रामराग-भेदों का निर्माण करती हैं। अतः यह सिद्ध है कि आचार्य शार्ङ्गदेव, इन पाँचों गीतियों को 'सांगीतिक रचनाएँ' नहीं मानते।

हमें विनम्रतापूर्वक परम श्रद्धेय ठाकुर साहब के श्रीचरणों में यह निवेदन करना है कि उपर्युक्त स्वराश्रित गीतियाँ विभिन्न प्रकार के रागों की स्वराश्रित गान-शैलियाँ हैं और 'खयाल' एक बंदिश है, 'राग' नहीं, अतः उसकी गायिकी का मूल कहीं और होना चाहिए।

अब ठाकुर साहब के इस कथन पर विचार किया जाए कि 'रूपकालप्ति से ही हिन्दुस्तानी संगीत में खयाल का प्रवर्तन हुआ है'।

ठाकुर साहब की अनोखी और मौलिक स्थापना यह है—"प्रायः लोग 'प्रबन्ध' और 'रूपक' दोनों में अन्तर मानते हैं। जहाँ 'प्रबन्ध' रूप के सौन्दर्य पर बल देता है, वहाँ 'रूपक' सर्जनात्मक कल्पना के सौन्दर्य पर बल देता है। पहला जहाँ शास्त्रसम्मत है, वहाँ दूसरा स्वच्छन्दतावाद की ओर उन्मुख रहता है। अतः 'रूपकालप्ति' मनोधर्म संगीत है।

ठाकुर साहब की इस अपूर्व स्थापना को हम नतमस्तक होकर स्वीकृत कर लेते, परन्तु शार्ङ्गदेव और पार्श्वदेव-जैसे आचार्यों को कैसे समझाएँ।

शार्ङ्गदेव कहते हैं—

संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वस्तु रूपकम्।

अर्थात् 'निबद्ध' के तीन नाम प्रबन्ध, वस्तु और रूपक हैं।

पार्श्वदेव कहते हैं—

प्रबन्धो रूपकं वस्तु निबद्धस्याभिधात्रयम्।
चतुर्भिर्धातुभिः षड्भिश्चांगैर्यस्मात् प्रबध्यते।
तत्मात्प्रबंधः कथितो गीतलक्षणकोविदैः।
रागद्यारोपणे हेतुः स्यादास्मिन् रूपकाभिधा।
उद्ग्राहाद्यास्तु तत्वारः स्वरादीनि च षट् तथा।
वसंति यत्र स ज्ञेयो प्रबंधो वस्तु संज्ञया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात्—"निबद्ध के तीन नाम प्रबन्ध, वस्तु और रूपक हैं। यह चार धातुओं और छह अंगों से प्रबद्ध होता है, इसलिए गीतलक्षणकोविदों के द्वारा यह 'प्रबन्ध' कहा जाता है, राग आदि के आरोपण में हेतु होने के कारण इसकी संज्ञा 'रूपक' है तथा उद्ग्राह इत्यादि चार धातु और स्वर इत्यादि छह अंग जिस प्रबन्ध में वास करते हैं, वह 'वस्तु' नाम से जानना चाहिए।

उपर्युक्त श्लोक सिंहभूपाल ने भी 'संगीत-रत्नाकर'-टीका में उद्धृत किए हैं। आदरणीय ठाकुर साहब की सुविधा के लिए हमने अर्थ भी लिख दिया है, क्योंकि ठाकुर साहब 'अलं पल्लवितेन' का अर्थ 'काफी विस्तार के साथ' समझते हैं।[3]

पार्श्वदेव और शार्ङ्गदेव-जैसे आचार्य तो प्रबन्ध, वस्तु और रूपक को निबद्ध गान के केवल तीन नाम मानते हैं, वे ठाकुर साहब के मत के अनुसार प्रबन्ध को शास्त्रसम्मत और वस्तु को स्वच्छंदतावाद की ओर उन्मुख नहीं मानते। अतः विवशतापूर्वक हम ठाकुर साहब से असहमति प्रकट करते और इस कार्य के लिए क्षमा-याचना करते हैं।

हमने नवम्बर, १९६४ ई० के 'संगीत' में पृष्ठ १४-१५ पर 'रागालाप', 'रूपकालाप', 'रागलप्ति' (प्रतिग्रहणिका, स्थायभंजनी और रूपकभंजनी) की व्याख्या की थी। यहाँ उसका सार दुहराए देते हैं।

'आलाप' पुल्लिंग शब्द हैं, इसमें राग का तिरोभाव नहीं होता। आलाप के दो भेद—'रागालाप' और 'रूपकालाप' हैं। 'रागालाप' एकाकार होता है, उसमें अपन्यास स्वरों पर विश्रांति नहीं होती। 'रूपकालाप' में अपन्यास स्वरों पर विश्रांति होती है।[4]

'आलप्ति' स्त्रीलिंग शब्द है, पार्श्वदेव ने इसके सोलह भेद किए हैं, परन्तु शार्ङ्गदेव ने सम्प्रदाय-भेद के कारण रूपकालप्ति के केवल तीन भेद—१. 'प्रतिग्रहणिका,' २. 'स्थायभंजनी' और ३. 'रूपकभंजनी' किए हैं। 'आलप्ति' में राग का आविर्भाव भी होता है और तिरोभाव भी। स्वस्थान-नियम का पालन भी होता है, 'आलप्ति' कर-करके यदि बन्दिश का मुँह पकड़ा जाए, तो यह कार्य 'प्रतिग्रहणिका' कहलाता है, बड़े खयाल की किराना-गायकी में यही होता है। यदि किसी बन्दिश की किसी तुक के एक खंड या विदारी में प्रयुक्त स्वरों को सीमा में रहकर, उसी गति या लय को सुरक्षित रखते हुए उन्हीं स्वरों का विभिन्न क्रमों से प्रयोग किया जाए, तो इसे 'स्थायीभंजनी' कहा जाता है, खयाल की लय-प्रधान गायकी में 'स्थायभंजनी' के दर्शन होते हैं। पूरी बन्दिश के व्यंजनों और आकार, ईकार, एकार, ओकार इत्यादि को यथापरिमाण रखते हुए यदि पूरी बन्दिश के स्वरों का भंजन किया जाए, तो 'रूपकभंजनी' होती है।

पूज्य ठाकुर साहब खयाल-गायकी के समस्त अंगों पर यदि विचार करते, तो उनके शब्द स्पष्ट होते। वे एक साँस में 'साधारणी गीति' को और दूसरी ही साँस में

---

३ 'खयाल अंक', पृष्ठ ६९।

४. ग्रहांशतारमंद्राणां न्यासापन्यासयोस्तथा। अल्पत्वस्य बहुत्वस्य षाड़वौडुवयोरपि॥
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्टा स रागालाप उच्यते। रूपकं तद्वदेव स्यात् पृथकभूत्विदारिकम्॥
('संगीत रत्नाकर', रागविवेकाध्याय, अड्यार-संस्करण, पृष्ठ २०-२१)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपकालप्ति को खयाल की जननी न बताते।

श्रद्धेय ठाकुर साहब का कथन है—"जब अमीर खुसरो ने तेरहवीं शताब्दी में रूपकालप्ति की ऐसी अलंकृत 'शैली' का गायन सुना, जो अलंकारों से परिपूर्ण थी, तब उसने सर्जनात्मक कल्पना के उस संगीत को 'खयाल' कहा क्योंकि इसके लिए 'खयाल' से उपयुक्त कोई दूसरा शब्द नहीं था।···अमीर खुसरो ने इस शैली का प्रवर्तन नहीं किया, बल्कि उसने इसका अरबी नामकरण किया।"[5]

यह भाषा दिव्य-दृष्टि से अतीत का प्रत्यक्ष दर्शन करनेवाले महर्षियों की भाषा है। हम जैसे सामान्य व्यक्तियों को अमीर खुसरो के पूरे साहित्य में 'खयाल' शब्द का दर्शन नहीं हुआ। अमीर खुसरो भारतीय संगीत के परम भक्त थे। अमीर खुसरो की मृत्यु से ढाई-तीन सौ वर्ष पश्चात् फकीरुल्लाह ने अमीर खुसरो को खयाल का प्रवर्तक कहने की भूल की है, ठाकुर साहब का मन उसी से प्रभावित है।

परम पूज्य ठाकुर साहब कहते हैं—"चूँकि यह शैली अलंकृत और रूमानी है, इसलिए मन्दिरों में इसको स्थान प्राप्त नहीं हुआ, इसको अधिकांशतः कथकों, नर्तकियों और राजाओं ने संरक्षण प्रदान किया।"[6]

पुष्टि-सम्प्रदाय लीला-गान पर अत्यधिक बल देता है, श्याम-श्यामा की शृंगार-लीलाओं का वर्णन स्वामी हरिदास ने भी 'केलिमाल' में किया। कृष्ण और ब्रज-गोपियों के मधुर सम्बन्धों में भी 'लालित्य' और 'रूमानीपन' नहीं, तो समस्त संसार में कहीं नहीं। अतः मन्दिरों से खयाल-शैली का बहिष्कार ठाकुर साहब द्वारा बताए हुए कारणों से तो सम्भव नहीं, हाँ, 'रागहत्या' की आशंका से बहिष्कार सम्भव है।

समझदारी के साथ जान-बूझकर राग का तिरोभाव करना और बात है, तानों की सुविधा (!) के लिए राग में मनमाना उत्पात करना और बात है। खयाल-गायकों ने सदा चमत्कार को प्रधान समझा और उस चमत्कार की सिद्धि के लिए रागों के साथ स्वैराचार किया। आज भी राग के निर्मल रूप का दर्शन करने के लिए टकसाली ध्रुवपदों को प्रमाण माना जाता है, खयालों को नहीं। यही कारण है कि 'सदारंग'-जैसे बीनकारों और ध्रुवपद-गायकों ने सहस्रों खयालों की रचना तो की, परन्तु न तो स्वयं खयाल गाए और न अपनी सन्तानों को खयाल गाने की अनुमति दी।

स्वर्गीय भातखण्डे जी की 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' में सर्वत्र लक्ष्य-लक्षण विरोध का यही कारण है कि बन्दिशों में राग-विषयक उच्छृंखलता बरती गई है। तानों की सुविधा के लिए खयाल-गायक राग-क्षेत्र में मनमाना उत्पात करते आए हैं। मन्दिरों में राग का एक अधिष्ठातृ देवता भी माना जाता था, गायक लोग मन्दिरों में ही बैठकर राग-देवता की मूर्ति तोड़ें, यह भक्तों को सह्य नहीं था।

अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ सभी विलासी थे, इनके दरबार में खयालियों की दाल क्यों न गली। यहाँ का वातावरण तो शुद्ध 'रूमानी' था? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि राग-मर्मज्ञ गुणी नर्तकियों और उनके बन्धु-बान्धवों को खयाल की

---

५. 'खयाल अंक', पृष्ठ ६९-७०।

६. वही; पृष्ठ ७०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिक्षा देकर ताम्रमिश्रित स्वर्ण के आभूषण थमा देते और राग की वास्तविक शिक्षा अपनी सन्तान को दिया करते थे। स्व० रहीमुद्दीन खाँ को सैकड़ों अच्छे खयाल याद थे, परन्तु उनके परिवार के बच्चे आज भी खयाल नहीं गाते।

एक युग में स्वराश्रित गीतियाँ या गान-शैलियाँ विभिन्न राग-प्रकारों को जन्म देती थीं, अब 'गायकी' का सम्बन्ध 'घरानों' से हो गया। दरबारी और विलासखानी-जैसे रागों पर 'घरानों' ने अपने-अपने ढंग से 'इस्तरी' कर दी। और-तो-और बड़े शहरों के बाजारों के नाम पर भी 'घराने' हो गए। अर्थात् अब 'राग' घरानों के लिए हो गए और वे प्रत्येक 'घराने' में अलग-अलग ढंग से दण्डवत् करने लगे।

मुहम्मद करम इमाम ने बड़े मुहम्मद खाँ और उसके भाई अहमद खाँ को देखा-सुना था, उसके शब्द हैं—"अहमद खाँ शुद्ध अस्ताई व सेहत (राग की शुद्धता) खूब रखते थे और मुहम्मद खाँ तान, पलटे, तहरीर और जमजमे में बहुत करारे थे।"[७] जो अहमद खाँ राग की शुद्धि पर अधिक ध्यान देते थे, उनका नाम भी कोई नहीं जानता और बड़े मुहम्मद खाँ की नकल छिप-छिपकर हद्दू खाँ और हस्सू खाँ ने की।[८] भातखण्डे जी का कथन है—"मुहम्मद खाँ के गायन-प्रकार को देखकर ही ग्वालियर के गायकों ने अपनी शैली बदल दी, तब से खयाल में भयंकर तानबाजी करने की परिपाटी-सी पड़ गई।[९]

घरानों के निर्माण की कहानियाँ ऐसी ही हैं। योग्य विद्यार्थी का योग्य गुरु के चरणों में उपस्थित होना और गुरु के द्वारा उस विद्यार्थी को शिष्य के रूप में स्वीकृत करने का विशिष्ट संस्कार 'दीक्षा' कहलाता है। दीक्षा के पश्चात् 'शिक्षा' और शिक्षा के पश्चात् 'परीक्षा' होती है। दीक्षा, शिक्षा और परीक्षा में यही क्रम है।

घरानेदार लोगों ने इन शब्दों की मनमानी कपाल-क्रिया करके इनको 'दिक्खिया, सिक्खिया और परिक्खिया' बना दिया है। ये महानुभाव 'दिक्खिया' का अर्थ 'दिल की आँखों से संगीत को देखना', 'सिक्खिया' का अर्थ 'सीखना' और किसी भी उस्ताद को सुनकर उसकी गाई हुई चीज को अपने गले से अदा करने की कोशिश करना (यानी सुनकर उड़ाना) और 'परिक्खिया' का अर्थ 'परखो, जाँचो, तोलो, करते हैं।[१०]

स्पष्ट है कि इस उपहासास्पद दृष्टिकोण और खयाल के घरानों के लिए मन्दिरों अथवा समझदार लोगों में स्थान न था।

अस्तु, बड़े मुहम्मद खाँ शकर कव्वाल के पुत्र थे, जो लखनऊ के निवासी थे। ग्वालियर-घराने के सूर्य-चन्द्रमा हद्दू खाँ और हस्सू खाँ ने बड़े मुहम्मद खाँ की तानें छिप-छिपकर सुनीं और अपने गले में बिठाईं। खयाल के एक महाप्रामाणिक घराने का इतिहास भातखण्डे जी के अनुसार यह है। सम्भव है, परम श्रद्धेय ठाकुर साहब को ही उस घराने में 'लालित्य' और 'रूमानियत' मिल जाए।

---

७. 'मदअन्-उल्-मूसिकी', पृष्ठ ३५।

८. 'भातखण्डे संगीत-शास्त्र', चौथा भाग, पृष्ठ २२५-२२६।

९. वही, पृष्ठ २२७।

१०. 'संगीतज्ञों के संस्मरण', लेखक—आगरेवाले स्व० विलायतहुसेन खाँ, पृष्ठ २६—२८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं है कि सदारंग के युग में 'खयाल' कैसे गाया जाता था। स्व० भातखण्डेजी ने ठीक ही कहा है—"बादशाही समाप्त होने के पश्चात् सौ-पचास वर्ष तक तो गायक परम्परा ठीक चली, परन्तु गत सौ-डेढ़-सौ वर्षों में इस कला की बहुत दुर्दशा हुई।"[11]

वर्तमान युग की दशा प्रत्यक्ष है। अनेक ऐसे नवयुवकों में 'खानदानीपन' की अकड़ है, जिन्हें अपने पिता तक से शिक्षा लेने तक का अवसर नहीं मिला और जिनका असली गुरु 'दिक्खिया, सिक्खिया, परिक्खिया' है। स्पष्ट है कि मन्दिरों के भक्त विचारकों को यह स्थिति सह्य न तो रही और न रहेगी।

श्रद्धेय ठाकुर साहब यह जानते हैं कि सत्यान्वेषक का कर्तव्य सत्य की खोज है, वह 'ठकुरसुहाती' नहीं करता, इसी भावना और कर्तव्य के वशीभूत होकर हमने ये शब्द पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किए हैं।

जो-कुछ हमने निवेदन किया है, उसे ठाकुर साहब न जानते हों, ऐसी बात नहीं है, परन्तु वे वयोवृद्ध हैं, दार्शनिक हैं, इस आयु में कुछ बातें तो ध्यान से उतर जाती हैं और कुछ बातों को दार्शनिकता जन्म देती है।

श्रद्धेय ठाकुर साहब की जन्म-तिथि १६-१-१८९६ ई० है[12] और हमारी जन्म-तिथि २०-१-१९१८ ई०। वे हमसे बाईस वर्ष बड़े हैं, हमारे श्रद्धेय और पूज्य हैं। हम दोनों का जन्म जनवरी के मध्य में हुआ और उन्होंने हमारे ग्रंथ 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' की भूमिका लिखी है। वे भीष्मपितामह हैं, तो हम उनके 'सव्यसाची' बालक हैं। हम दोनों के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर हैं। •

११. 'भातखण्डे संगीत-शास्त्र', भाग ४, पृष्ठ ५५३।
१२. 'हू इज हू', पृष्ठ २७ (प्रकाशित संगीत-नाटक-एकेडमी, १९६८ ई०)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'बन्दिश' अर्थात् 'चीज़' और उसका महत्व

'प्रबन्ध', 'वस्तु' और 'रूपक', 'निबद्ध' के ही तीन नाम हैं। 'बन्दिश' शब्द 'प्रबन्ध' का अनुवाद है और 'चीज़' शब्द 'वस्तु' का। 'बन्दिश' उदाहरण है, जो राग, ताल, विदारी, धातु और अंगों का समन्वित रूप हैं।

'बन्दिश' करना हरएक का काम नहीं। वाणी अर्थात् साहित्य-पक्ष और 'गेय' अर्थात् संगीत-पक्ष पर जिस व्यक्ति का समान अधिकार हो, वह प्रबन्ध-रचना का अधिकारी है।

अमीर खुसरो की मृत्यु १३२४ ई० में हुई और इसी वर्ष वाचनाचार्य सुधाकलश ने अपना ग्रन्थ 'संगीतोपनिषद्' समाप्त किया,[1] वाचनाचार्य सुधाकलश की परम्परा का कार्य-क्षेत्र गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान और मध्य-प्रदेश के कुछ भाग थे। वे कहते हैं—

प्रबन्धबन्धकर्तारो विरला भूतलेऽधुना।
तद्गायना न प्रायो.................. ।।[2]

अर्थात्—"इस युग में प्रबन्धों की रचना करने वाले दुर्लभ हैं और उनके गाने वाले भी दुर्लभ हैं।"

सुधाकलश के ये वाक्य बताते हैं कि चौदहवीं शती के पूर्वार्द्ध में प्रबन्ध-रचना की दृष्टि से पूर्ण दारिद्र्य आ चुका था।

सोलहवीं शती में हम बैजू का नाम पाते हैं, उनके नाम से इधर-उधर संगृहीत गेय साहित्य अपने वास्तविक रूप में कितना बचा है, उसका गेय रूप वास्तव में क्या था, यह जानने का कोई साधन आज नहीं है।

तानसेन को अच्छे कवियों का साहचर्य सदैव प्राप्त रहा। वे नायिका-भेद से परिचित थे और ऋतु-वर्णन से भी। रस और भाव की भी चिन्ता करते थे।

उनका एक ध्रुवपद है, जिसमें वे अर्थज्ञान-शून्य तथा रस एवं भाव की उपेक्षा करने वाले किसी ऐसे गायक की हंसी उड़ा रहे हैं, जो गुरुहीन व्यक्तियों की रचनाएं गाता है। ध्रुवपद यह है—

जो धुरपद ना सुध अछिरनि जुक्त, जुक्त न संगीत राग गावै।
जो अज्ञान गुनियन को पचावै, भिमते निगुरन कौ कियौ गावै।।

---

१. 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार', गायकवाड़-सीरीज, प्रथम संस्करण, १९६१ ई०, भूमिका, पृष्ठ ८।

२. 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार', पृष्ठ ७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नव रस राग जाने ना, लोक मध बादि ही कवि कहावै।
साहि अकबर की सौं, मोय तो दुख, और हाँसी याही तें आवै,
अरथ पूछे ते नाहीं करि आवै ॥[३]

यदि इस युग में तानसेन आ जाएँ, तो अपने नामलेवा खानदानी (!) लोगों को प्राय: ऐसा ही पाएँ।

अस्तु, तानसेन ने अपने युग में बन्दिशें कीं, वे बन्दिशें उनके युग में नई थीं, परन्तु 'प्रामाणिक' या 'टकसाली' मानी गईं।

उस समय सम्राट् के अत्यन्त निकट रहने वाले कलाकार 'हुज़ूरी' कहलाते थे, बन्दिशें करने का अधिकार केवल इन्हें था। इनकी बन्दिशें उन कलाकारों को सिखाई जाती थीं, जो केवल दरबार में आते थे। 'दरबारी' कलाकार इन बन्दिशों की शिक्षा 'शहरी' कलाकारों को देते थे, जो शहर में रहते थे। 'शहरी' कलाकार इन बन्दिशों की शिक्षा अपने शिष्य-प्रशिष्यों को देते थे। बादशाहों के गवर्नर अपने-अपने प्रान्तों में, प्रशिक्षित श्रेष्ठ गायकों को राजधानी से ले जाते थे, जो वहाँ इन बन्दिशों का प्रचार करते थे।

'सदारंग' की मृत्यु अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध के अन्तिम भाग के अन्त में हुई। वे अपने युग के सभी प्रमुख गुणियों के शिष्य थे और उन्हें महाकवि देव की शिष्यता का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। अत: 'सदारंग' ने प्रामाणिक रचनाएँ कीं और वे अत्यन्त सम्मानित हुईं। मुहम्मदशाह 'रंगीले' की राजनीतिक स्थिति कुछ भी हो, परन्तु 'सदारंग' जैसे गुणियों के कारण उस युग में दिल्ली सांगीतिक राजधानी थी।

'सदारंग' के पश्चात् जो गायक 'रचनाएँ' करने लगे, उनका साहित्य-ज्ञान प्राय: शून्य था, अत: पुरानी बन्दिशों के बोलों को उलट-पलटकर अपना मसाला प्रस्तुत करने लगे, ऐसी बन्दिशों में 'सदारंग' या 'अदारंग' का नाम डालना सामान्य बात हो गई, परन्तु सदारंग की साहित्य-शैली से परिचित कोई भी व्यक्ति ऐसे 'जाल' सरलतापूर्वक पकड़ सकता है।

अपने अज्ञान को छिपाने के लिए 'सदारंग' की बन्दिशों के बोलों को मनमाने रागों में चिल्लाना आरम्भ कर दिया गया। 'सदारंग' के नाम से प्रचलित अनेक बन्दिशों में राग-सम्बन्धी दोष भी इसी प्रवृत्ति के कारण पाए जाते हैं।

जब अर्थज्ञान-शून्य अँगूठा-छाप खानदानी गुणियों ने प्रत्येक दृष्टि से खंडित और भ्रष्ट साहित्य रटना-रटाना आरम्भ किया, राग-नियमों को 'अलविदा' कह दिया, तब उनका प्रलाप पर्याप्त मात्रा में अहिंदी-भाषी प्रदेशों में बिका। फलत: कुछ बम्बई-निवासी प्रतिष्ठित आलोचकों का भी यह मत हो गया कि बन्दिशों के साहित्य-पक्ष और उसके अर्थ की ओर ध्यान देना अनावश्यक है।

स्व० विलायतहुसैन खाँ आगरेवालों की सम्मति में बन्दिशों की भ्रष्टता के कारण 'उस्ताद की भूल, शागिर्द की भूल और लोगों का मनमाना आचरण' हैं।[४]

खाँ साहब विलायतहुसैन खाँ ने ठीक ही कहा है—"किसी एक ही उस्ताद से

---

३. 'रागमाला', पत्र ५३ (अ)।
४. 'संगीतज्ञों के संस्मरण', पृष्ठ २७-२८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हासिल की हुई राग-रागनियों में गलती होने की सम्भावना है।"[५] खाँ साहब समझदार आदमी थे, ईमानदार थे और अलग-अलग खानदानों के दोषों को समझते थे, परन्तु ऐसे उस्तादों के शागिर्द विचार को कहाँ तक महत्त्व देते हैं, यह कहना कठिन है।

किसी राग की बन्दिश को किसी अन्य राग में उलट देना उस्तादी (!) भले ही हो, ईमानदारी बिलकुल नहीं है। यह टकसालीपन भी नहीं है।

स्वर्गीय भातखंडे जी का पाला विभिन्न घरानों से पड़ा था, उन्होंने जहाँ से जो कुछ पाया, इकट्ठा करके रख दिया। उस ढेर में से बन्दिशों के प्रामाणिक रूप को छाँटने या उनमें सुधार करने का कार्य एक 'प्रतिनिधि-समिति' का है।

नई बन्दिशें

तानसेन या सदारंग ने अपने आश्रयदाताओं के प्रताप और पराक्रम का वर्णन किया, आज उन भारतीय वीरों के प्रताप का वर्णन नई बन्दिशों में क्यों नहीं किया जा सकता, जिन्होंने भारत के लिए विजयश्री का वरण किया है। वीर-भक्ति भी प्रशंसनीय है, इस ओर शास्त्रीय संगीत के कलाकारों का ध्यान क्यों नहीं जाना चाहिए। इसी प्रकार अन्य विषय भी हो सकते हैं।

एक ही प्रबन्धकार के एक ही साहित्य को यदि कोई विभिन्न रागों में सुने या एक राग की एक ही बन्दिश की, विभिन्न घरानों में दुर्गति, विभिन्न प्रकार से देखे, तो बन्दिश के मूल रूप का पता कैसे चलाएगा। यदि एक ही बन्दिशरूपी सुन्दरी विभिन्न 'घरानों' में विहार कर रही हो, तो आँख, नाक, कान, हाथ, पैर इत्यादि तो जैसे-के-तैसे रहने चाहिए। किसी को भी उस सुन्दरी के अंग-भंग का अधिकार नहीं है।

सम्पूर्ण मालकोस में पंचम और ऋषभ इतने ही लगते हैं, जैसे गोरे-गोरे मुखड़े पर दो तिल हों,[६] परन्तु एक गायक सम्पूर्ण मालकोस गाते समय तानपूरे पर पंचम भी मिलाकर मालकोस के मुंह पर कोलतार पोत देते हैं। हमसे फर्माने लगे—"क्या पुरानी बन्दिशें नहीं सिखाना चाहिए ?" हमने कहा कि यदि 'पुरानी' का अर्थ 'टूटी-फूटी, सड़ी-गली घुनी बन्दिश' है, तो उससे दूर ही रहना चाहिए। इन बेचारों का धन निरक्षर गुरुओं से सुनी हुई, 'रटंत' है। और ये मुद्रा-दोष तथा अन्य दोषों के अनुपम उदाहरण हैं।

'छिप जाना' और 'खो जाना' अलग-अलग बात है। 'घूंघट डालने' और 'कफन पड़ने' में काफी अन्तर है। गवैये आज देश-भर में हैं, यदि उन्होंने विवेक से काम न लिया, तो इतिहास उन्हें क्षमा नहीं करेगा। ज्ञान-पक्ष या विवेक पक्ष तिरोहित होने पर कला-पक्ष की दुर्गति अनिवार्य है।

बन्दिशों के सम्बन्ध में स्व० भातखंडे जी के विचार यों हैं—

(अ) "रागों को मूर्तरूप देकर, उनके स्पष्ट तथा आदर्श स्वरूप सुरक्षित रखने के लिए उदाहरण के निमित्त किन्हीं भी शब्दों में बाँधकर रखना, यही चीज़ें

---

५. वही, पृष्ठ २७

६. 'मुआरिफुन्नगमात', तृतीय भाग, पृष्ठ ६७-६८, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ १९२७ ई०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाने का मुख्य हेतु रहा होगा।

(आ) गायक को किसी भी राग में एक छोटी-सी स्वर-रचना सूझती है, उसको सुरक्षित रखने के लिए किसी-न-किसी शब्द-रचना की आवश्यकता होती है, उस स्वर-रचना के योग्य, काव्य-सौन्दर्य के झगड़े में विशेष न पड़ते हुए अपनी रुचि के अनुसार गायक शब्द-रचना करता है।"[७]

स्व० भातखण्डेजी ने बड़े पते की बात कही है। निरक्षर, असहृदय अथवा अर्द्धशिक्षित गायक चाहे कितना ही बड़ा खानदानी हो, साहित्य-पक्ष को 'झगड़ा' ही समझता है, वह यही समझता है कि गान का सम्बन्ध मनोभावों की अभिव्यक्ति से न होकर राग में निर्बाध की जानेवाली कलाबाजियों से है। साथ ही उसे राग-नियमों का ज्ञान रखने की आवश्यकता नहीं, इसलिए वह रटी हुई बन्दिशों की 'टेर' पर गला घुमाता है। उसने इसीलिए खमाज में खयाल गाना छोड़ दिया, क्योंकि तानों और सर्राटों में अल्हैया-बिलावल से खमाज को पृथक् रखना उसके लिए संभव न था।

काव्य-सौन्दर्य को झगड़ा समझनेवाले प्राणी राग-सम्बन्धी सौन्दर्य-बोध से भी शून्य होंगे, क्योंकि सौन्दर्य-बोध का ही वहाँ अभाव है।

भातखण्डे जी का विचार है कि मराठी श्रोता मराठी शब्दों की दुर्गति देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगेंगे।[८]

हिन्दी को भातखण्डेजी 'गरीब की जोरू' समझते हैं, जिसे हर आदमी 'भाभी' कह सकता है। मराठी की भाँति ब्रज-भाषा की भी एक प्रकृति है, भातखण्डे जी सम्भवतः यह नहीं जानते। फर्माते हैं—"कोई भी घरानेदार गायक शब्दार्थ पर जोर देकर अपने घराने की गायकी को बिगाड़ने के लिए तैयार न होगा।"[९] मराठी के सम्बन्ध में भातखण्डे को श्रोताओं की चिन्ता है और हिन्दी के सम्बन्ध में गायकों की। अर्थात् हिन्दी भाषी श्रोताओं को अपनी ब्रज-भाषा अथवा अपनी अन्य बोलियों से प्यार करने का अधिकार नहीं।

मराठी-भाषियों ने हिन्दी की सेवा किसी की अपेक्षा कम नहीं की है, परन्तु संगीत के क्षेत्र में हिन्दी की जो दुर्दशा की गई है, वह ऐसे विचित्र विचारों का परिणाम है।

अस्तु, हमें यह कहना है कि आज भी भाषा और अर्थ की उपेक्षा करने वाले बड़े-से-बड़े उस्ताद की दक्षिणा तंत्री-वादकों की दक्षिणा की अपेक्षा कहीं कम है। भाषा की हत्या का दण्ड समाज दे रहा है।

भातखण्डे जी की दृष्टि में गीत-रचना के समय इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए—

१. राग का स्थूल स्वरूप, २. कौन-कौन-से अंग कहाँ-कहाँ रखे जाएँ, ३. कौन-सी स्वर-संगति, ४. मुक्त-स्वर कौन-से और कहाँ रखे जाएँ, ५. अमुक स्वर से गीत

---

७. 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका', भाग ६, पृष्ठ २८।

८. वही, पृष्ठ २८।

९. वही, पृष्ठ २८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुरू होने पर एक कल्पना पूरी होने के लिए कितने स्वर-वाक्य आवश्यक होंगे। ६. कौन-सा विश्रांति-स्थान, ७. किस वाक्य में कौन-से स्वर आने चाहिए, ८. कौन-सा वाक्य कितना दीर्घ रखना होगा। ९. चीज़ के शब्दों का उस वाक्य से कैसा सम्बन्ध रखा जाए, १०. ताल के किस ठेके पर कौन-सा भाग लाया जाए, इत्यादि।[१०]

भातखण्डे जी ने इस प्रकार प्रबन्ध-रचना से सम्बद्ध कुछ प्रश्न तो उठाए हैं, परन्तु उनके उत्तर नहीं दिए, वे इस सम्बन्ध में सिद्धान्त-निरूपण नहीं करते।

भातखण्डे जी को भी पुरानी कही जानेवाली बन्दिशों से कम शिकायत नहीं है। कहते हैं :—"रस-पुष्टि को ध्यान में न रख कर बनाई हुई कुछ चीज़ों के शब्द राग की प्रकृति के अनुकूल नहीं होते।"[११]

भातखण्डे जी की इच्छा थी—"भावी पीढ़ी को नए गाने, राग तथा रस का ध्यान रखते हुए तैयार करना चाहिए, तथा उनका आलाप, विस्तार भी उसी आधार पर होना चाहिए। ऐसा करने से सोने में सुहागा-जैसा फल होगा।"[१२]

यह तो थी भातखण्डे जी की इच्छा, परन्तु उनका विश्वास था—"नई चीज़ें बनाने वाला स्वयं अच्छा गायक तथा कवि हो, तभी वह इस बात में सफल हो सकता है।"[१३]

वास्तविक कवि मूढ़, असहृदय अथवा अविवेकी हो ही नहीं सकता। चिन्तनीय बात तो यह है कि इस तथाकथित शास्त्रीय संगीत में समालोचना का दम भरने वाले प्राणी शब्द और उसके अर्थ को अनावश्यक समझने लगे हैं।

'पद' या सार्थक-वाक्य-समूह को प्राचीन आचार्यों ने 'प्रबन्ध' या 'बन्दिश' का 'नेत्र' कहा है, उस नेत्र को प्रयत्नपूर्वक फोड़ने वाले महारथी इस समय प्रतिष्ठित कलाकार और शिक्षक कहलाते हैं, तो संगीत के मुख में गंगाजल और तुलसीदल देने का समय आ गया है।

भाषा यदि बन्दिश का 'हाड़' है, तो राग 'मांस' है। ताल उसे आकार देता है। समझदार व्यक्ति को बन्दिश के हाड़-मांस, दोनों ही प्रिय होंगे।

खानदानी गायकों में जो लोग उर्दू पढ़े-लिखे होते थे, उनमें से कुछ अपने खानदानी गीत-संग्रहों में से कोई एक ग़ीत लेकर उसे किसी राग में मनमाने ढंग से चिल्लाते थे।

एक बहुत बड़े खयालिए थे, इन्होंने एक घराना ईजाद कर डाला। ये बिलंबित लय में केवल मुखड़ा गाते-गाते दिवंगत हो गए। छिपकर 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' शागिर्दों से पढ़वाते थे, राग का चलन भी उसी से समझते थे और भातखण्डे जी को बुरा भी कहते थे।

नौजवान खानदानियों की तो बात ही न पूछिए। इनके गाने-बजाने के साथ इनके बड़े-बूढ़ों की कला का कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु खानदानीपन की हेकड़ी में ये लोग दुहरे हुए जा रहे हैं।

---

१०. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ५, पृ० ४९-५०।
११. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृष्ठ २७।
१२. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृष्ठ २८।
१३. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृष्ठ २८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाँ साहब लोग अहिन्दीभाषी प्रदेशों में हिन्दी-भाषी प्रदेशों से गए। इनमें से अधिकांश व्यक्ति ऐसे थे, जिन्हें हिन्दी-भाषी रियासतों के दरबारों में प्रतिष्ठित स्थान न मिला। ऐसे लोगों ने अहिन्दीभाषी प्रदेशों में जाकर वहाँ की रूपाजीवाओं पर अपने 'गुण' का आतंक बिठाया, कुछ लोगों ने उनसे सन्तानें भी उत्पन्न कीं। इस प्रकार वहाँ जाकर अनेक सारंगी-वादक भी 'खयालिए' हो गए तो ध्रुवपद-गायकों के बच्चे भी नवीन शैलियों के निर्माता हो गए। अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के संगीत-रसिक ऐसे लोगों के शिष्य हुए, तो इनकी सेवा में रहकर 'तोतारटंत' करने लगे। अपने दोष को छिपाने के लिए एक ओर तो ये लोग शास्त्रीय गान से अर्थ को विदा करने की बात कहने लगे, तो दूसरी ओर अपने प्रत्येक कथन पर खानदानीपन का मिथ्या आवरण चढ़ाने लगे।

हमारी बन्दिशों में हमारी मुद्रा 'अनंगरंग' है, आप उनमें 'अनंग-रंग' के स्थान पर 'सदारंग' रख कर गाइए, तो ये लोग आपका लोहा मानने लगेंगे।

अहिन्दीभाषी प्रदेशों में वृद्धा रूपाजीवाएं 'उस्ताद' बन बैठीं, तो उनकी ऐसी लड़कियाँ भी बन्दिशें बनाने लगीं, जिनकी 'भोपाली' का पीछा 'देशकार' अब तक नहीं छोड़ता।

रूपाजीवाओं के कर्कश-कंठ शिष्य समालोचक बन बैठे हैं और उनकी स्थापना है कि 'बन्दिशें' बनाना उनके ऐसे भाई-बन्दों का ही काम है, जो 'भाषा' और 'राग' दोनों की ही कपाल-क्रिया करने में अनुपम हैं।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गान के कर्णधार आज वे लोग बन बैठे हैं, जिन्हें देखकर हँसी आती है और जिनकी बातें सुनकर आश्चर्य होता है।

यह स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय है, इसके निवारण के लिए नई प्रतिभाओं को बढ़कर आगे आना चाहिए। •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धमार

यदि आप से यह कहा जाये कि शहंशाह औरंगज़ेब मंगलामुखियों (वेश्याओं) के साथ धूमधाम से होली खेलते थे और वे यह कामना करती थीं कि शहंशाह लोमश ऋषि जैसी आयु पाकर उनके साथ 'धमारी' खेलते रहें, तो सम्भव है आपको आश्चर्य हो, परन्तु यह बात है सत्य। औरंगज़ेब संगीत का महान् मर्मज्ञ था, कद्रदान था। संगीत-ग्रन्थों का प्रणयन उस समर्पित करने के लिए हुआ और उसकी प्रशंसा में उसी प्रकार ध्रुवपदों और धमारों की रचना हुई, जिस प्रकार अकबर, जहाँगीर या शाहजहाँ की प्रशंसा में। अपने दरबार से संगीत का (संगीतज्ञों का नहीं) बहिष्कार तो औरंगज़ेब ने राजनीतिक कारणों से तब किया था, जबकि उसकी आयु प्रायः पचास वर्ष हो चुकी थी।

औरंगज़ेब के संगीत-प्रेम को 'संगीत-चिन्तामणि' प्रथम भाग (संगीत कार्यालय, हाथरस) में भली-भाँति प्रमाणित किया गया है। यहाँ तो यह चर्चा केवल यह सिद्ध करने के लिए है कि 'धमार' की धूमधाम केवल लोक-जीवन अथवा वैष्णवों के मन्दिरों में ही नहीं थी, अपितु मुगलों के, उनमें भी औरंगज़ेब तक के, दरबार और अन्तःपुर भी रंगीन धमारों से गूँजते थे।

अकबर की राजधानी आगरा थी, जो ब्रज-क्षेत्र है। ब्रज की होली देश भर में सदा से प्रसिद्ध रही है। राजा और रंक का अन्तर दूर कर देना, ब्राह्मण और चाण्डाल को गले मिला देना, अत्यन्त गम्भीर मुद्रा धारण करने वाले सज्जनों को भी अट्टहास करते हुए अच्छे-खासे आदमी में बदल देना, फक्कड़पन और मस्ती से भरे हुए एक रंगीन वातावरण की सृष्टि कर देना होली की विशेषता है। मुगल सम्राटों ने भी उत्सुकतापूर्वक इस त्योहार का स्वागत किया। तानसेन, उनके वंशजों और शिष्यों ने भी धमारों की रचना की और लोकगीत का यह प्रकार एक विशेष रूप धारण करके मुगल दरबार में प्रतिष्ठित हुआ।

'धमाल', 'धम्माली'[१] 'धमार', 'धमारि' इन चारों रूपों का मूल एक ही है। संस्कृत धातु 'धम्' का अर्थ सुलगाना, भड़काना, शब्द करना, ज़ोर से फूंक मारना और बजाना है। इसी धातु से बने हुए विशेषण का अर्थ सुलगाने वाला, भड़काने वाला, शब्द करने वाला इत्यादि है। इस शब्द की संस्कृत व्युत्पत्ति (धम+ऋ+अच्) 'धम इव मृच्छति' हो सकती, जिसका अर्थ होगा—'गान का वह प्रकार जो प्रेरित करता हुआ अथवा फड़काता हुआ-सा चले।'

---

१. महाराणा कुम्भा के 'संगीतराज' (प्रथम खण्ड पृ० ६१८) में 'धम्माली'—प्रकीर्ण प्रबन्ध के प्रकार विशेष के रूप में उल्लिखित है और उसे फ़लगत्सव में गेय कहा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'धमा-चौकड़ी', 'धूमधाम' और 'धमाधम' जैसे शब्दों में संस्कृत की धातु 'धम' का प्रभाव है। कार्तिकेय के एक अनुचर गण का नाम 'धमधम' और मातृका का नाम 'धमधमा' है। दोनों की उत्पत्ति पार्वती के क्रोध से हुई थी। इन दोनों संज्ञाओं में 'धम' धातु अपने अर्थों में विराजमान है।

अस्तु, लोक-संगीत में 'धमार' एक सामूहिक गान है, जो टोलियों में गाया जाता है। होली खेलने वालों की टोलियाँ रंग खेलती हुई 'धमार' गाती हैं और इनकी 'संगत' के लिये प्रधान वाद्य ढोल होता है। धमारों का वर्ण्य विषय होली से सम्बद्ध होता है। कन्हैया और गोपियों का होली खेलने का चित्रण भी धमारों की विशेषता है।

व्रज के मन्दिरों में वैष्णव सन्तों द्वारा रचित विशिष्ट पद 'धमार' ताल में गाये जाते हैं। मन्दिरों के आनुवंशिक कीर्तनकार उन पदों को 'धमार' ही कहते हैं। इन धमारों की संगति पखावज द्वारा होती है और कई कीर्तनकार स्वयं झाँझ बजा कर 'धमार' गाते हैं। इस गान के पीछे कीर्तनकारों की आनुवंशिक परम्परा है। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल् फ़जल ने 'आइने अकबरी' में 'कीर्तनिया' नामक ब्राह्मण संगीतजीवियों की चर्चा की है और इनके प्रमुख वाद्य रबाब, पखावज और ताल (झाँझ) बताये हैं। अकबर के युग में ब्राह्मणों के द्वारा 'रबाब' जैसे ईरानी वाद्य का बजाया जाना उन पर विदेशी वाद्यों के प्रभाव का द्योतक है। परन्तु, आज 'रबाब' के स्थान पर 'हारमोनियम' जैसा 'अंगरेज़ी बाजा' आ गया है। मुसलमानों के प्रभाव से पूर्व 'रबाब' या 'हारमोनियम' के स्थान पर वीणा थी।

मुगल-दरबारों में 'वीणा' का स्थान 'बीन' ने लिया था। 'बीन' शब्द वीणा का ही अपभ्रंश है। परन्तु 'बीन' का सारिका-स्थापन ईरानी पद्धति के अनुसार है और इसके वादक 'बीनकार' कहलाते थे। दरबारों में गाये जाने वाले धमारों की की संगति 'बीन' और 'पखावज' से ही होती थी।

उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध तन्त्री-वादक बहादुर हुसेन खाँ सदारंग की पाँचवीं पीढ़ी में थे और इसी परम्परा के ध्रुवपद गायक अमीर खाँ सदारंग की छठी पीढ़ी में थे। सदारंग के प्रसिद्ध पखावजी भवानीदासजी की परम्परा के प्रसिद्ध पखावज-वादक कुदऊसिंह थे। बहादुर हुसेन खाँ, अमीर खाँ और कुदऊसिंह का संग-साथ वाजिद अली शाह के दरबार में भी रहा और वाजिद अली शाह के पतन के पश्चात् रामपुर-दरबार में। रामपुर-परम्परा में सदारंग के युग का ही प्रतिनिधित्व है।

सभी ध्रुवपद-गायक यद्यपि धमार ताल में चौदह मात्राएँ मानते हैं, तथापि कुदऊसिंह जी की परम्परा इसकी मात्राओं का विभाजन ३+२+३+२+२+२ = १४ में करती है और इसकी 'थपिया' (ठेके) के बोलों का विभाजन 'कधिट, धिट, धऽ ध, तिन, तिन, तऽ' होता है। १२३।४५।६७८।६१०।११ १२।१३ १४ में पहली, छठी, ग्यारहवीं मात्रा पर 'पात' (ताली) और चौथी, नवीं एवं तेरहवीं मात्रा पर 'शून्य' (खाली) रहते हैं।

कुदऊसिंह जी की परम्परा के पखावज-वादक रामपुर दरबार के प्रसिद्ध पखावजी पं० अयोध्या प्रसादजी को इसी वर्ष संगीत नाटक एकेडेमी का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है और इस वर्ष ही उन्हें 'पद्मश्री' भी घोषित किया गया है। उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहना है कि 'धमार' ताल 'वृत्त' नहीं बनाता, अपितु एक त्रिभुज बनाता है, जिस की एक भुजा का परिमाण चार मात्रा है और अन्य दो भुजाएं पाँच-पाँच मात्रओं की हैं। इसका आकार 'सिंघाडे' जैसा है।

इस ताल के मात्रा-विभाजन में, बोलों के बाँट में, ताल के रूप में और इस की गायकी में एक बाँकपन, एक लुकाछिपी, क्रीड़ा के रूप में एक निकल-बैठ या दाँव-पेच या आँखमिचौनी है; कला इसी में है कि यह सब कुछ मारधाड़, धरपकड़, या धींगामुश्ती न हो जाय। 'प्रणयकेलि' कुश्ती न बन जाए। इसकी गायकी में गायक और पखावजी में मीठी छेड़छाड़ आदर्श है, मल्लयुद्ध नहीं। यथा—

मल्लयुद्ध नहीं रागरंग, कुश्ती नहीं रतिरंग।
कबहुं न रागिनि कामिनिहि, उछलि दबोचिय अंग॥
कछुक छिननि द्रुत लय भली, सोहु जु न तोरे अंग।
अंत हि ते आरंभ किये, बिनसत सब रसरंग॥

धमार की गायकी में अच्छा गायक मात्रा-प्रस्तार का आश्रय लेकर लय के असंख्य और विविध झूलों में झूलता और श्रोताओं को झुलाता है। पखावजी इस क्रिया में उसका साथ देता है। कभी-कभी इन दोनों में प्यार से नोंक-झोक भी होती है। 'सम' का बोल 'सम' से हट कर यदि गायक ने कहा और पखावजी ने वहीं पर 'धा' लगा दिया तो इसे 'मुँह लगाना' कहते हैं और यदि उस स्थान पर पखावजी 'धा' न लगा सका तो इसे 'मुँह निकलना' कहते हैं। गायक की चेष्टा होती है पखावजी से 'मुँह न लगे' और पखावजी का प्रयत्न रहता है कि 'मुँह' निकालने न पाये। गायक का कार्य सर्वथा उस सुन्दरी के कटाक्ष के समान है, जो दूसरों की दृष्टि बचा कर निहारती है और पखावजी का कार्य उस नायक की भाँति है, जो चोरी से निहारती हुई प्रियतमा की ओर जी भर कर देख ले। प्रत्यक्ष है कि इस कार्य में अति होना ठीक नहीं।

दरबार में गाये जाने वाले धमारों में शहंशाह भी नायक होकर आ गए थे। ऐसे धमारों की रचना दरबारी गायकों के द्वारा होती थी। जहाँगीर ने लिखा है कि तानसेन अपनी रचनाओं में अकबर का नाम डाल दिया करते थे। ऐमन राग में गेय एक धमार में मानिनी नायिका और दूती का वर्णन है। दूती कहती है—

"अब तो होली खेले ही बनेगी। रूठने से कुछ नहीं होगा। नवेली, तू मेरा कहना मान ले, तभी उस रंग में ओत-प्रोत होगी। मैं कई बार आई गई, परन्तु तू ठोड़ी ऊँची कर कर के भौंहे तानते ही रहेगी। शाह जलालुद्दीन (अकबर), आप फगुआ (फाग में दिया जाने वाला उपहार) दीजिए। अपने आप मान जाएगी। (व्यंजना सूक्ष्म है, यह सामान्य उपहार नहीं है)।"

धमार के बोल हैं—

होरी खेलेई बनेगी, रूसें अब न बनैगी।
मेरो कहो तू मान नवेली, जब वा रंग में सनैगी।
कई बेरि आई गई तू नहिं मानत, ऊँची करि ठोड़ी भौंहैं तनैगी।
साहि जलालदीन फगुआ दीजे, आपुतें आप मनैगी॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुगलों के अन्तःपुर में गायिकाओं या नायिकाओं की कमी न थी। इस संबंध में पाठकों को इटालियन यात्री मनुक्कि के विचार पढ़ना चाहिए। प्रसिद्ध इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूनी के इतिहास को पढ़ कर भी अकबर के जीवन के अनजाने पक्षों से परिचय प्राप्त किया जा सकता है। यह नहीं भूला जाना चाहिए कि जब अकबर के दरबार में तानसेन पहुंचे थे, तब अकबर की आयु केवल १८ वर्ष थी।

मुहम्मदशाह रंगीले के दरबारी कलाकार नेमतखाँ 'सदारंग' ने भी अनेक धमारों की रचना की है। इनकी रचनाओं में मुहम्मदशाह नायक हैं। 'सदारंग' संगीत और काव्य में महाकवि देव के शिष्य थे। एक धमार में कहते हैं—

अब तौ महमदसाहि पिय घर आए।
चहलपहल फागुन की देखौ, जित तित 'सदारंग' बरसाये।।
चैन सों गाओ बजाओ रहसि रहसि करि लाखनि लाखनि पाये।
इक होरी दूजे न्हाये रंग सों, यह सुख गिने न जाइ गिनाये।।

दरबार के गायकों ने व्रज और कन्हैया को भुला नहीं दिया था। सदारंग एक गोपी के मुख से नारी सुलभ शैली में यों बोल रहे हैं—

नये हो खिलार, नये हौ रसिया अनोखे, नई भई ठकुराई।
भलो बुरौ पहचानत नाहीं, एकहि बेर चले इतराई।।
नाउं न जानौं, गाउं न बूझौं, ऐसी व्रज में धूम मचाई।
रसिक छैल रसभीने गिरधर, 'सदारंग सुखदाई।।

सदारंग ने होली में वर्षा का आरोप इस प्रकार किया है—

फागुन मास में बरखा जहँ प्रगट दिखाई।
पिचकारी अरू भोडर चपला अबीर गुलाल घटा छाई।।
करि सिंगार हार मोती माल बग पंगति छबि धाई।
सदारंगीले छबीले मुहम्मदसा उमँगो झर लाई।।

सदारंग की दृष्टि से होली में वियोगिनी भी बची नहीं है, वे कहते हैं—

अब तौं कोकिल धूम मचाई।
प्रिय विदेस मोहि पाय अकेली, बिरहिनि जानि सताई।।
इक तो हती मैं बैरिन उनकी, करत चबाउनि आई।
बोलि बोलि अब बान से मारत, तन मन बेधत जाई।।
कूकि-कूकि डर पाई री जिय में, अति ही हूक बढ़ाई।
चितौ वसंत अब आयौ फागुन, कहा करौं मोरी माई।
याहि समै सुधि लीजौ, 'सदारंग' सुखदाई दुखदाई।।

आज संगीत के 'शास्त्रीय' कहे जाने वाले जगत् में गेय साहित्य के इस पारम्परिक रूप को गाने वाले भी दुर्लभ हैं और सुनने एवं समझने वाले भी। लोग
एक अन्य धमार में नूररंग ने होली का वर्णन यों किया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझते हैं कि 'सदारंग' ने केवल खयालों की रचना की है। अनेक ऐसे खयाल प्रसिद्ध हैं जो 'सदारंग' की रचना नही हैं और 'सदारंग' के समझे जाते हैं। अनेक के शब्दों की कपालक्रिया हो गई है। उन का अर्थ समझने वाले गायक और श्रोता दुर्लभ हैं और न अर्थ समझने की आवश्यकता ही समझी जाती है। संगीत क्षेत्र के तथाकथित आलोचकों ने भी इस पक्ष की उपेक्षा कर दी है। 'सदारंग' जैसे व्यक्ति की भाषा इन सब के लिए अबोध्य हो गई है।

'धमार'—रचना की परम्परा 'सदारंग' के पश्चात् भी आगे बढ़ी। 'सदारंग' के भतीजे और दामाद फीरोजखाँ 'अदारंग', रामपुर राजवंश के संस्थापक नवाब अली मुहम्मदखाँ के पुत्र नवाब मुहम्मद सादुल्लाखाँ के आश्रय में रहे। यह तथ्य अमीर मीनाई की रचना (१८७३ ई०) 'इन्तखाबे यादगार' से प्रमाणित है। अदारंग कहते हैं—

एरी नौंकु सूधे हम सों बोलि नारि।
होरी में गुमान काम नहिं आवै, तू तौ मुगध गँवारि।।
कहूँ रंग कहूँ अबीर गुलाल, कहूँ कुमकुमा, कहूँ पिचकारि।
हँसि हँसि फगुआ मांगियै मुख तें, अदारंग अँचरा डारि।।

'मनरंग' को सदारंग का पुत्र कहा जाता है। मनरंग ने जयपुर दरबार का आश्रय लिया था। 'मनरंग' के निम्नलिखित धमार में हिन्दू दरबार का पूरा प्रभाव है—

कछू ऐसो मन्त्र पढ़ि रंग छिरकौ री होरी के
दिननि में इनि मनमोहन बनवारी।
सकल त्रियनि मैं कौन सिखायो, हाँ न जानौं
ऐसी कौन है नारी बारी।।
मोहि जानि वृषभानु-दुलारी मन हरि
लीनो नंद के बिहारी।
'मनरंग' सहस गारी दै भई मतवारी बजाय तारी।।

'नूररंग' ने भी पारम्परिक शैली में धमारों की रचना की है। 'नूररंग' की विरहिणी इस प्रकार आकुल है—

आली आयौ जह फागुन मास, पिय कीनो गमन,
मो पै कैसे कटे जह रितु उन विन माई।
ज्यों ज्यों सुधि आवत मोहन की, ग्रह आँगन
अति दूभर, बिरह देत दुख दुखदाई।।
चहूँ ओर उफ बाजन लागे मनमथ करत चढ़ाई।
जह दुख वैरी पाधे लागौ बड़ौ कठिन है भाई।।
पल-पल छिन-छिन ऐसौ बीतत,
कर न सकत तेरी दुहाई।
'नूररंग' के दरस देखे बिना नैननि नींद न आई।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवत ही फागुन ऐसे निलज भये,
सव कैं देखत जह ढंग करत हौ प्यारे।
जह होरी कैसें खेलत हो, गुलाल मसल
अपने मन के कारज आगे वारे॥
वे का कहैंगी अपने जिय में समझि ढीठ हो हारे।
'नूररंग' हौं लाजन भींजी, मानि मेरी सिख,
अब तोहि मेरी सौं, अब सरकि जारे॥

'नूररंग' का निम्नलिखित धमार होरी के रसिया की धृष्टता का वर्णन यों करता है—

कटि लचकावत भौंहैं मटकावत, ऐसो ढीठ निलज या दैया।
जहँ पावत तहँ पकरि रंग में, बोरत है हलधर को भैया।
नूररंग' कहें या कौं तकत है, जैसो होईगो ब्रज को वसैया॥

'सबरंग' कहते हैं—

लाल लै गुलाल सखि मेरौ मुख गहि भींजै
गूँज मुरकी नथ की, इनि बरजोरी।
कंचुकी दरकी मोरी, अंक भरि लीनी,
यह गति कीनी है मोरी॥
लाल लँगर लँगराई करत हैं, गोरी दिननि को थोरी।
जाही नगर मैं अब 'सबरंग' सों खेली है मनभाई होरी॥

इसी परम्परा में 'अदारस' का प्रस्तुत धमार दे कर हम सन्तोष करेंगे—

कहा बैठी है री तू नारि, उठि चलि पिया पास खेलि लै होरी।
अतर गुलाब और चोवा चन्दन, और अबीर गुलाल की भरी लै झोरी॥
मेरे कहे तू उढि चलि पिय पर, मति करि मान ऐ गोरी।
अदारस मिलि करि फागु खेल लै, अविचल रहौ राधा-क्रस्न की जोरी॥

इन कलाकारों के साहित्य-पक्ष पर इन के समसामयिक कवियों का प्रभाव हैं, परन्तु इन गेय रचनाओं में पाठ्य काव्य के समान छन्द का बन्धन अनिवार्य नहीं है। राग-वाचक स्वर-सन्निवेश के कारण कभी-कभी 'तान' के अनुरोध से 'आ, ई, ऊ, ए, ऐं, ओ, औ' आदि का प्लुत उच्चारण होता है, ऐसी स्थिति के लिए छन्द बाधक है, क्योंकि उस में प्लुत उच्चारण के लिए अवकाश नहीं होता।

दरबारों की यह धमार-परम्परा दरबारों की स्मृति-मात्र है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथक : एक पुरातन तथ्य

आज प्रायः यह समझा जाता है कि कथक 'नाच' की एक उत्तर भारतीय शैली है, जिसके अनुसार नृत्य करने वाले कलाकार 'कथक' कहलाते हैं। यह भी कहा जाता है कि इस शैली के प्रमुख घराने दो हैं, लखनऊ घराना और जयपुर घराना। लोग यह कहने में भी संकोच नहीं करते कि लखनऊ घराने पर मुस्लिम-प्रभाव है और जयपुर घराना उससे अछूता है। कुछ लोग कथक-नृत्य को वेश्याओं का नाच कहते, इसमें उपासना-भाव का अभाव देखते और कथक के नाम से ही नाक-भौंह सिकोड़ते हैं। कुछ महानुभावों की दृष्टि में तो उत्तर भारतीय संगीत ही अभारतीय है।

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सब को है और किसी के लिए भी कोई बन्धन नहीं है। सामान्य जनता प्रचार से प्रभावित होती है और उसका शिकार हो जाती है।

आनुवंशिक कलाकार पठन-पाठन से प्रायः दूर हैं, शिक्षित कहे जाने वाले उनके भक्त संगीत के मूल ग्रन्थों को स्वयं से परिचित होने का सौभाग्य नहीं देते, इसलिए आलोचना-प्रत्यालोचना के क्षेत्र में भी स्वच्छन्दता के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत पंक्तियों में 'कथक' शब्द और कथक-सम्प्रदाय के विषय में कुछ विचार किया जा रहा है।

प्राचीन वाङ्मय में कथक शब्द

'कथक' शुद्ध संस्कृत शब्द है, जिसका सीधा-सादा अर्थ है 'कहने वाला'। इस शब्द का योगरूढ़ अर्थ है 'कथा से आजीविका कमाने वाला नाट्याचार्य।' 'शब्द-रत्नावली' जैसे प्रामाणिक संस्कृत 'शब्द-कोष 'कथक', 'एकनट' और 'कथाप्राण' शब्दों को समानार्थवाची बताते हैं। 'एकनट' शब्द का अर्थ 'नाट्य का प्रवर्तक मुख्य नट' और 'कथाप्राण' का अर्थ 'कथा से आजीविका कमाने वाला व्यक्ति' है। निष्कर्ष यह हुआ कि कथक वह नाट्याचार्य है जो कथा का अभिनय आयोजित करने में प्रमुख हो। संगीत के विश्वविख्यात-ग्रन्थ 'संगीत-रत्नाकर' के अनुसार नाट्य के आचार्य को गान, वादन और नर्तन के सिद्धान्तऔर व्यवहार में कुशल, वाणी पर अधिकार रखने वाला, सुन्दर, आकर्षक वेषयुक्त, सरस स्तुतियों में निपुण एवं सभाओं में किये जाने वाले परिहास में कुशल होना चाहिए।

'संगीत-रत्नाकर' ने राजसभा में राजा के बाईं ओर कथकों के बैठने का निर्देश 'कथका बन्दिनश्चैव वियावन्तैः प्रियंवदाः।' कह कर किया है।

'संगीत-रत्नाकर' तेरहवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में, देवगिरि (दौलताबाद) नगर निवासी आचार्य शार्ङ्गदेव के द्वारा लिखा गया है। दक्षिण भारत के सज्जन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज भी इस ग्रन्थ पर गर्व करते हैं, यह संयोग है कि उनका ध्यान संगीत-रत्नाकर में विद्यमान 'कथक' शब्द राजसभाओं में कथकों के सम्मानित स्थान तथा कथकों की योग्यता की ओर नहीं गया।

किसी भी भाषा का आश्रय लेकर जो अभिनय करने-कराने में कुशल हो, वह परम्परा के अनुसार 'कथक' है।

नृत्त, नृत्य और नाट्य

गीत की गति का अनुकरण करने वाला अंग-संचालन 'नृत्त' कहलाता है, 'भाव' के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। 'भाव' का आश्रय लेकर किया जाने वाला अभिनययुक्त अंग-संचालन 'नृत्य' है। रसाश्रित अभिनय 'नाट्य' है।

नाचने वालों के भेद

चारों प्रकार के अभिनय में कुशल व्यक्ति 'नट' कहलाता है। 'नृत्त' में कुशल व्यक्ति 'नर्तक' है। अनेक भाषाओं में कुशल, लोगों का विनोद करने वाला, 'नकल' करके दूसरों का उपहास करने वाला, लोगों की बुराइयों की ओर ध्यान दिलाने वाला व्यक्ति 'वैतालिक' है, 'भाँड़' और 'नक्काल' इसी कोटि में आते हैं। 'राधा-गोविन्दसंगीत सार' (रचना-काल १८वीं शती का अन्तिम भाग) के अनुसार 'भाट कवीश्वर' भी 'वैतालिक' हैं। किंकिणी वाद्यमर्मज्ञ, विकट नृत्य करने वालों से युक्त, समस्त रागों में कुशल व्यक्ति 'चारण' है। शस्त्रविद्या में निपुण, अत्यन्त भार का वहन करने वाला, रस्सी पर चलने और छुरी लेकर नाचने में कुशल व्यक्ति 'कोल्हाटिक' कहलाता है। इन प्रकारों से यह निश्चित होता है कि जहाँ 'कथक' का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और सम्माननीय है, वहाँ अन्य अंग संचालकों का क्षेत्र और कर्त्तव्य सीमित है।

यह कहा जा चुका है कि 'नृत्त' अभिनय वर्जित होता है। रस्सी घुमा कर अंग-संचालन का कौशल दिखाना इत्यादि 'बाजीगरी के काम' शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार 'विषम नृत्त' कहलाते हैं। विपरीत रूप, विरुद्ध वेष, बेतुके अंग-संचालन इत्यादि के द्वारा 'मटकने' को शास्त्रीय भाषा में 'विकट नृत्त' कहा जाता है और गाँवों की बहू-बेटियों द्वारा विभिन्न उत्सवों पर किया जाने वाला स्वच्छन्द अंग-संचालन 'लघु नृत्त' है।

लय प्रधान, परन्तु भाव-विहीन टुकड़ों, तोड़ों अथवा परनों के अनुसार अंग-संचालन अभिनयहीन होने के कारण 'नृत्त' है। इसका अन्तर्भाव भी आधुनिक कथक-शैली में है, परन्तु 'कथक' शब्द के अर्थ के साथ 'नृत्त' का कोई सम्बन्ध नहीं है।

लास्य और कथक शैली

'लास्य' में सुकुमार अंगों का प्रयोग होता है और इसे 'मकरध्वजवर्द्धन' (काम को उद्दीप्त करने वाला) कहा गया है। 'संगीत-रत्नाकर' के अनुसार जगज्जननी पार्वती ने बाणासुर की कन्या उषा को लास्य की शिक्षा दी। उषा का विवाह अनिरुद्ध से हुआ। उषा ने द्वारका की महिलाओं को लास्य की शिक्षा दी। उन लोगों ने सौराष्ट्र की महिलाओं को सिखाया। वहाँ से विभिन्न जनपदों की नारियों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'लास्य' का प्रचार और प्रसार हुआ। फलतः 'लास्य' लोक में प्रतिष्ठित हो गया। यह विश्वास 'शैवों' का है।

विष्णु श्रृंगार के देवता हैं, कृष्ण विष्णु के पूर्णावतार थे। उनकी बाल-लीलाएँ 'रास' में चरम परिणति को पहुँचीं। 'कथक' शैली सुकुमारता प्रधान लास्य से प्रभावित है। कृष्ण लीला कथक-शैली का प्राण हैं।

'श्रृंगार' को 'रसराज' कहा गया है। कथक के लखनऊ घराने की श्रृंगार प्रधानता अथवा कथक-शैली के प्राण 'लास्य' को 'मुस्लिम प्रभाव' कहना 'न्याय' नहीं है।

मुहम्मद करम इमाम और कथक-शैली

वाजिद अली शाह के समवर्ती लेखक मुहम्मद करम इमाम ने 'मअदन्-उल-मूसिकी' की रचना १८५५ ई० में की। करम इमाम के अनुसार नाचने वाले को नायिका-भेद का मर्मज्ञ होना चाहिए। अपने ग्रन्थ पर करम इमाम ने नायिका-भेद पर एक स्वतन्त्र अध्याय 'राजुन्निसा' (नारी-रहस्य) शीर्षक से लिखा है। उसकी दृष्टि में श्रृंगार-रस नाच का प्राण है।

मुहम्मद करम इमाम की दृष्टि में नाच के आविष्कारक 'महादेव' (भगवान् शंकर) हैं और 'कन्हैया' (भगवान् कृष्ण) ने नाच को पुष्पित और पल्लवित किया।

करम इमाम ने लल्लू जी और प्रकाश कथक, प्रकाश के भतीजे दुर्गाप्रसाद, प्रकाश कथक के पुत्र भानसिंह और उनके छोटे भाई, बनारस निवासी बेनी प्रसाद और परशद्दू कत्थक, हंडिया-निवासी रामसहाय कथक, रमजानी नक्काल, लखनऊ निवासी हुसैन बख्श, कायल अली और मिर्जा वाहिद कश्मीरी, कन्हैया नक्काल जैसे नाचने वालों की चर्चा की है।

इस सूची में हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। कुछ लोगों को 'कथक' कहा गया है और कुछ लोगों को 'नक्काल'। ये विशेषण इन कलाकारों के रक्त का बोध कराते हैं अर्थात् काम एक होने पर भी इनकी जातियाँ पृथक् हैं। नक्कालों में हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी।

मुहम्मद करम इमाम ने 'आगमिष्यत्-पतिका' के उदाहरण में यह शेर दिया है—

किया है शाम का वादा किसी ने आने का
कि मुँह पे आपके फूली शफक अभी से है।

'शफक' का अर्थ क्षितिज पर छाई लालिमा है।

नाचने वालों की इस सूची के 'प्रकाश कथक' ही प्रकाश जी हैं, जिन्होंने वाजिद अली शाह के आश्रय में रह कर 'पोथी-प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की।

मुहम्मद करम इमाम के समस्त विश्वास भारतीय परम्परा के अनुकूल हैं।

जानी साहब और कथक शैली

जानी साहब (रामपुरनिवासी साहब जादः मुहम्मद अशफाक अली खाँ) ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने ग्रन्थ 'नगमातुल्हिन्द' में नाच की चर्चा भी संक्षेप में की है।

जानी साहब के अनुसार 'नाच' के आविष्कारक महादेव और पार्वती हैं। 'कथक' इस काम को अत्यन्त प्राचीन काल से करते आए हैं।

जानी साहब का कथन है कि ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा और कहरवा के बोलों का 'भाव' कथक को बताना चाहिए। 'सभा-भाव', 'अंग-भाव', 'नयन-भाव', 'अरथभाव' (रूप) और 'निरत-भाव' भाव बताने के प्रकार हैं।

'ग़ज़ल' अरबी भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है, जिसका अर्थ 'प्रेमपात्र से वार्तालाप' है। 'ग़ज़ल' शाइरी का एक विशिष्ट प्रकार है, जिसमें पाँच से लेकर ग्यारह तक 'शेर' होते हैं। प्रत्येक 'शेर' स्वयं में स्वतन्त्र होता है। पहला शेर 'मत्ला' कहलाता है, जिसकी दोनों पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास होता है। अन्तिम 'शेर' 'मक्ता' कहलाता है, जिसमें शाइर की 'मुद्रा' होती है। ग़ज़ल का संग्रह 'दीवान' कहलाता है।

'ग़ज़ल' का विषय 'शृंगार' होता है, उसका अभिनय कथकों की पुरानी परम्परा है, क्योंकि अभिनय तो 'भाव' अथवा 'रस' के आश्रित होता है।

मुहम्मद करम इमाम और जानी साहब दोनों ही लेखक मुस्लिम लेखक हैं, इन दोनों में से कोई भी 'कथक' के साथ 'अरब' या ईरान को नहीं जोड़ता। अतः मुसलमान लोग कथकों से प्रभावित कहे जाएंगे।

कथक और जयपुर

राजस्थान की शूरता और लखनऊ की 'सुकुमारता' दोनों ही अच्छी बातें हैं। 'लास्य' का सम्बन्ध 'सुकुमारता' से अधिक है। शूरता अथवा उद्धतता 'ताण्डव' की विशेषता है, 'लास्य' की नहीं।

जयपुर-नरेश सवाई प्रतापसिंह जी (राज्यकाल १७७९-१८०४ ई०) ने 'राधा-गोविन्द-संगीत सार' नामक एक विशाल संगीत-ग्रन्थ की रचना ब्रजभाषा में (राजस्थानी में नहीं) कराई। इसमें एक अध्याय 'नर्तन' से सम्बद्ध है।

'राधागोविन्द संगीत-सार' के प्रणयन में अनेक पण्डितों और गुणियों का योग था। इनके प्रमुख पं० नन्दकिशोर तिवारी थे। मथुरा-निवासी श्री कृष्ण भट्ट तैलंग, श्री चुन्नीलाल भट्ट और इन्दोरिया गौड श्री रामराय मिश्र प्रमुख सहायक थे।

इस ग्रन्थ के नर्तनाध्याय में 'कथक' शब्द नहीं है। इस ग्रन्थ में नाचने वालों के छः प्रकार वेश्या, नट, भगत, नटवा, चारण और वैतालिक बताए हैं। इस ग्रन्थ के अनुसार 'वैतालिक' और 'भाट कवीश्वर' समानार्थवाची हैं। 'रासमण्डल नृत्य' की चर्चा भी इस ग्रन्थ में है। ध्रुवपद, छन्द, प्रबन्ध, दोहा, कवित्त इत्यादि के अर्थ का अभिनय विहित है, यह कार्य 'नट' का बताया गया है। कुछ 'नकलें' भी इस ग्रन्थ में हैं।

जयपुर संगीत का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। सवाई प्रतापसिंह के शासन-काल में अवध के शासक आसफुद्दौला, बनारस के शासक महाराज चेतसिंह और रामपुर के शासक फैजुल्लाह खाँ थे। ये सभी दरबार गुणियों का लेन-देन करते रहते थे। एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही वंश की सन्तानें विभिन्न दरबारों में आश्रय लेती थीं और कालान्तर में स्थानीय प्रभाव का द्योतक है, जाति, सम्प्रदाय इत्यादि का द्योतक नहीं।

कथक नाच की सीमाएँ

सैद्धान्तिक रूप में कथक का कार्य सभी रसों का परिपाक अभिनय के द्वारा करना है। यदि कृष्ण की पूरी जीवन-गाथा का अभिनय करना हो, तो कोई 'रस' ऐसा नहीं, जो उसका अंग न बन जाए, परन्तु शतियों से कथकों ने अभिनय के लिए प्रायः शृंगार-रस को अपना लिया है, कृष्ण और राधा उनके नायक और नायिका हैं। वाजिद अली शाह के दरबार में भी 'शीरी-फ़रहाद' या 'लैला-मजनू' ने उनका स्थान नहीं लिया। वाजिद अली शाह ने भी 'इन्दर-सभा' सजाई, अप्सराएँ वहाँ 'परियाँ' हो गईं। 'सुहराब-सभा' अथवा 'रुस्तम-सभा' की कल्पना वाजिद अली शाह ने भी नहीं की। सीधी-सी बात यह है कि प्रतिभाशाली कथकों ने वाजिद अली शाह को 'कन्हैया' बनने पर विवश कर दिया। यह अलग बात है कि कथकों के कन्हैया श्रीमद्भागवत के कृष्ण से सर्वथा भिन्न हैं। रासधारियों के कृष्ण भी उनके अपने कृष्ण हैं। कथकों के 'कृष्ण', रीतिकालीन कवियों के 'कृष्ण' के निकट हैं।

यह सत्य है कि कथकों ने 'ग़ज़ल' के भावों का अभिनय किया। 'मिलन' और 'वियोग' की स्थितियाँ 'सनातन' और 'सार्वभौम' है। ग़ज़ल सुनकर, उसकी भाषा और अभिनय को समझने वाले प्रत्येक सहृदय को आनन्द आएगा। 'ग़ज़ल' तो उर्दू 'ठुमरी' है।

सूफी सन्त सदा से 'ग़ज़लें' सुनते आए हैं, उनकी दृष्टि में ग़ज़ल का अर्थ अध्यात्मपरक होता है। ईश्वर उनका 'प्रियतम' है, वे स्वयं 'बहुरिया' हैं, 'गुरुबंधु', सखियाँ हैं, गुरु 'दूती' है, जीवन 'वियोग' है, मरण 'विवाह' है, शवयात्रा 'डोली की विदा' है। ग़ज़ल का अभिनय नई बात नहीं है।

लयवैचित्र्य के लिए अंग-संचालन मात्र 'नृत्त' है। यह 'उद्धत' होता है, परन्तु नारियाँ भी उद्धत हो तो सकती ही हैं। 'उद्धत' होना एक बात है और 'उद्दंड' होना दूसरी बात। सुकुमार की उद्धतता में भी एक लालित्य होगा, कठोर की उद्धतता में उस लालित्य के दर्शन न होंगे।

'लास्य' सुकुमार होता है, काम को उद्दीप्त करना उसका गुण है। मेनका के लास्य पर विश्वामित्र मर मिटे, दण्ड-कमण्डलु छोड़कर कामशास्त्र का अभ्यास करने लगे। स्पष्ट है कि विश्वामित्र की इस स्थिति के लिए न तो वाजिद अली शाह उत्तरदायी हैं, न कथकों का लखनऊ-घराना।

कालिदास ने कुमार सम्भव में जगज्जननी पार्वती और देवाधिदेव शंकर की 'रति' का उन्मुक्त वर्णन किया है। महाकवि कालिदास वाजिद अली शाह के दरबारी नहीं थे। हिमाचलतन या पार्वती ने उषा को कामवर्द्धन 'लास्य' का उपदेश दिया था, उन पर कथकों के लखनऊ घराने का तो प्रभाव नहीं था।

'काम' के नाम से चौंकनें वाले 'बगुला-भगत' यह याद रखें, तो अच्छा है कि 'काम' ही 'मर्म' और 'अर्थ' की ओर प्रेरणा देने का कारण है। महर्षि वात्स्यायन प्रमाण हैं, वे भी लखनऊ घराने के नहीं थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि पौरुषप्रधानता जयपुर घराने की विशेषता है, तो ताण्डव के आचार्य देवाधिदेव शंकर, उनके शिष्य तण्डु और रावण जयपुर घराने में आ जाएँगे और सुकुमार नृत्य लास्य की जननी पार्वती को लखनऊ घराने में रखना पड़ेगा।

कथकों का कर्त्तव्य

कृष्ण 'गोपिका वल्लभ' ही नहीं, 'गोवर्द्धनधारी', 'कंसहन्ता', 'पार्थसारथि', 'गीता के उपदेष्टा' और 'योगिराज' भी हैं। इन सभी रूपों का अभिनय आज 'कथकों' के द्वारा अपेक्षित है। इसलिए किसी भी घराने के 'कथक' को 'राधा-गोविन्द संगीत-सार' तथा उसके मूलग्रन्थों तक पहुँचना होगा, तभी उनके क्षेत्र में व्यापकता आएगी। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्दिरों में कथक नृत्य

कथक शब्द का अर्थ है, कथा कहने वाला, परन्तु कथा बाँचने वाले व्यास लोग कथक नहीं हैं। कथक शब्द का एक अन्य पर्याय है, कथाप्राण अर्थात् वह वर्ग, जिसकी प्राणयात्रा कथा से चलती हो, इसे नाट्यवक्ता भी कहा गया है। कथक शब्द का एक अन्य पर्याय है, एक नट अर्थात् जो अकेला ही किसी कथा के सम्पूर्ण पात्रों का अभिनय करता हो। इस सबका निष्कर्ष यह है कि कथा का अभिनय करके आजीविका चलाने वाला वर्ग विशेष कथक कहलाता है।[1]

अमरकोष के व्याख्याकार महेश्वर के अनुसार चारण और कुशीलव शब्द भी कथक नामक विशेष नटों के पर्याय हैं।[2] मनुस्मृति में चारणों और कुशीलवों की चर्चा असवर्ण एवं कलाजीवी जातियों के अन्तर्गत की गई है।

देवगिरि अर्थात् वर्तमान दौलताबाद में बैठकर कश्मीरी आचार्य शार्ङ्गदेव ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' लिखा। इस युग में दिल्ली पर शम्सुद्दीन इल्तुतमिश का शासन था और भारतीय विद्याएँ नर्मदा के दक्षिण पार्श्व में चली गई थीं। आचार्य शार्ङ्गदेव ने कथकों और बन्दीजनों का स्थान सभा में राजा के बाईं ओर निश्चित किया है।[3] यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि लोक और वेद के समर्थ विद्वानों, रसिकों और कवियों का स्थान संगीतजीवियों से सर्वथा पृथक था।

अस्तु, यह सिद्ध है कि शार्ङ्गदेव के युग तक कथक लोग नृत्य-शास्त्र के निष्णात विद्वान होते थे। राज सभा में उनका सम्माननीय स्थान था। शास्त्रज्ञ कथक लोग नर्मदा के दक्षिण में चले गए थे।

तेरहवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में कथकों के गाने की एक विशिष्ट रीति हो गई थी, जिसे कथकरीति कहा जाने लगा था। इस युग के एक दिगम्बर जैन आचार्य ने गानरीतियाँ छः बताई हैं। चोक्षगायनरीति, योगिरीति, मलिनगायन-रीति, योषिद्रीति, पेरणरीति और कथकरीति। चोक्षगायनरीति का अर्थ चोखा गायक है, मलिन गायन का अर्थ गंदला गाने वाला, योगी शब्द का अर्थ भजनानन्दी

---

१. कथक : कथपति यः, कथकर्तरिण्वुल्। वक्ता। कथोपजीवी। नाटक वर्णनकर्ता। तत्पर्यायः। एकनटः, कथाप्राणः। शब्दकल्पद्रुमः।

२. अमरकोष, द्वितीयकाण्ड, श्लोक १२ पर महेश्वर की टीका—'चारणः कुशीलवः द्वे कथकानां नटविशेषाणाम्।"

३. "आसीनाः वामभागे स्थुरग्र वाग्ग्रयकारकाः। कथका वन्दिनश्वात्र विद्यावन्तः प्रियंवदाः। प्रशंसाकुशलाश्चान्य चतुराः सर्वभातुसु च।"

—संगीतरत्नाकर, सप्तमम् अध्याय श्लोक-१३४८, १३४९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गवैया है, नारियों की रीति का घर की बहू-बेटियों की शैली है, पेरणरीति का अर्थ बहुरूपियों की शैली है।[४]

यहाँ कथकरीति को सबसे अन्त में गिनाया है, जो व्यंजित करता है कि कथकों की गानशैली में पर्याप्त विकार आ चुका था।

अमीर खुसरो के समकालीन एक श्वेताम्बर जैन आचार्य वामनाचार्य सुधाकलश हुए हैं, इनका कार्यक्षेत्र भारत का पश्चिमी भाग और वर्तमान मध्यप्रदेश का कुछ भाग था। इस समय तक देश के इस भाग में संगीत की दशा शोचनीय हो गई थी। प्रबन्धकार खोज का विषय हो गए थे और प्रबन्धों के गाने वाले भी दुर्लभ थे।[५] आचार्य सुधाकलश ने इस स्थिति का चित्रण किया है।

इस युग में नर्तकों की दशा भी शोचनीय हो गई थी। आचार्य सुधाकलश कहते हैं—इस युग में नर्तक मूर्ख हैं, विद्वान साधक नहीं हैं, अच्छे नर्तकों के बिना ढंग का अभ्यास सम्भव नहीं, अतः सिद्धि असम्भव है। आजकल के नर्तकों को वानरों की भाँति बचपन से सधाया जाता है और वे अपनी निजी भाषा का आश्रय लेते हैं।[६]

सीधी सादी बात यह है कि उस युग तक भारतीय राजसभाएँ क्षतविक्षत हो चुकी थीं और देवमन्दिर धूलिसात् हो चुके थे। संगीतज्ञों के लिए दो ही आश्रय थे, राज्याश्रय अथवा देवाश्रय। दोनों का ही अभाव होने पर ही शास्त्र चिन्तन अवरोध में पड़ गया था। कहावत है कि शस्त्रों के द्वारा राष्ट्र के रक्षित होने पर शास्त्रों का चिन्तन होता है।

तेरहवीं शती ई० के अन्त और चौदहवीं शती ई० के आरम्भ में अलाउद्दीन और उसके सेनापति मलिक काफूर के आक्रमणों ने दक्षिण भारत को भी झंझोड़ डाला और वहाँ के संगीत-सम्प्रदाय भी उच्छिन्न हो गए। दक्षिण भारत का सौभाग्य था कि चौदहवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में नवस्थापित विजयनगर-साम्राज्य ने शृंगेरीपीठ के शंकराचार्य विद्यारण्य स्वामी के निर्देशन में शास्त्रों एवं सम्प्रदायों का पुनरुद्धार करने की चेष्टा की, यह प्रयत्न १५६५ ई० तक निर्बाध रूप में चलता रहा। १५६५ के तलकोटा युद्ध में विजयनगर-साम्राज्य का पतन हुआ जबकि अकबर का शासन-काल था।

---

४. चोक्षगायनरीतिश्च योगिरीतिः क्वचिद् भवेत्।
मलिनगायन रीतिश्च रीतिस्सा योगितां क्वचित्।
क्वचित् पेरणरीतिश्च रीतिः कथक संसिताः।
रीतिर्भंगिरीतियोक्ता रीतिलक्षणकोविदैं॥
संगीतसमयसार, अध्याय ५ श्लोक २२२, २२३।

५. प्रबन्धबंधकर्तारो विरलाभूतले धुना। तद्गायनाश्च न प्रायोप्तो नोक्तास्ते सरिस्तराः।
संगीतोपनिषत् सारोद्धार अध्याय प्रथम, श्लोक ३

६. कालेअस्मिन्नर्तकाः मूर्खाः विद्वांस साधका नहि।
न नर्तकान् विनाभ्यासः शास्त्रात् सिद्धिर्न संविना।
आबाल्यात् कपिवंते हि साध्यांते ते स्वभाषया॥
संगीतोपनिषत्सारोद्धार अध्याय ६, श्लोक १२९-१३०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विजयनगर के विघटन के पश्चात् तंजोर, मदुरा, मैसूर, जिन्जी और पेनुकोण्डा के हिन्दू शासक स्वतन्त्र हो गए और नायक राजा कहलाए, इन राजाओं की सभाओं में शास्त्रों के पुनरुद्धार का कार्य जारी रहा। वहाँ मन्दिरों और दरबारों का धर्म एक था, यही कारण है दक्षिण का शास्त्रीय कहा जाने वाला संगीत भक्ति-परक है, और उसके साधक प्रायः विद्वान ब्राह्मण रहे हैं।

नृत्य के क्षेत्र में भी पूर्वोक्त कारणों से शास्त्रों का सम्बन्ध प्रयोग के साथ पर्याप्त सीमा तक बनाये रखा गया है। तथापि भरतनाट्यम् जैसे सम्प्रदाय प्राचीन सम्प्रदायों का पुनरुज्जीवित रूप हैं।

उत्तर भारत में मथुरा और वृन्दावन जैसे स्थान आक्रमणकारियों द्वारा अहमदशाह अब्दाली के युग तक पददलित होते रहे। यद्यपि सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध में हित हरिवंशजी और हरिदासजी के प्रयत्नों से रासलीला इत्यादि कृष्णलीलाओं को पुनरुज्जीवित किया गया और सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास ने रामलीला का प्रवर्तन किया, तथापि जिन रासधारी ब्राह्मणों को यह कार्य सौंपा गया, वे भक्ति-भावना के प्रचारक अधिक थे, कला की दृष्टि से उन रासधारियों का प्रयत्न कहाँ तक महत्वपूर्ण था, यह स्पष्ट है। राधा और कृष्ण रूप धारण करने वाले बालकों की वय आठ-नौ वर्ष से अधिक नहीं होती थी। आचार की दृष्टि से यह ठीक भी था।

१९वीं शती ई० के आरम्भ में जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह के प्रयत्न से राधागोविन्द संगीतसार नामक एक विराट ग्रन्थ की रचना ब्रजभाषा में हुई। इसके नर्तनाध्याय में नृत्य शास्त्र का निचोड़ रखा गया। इस ग्रन्थ के अध्ययन से प्रतीत होता है कि महाराज प्रतापसिंह अपने दरबार के कथकों को नृत्य शास्त्र से परिचित कराना चाहते थे परन्तु प्रतापसिंह के दरबार पर मुगलों का प्रभाव कम न था, क्योंकि मुगलों के अन्तःपुर में तो उनके वंश की पुत्रियाँ विराजमान थीं। अतः महाराज प्रतापसिंह जी का प्रयत्न पूर्णतया फलीभूत न हुआ, तथापि उस युग में प्रचलित नृत्य-शैली का आभास इस ग्रन्थ में है। यह स्पष्ट है कि उस युग में जयपुर के कथक नृत्य के आरम्भ में गणेशवन्दना करते थे। उस प्रबन्ध के बोल भी 'राधा-गोविन्द संगीतसार' में हैं।

दिल्ली अथवा आगरा उत्तर भारत में मुस्लिस शासन के केन्द्र रहे। मथुरा या वृन्दावन के भक्त कवियों को अकबर का मुख देखने से दुःख होता था। दरबारी कलाकार स्वयं को आभिजातवर्ग से सम्बद्ध एवं शासन का लाड़ला समझते थे। अकबर जैसे मुगलों के राजपूत सामन्त मथुरा या वृन्दावन में मन्दिर भले ही बनवा देते हों या ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा से भले ही समय-समय पर संतुष्ट करते हों, परन्तु उनकी रहन-सहन, वेशभूषा इत्यादि पर मुगल दरबारों का प्रभाव कुछ कम न था, उन्हें राजनीति से अवकाश न था। अतः संगीतशास्त्र के पुनरुद्धार की आशा उन लोगों से करना ही व्यर्थ है। उनके दरबारों में भी प्रायः मुगल शैली के ही संगीतज्ञ थे।

नाच मुगल दरबारों में भी होता था, उनका अपना निजी ढंग था। कुछ कथक भी मुगलों के रंग में रंग गए थे।

वाजिदअली शाह को अवध का कन्हैया कहा जाने लगा था। उस युग के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथकों के कन्हैया हट्टे-कट्टे विलासी थे, व्रज के कन्हैया की भाँति सात बरस के नहीं थे, लखनऊ दरबार की गोपियाँ वारांगनाएं थीं। वाजिद अली शाह के 'रहस' का कोई भी सम्बन्ध व्रज के रास से नहीं था। रासधारियों में नारियों का कोई स्थान नहीं था।

अनुभवों का निष्कर्ष ही लिपिबद्ध होकर शास्त्र कहलाता है। अनुभव में जितनी वृद्धि होती है, शास्त्र का विस्तार उतना ही होता है।

वाजिद अली शाह की अपनी उद्भावनाएं थीं, वह उन्हें मूर्त देखना चाहता था। उसके नाच का प्रमुख विषय श्रृंगार था, अतः उसके आश्रित कथकों ने इसी क्षेत्र में अपनी प्रतिभा को एकाग्र कर दिया, वारांगनाओं को भी शिक्षा दी।

वाजिद अली शाह के समकालीन ग्रन्थकार मुहम्मद करम इमाम के अनुसार हाथ, पैर, गर्दन, आँख, भौंह तथा शरीर के अंगों को ताल के अनुसार सम पर लाना नृत्य है।[७] कथक-नृत्य में इक्कीस गतें या गतियाँ हैं, जिनके नाम हैं, किशना गत, परी गत, सलामी गत, फरियाद गत, मुकुट गत, आँचल गत, मुस्कराती गत, मुयद्दब गत, हुस्न गत, घूँघट गत, महबूब गत, नाज गत, गम्जः ग़त, अदा गत, नेक गत, साइक: गत, करिश्म: गत, दोस्ती गत, जादू गत, महबूबः गत, वर्क गत। इनमें से सात गतें मुहम्मद करम इमाम का अपना आविष्कार हैं।[८]

बैठकर अभिनय करना इस शैली में भाव बताना कहलाता है, ये भाव चौबीस गिनाए गए हैं।[९]

बाज की भाँति गर्दन हिलाना डोरा कहलाता है।[१०]

सूफी लोग भी नाचते थे, वे ईश्वरीय प्रेम में नाचते थे।[११] मुस्लिम दरबारों में नाचने वाले किशोर लड़कों और नर्तकियों का क्षेत्र भी श्रृंगार था।

वाजिद अली शाह के युग में नाचने वाले हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। लल्लूजी, प्रकाशजी, प्रकाश जी मानसिंह, लखनऊ के पुत्र थे। बेनीप्रसाद और परशद्दू कथक बनारस के थे, हँडिया-निवासी रामसहाय ने बांदा में आश्रय लिया था। मुसलमानों में हुसेनबख्श, कायम अली, मिर्जा वाहिद कश्मीरी थे। रमजानी नक्काल भी अच्छा नाचता था। कन्हैया नक्काल, वाजिद अली शाह का शिष्य था।[१२]

कथकों ने अभिनय के लिए विशिष्ट ठुमरियों की रचना की थी लय वैचित्र्य, चंचलता और विभिन्न प्रकार के भावों की योजना जिनमें थी। कथक लोग ग़ज़ल गाते और उन पर अभिनय भी करते थे।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कथक लोग अपनी बेटियों या बहुओं को नाच की शिक्षा कभी नहीं देते थे, क्योंकि वे समझते थे कि यह वेश्याओं का कार्य है। वेश्याओं को वे निस्संकोच नचाते थे, उनसे धन लेने में भी उन्हें संकोच नहीं था, परन्तु उनकी बहू-बेटियाँ स्वयं कथक-नृत्य की राधा बनें, यह उन्हें सह्य नहीं था।

---

७. मअदन् उल् मूसिकी, पृष्ठ २०६।
८. वही, पृष्ठ २०६-२०९।
९. वही, पृष्ठ २१०।
१०. वही, पृष्ठ २११।
११. मअदन् उल् मूसिकी, पृष्ठ २११।
१२. वही, पृष्ठ ४९।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं न तो उन्हें लखनवी कन्हैया बनने में संकोच था, न अपने पुत्रों को कन्हैया बनाने में।

पातुर या पतुरिया शब्द प्राचीन शब्द पात्र का अपभ्रंश है। संगीत रत्नाकर के अनुसार नृत्य का पात्र नारी ही हो सकती थी। मुग्धा, मध्यमा और प्रगल्भा नारी को पात्र बनाया जाता था। रति के प्रति उत्साह मुग्धा में, इसकी अपेक्षा अधिक रतिनैपुण्य मध्यमा में, रति में उन्मादपूर्ण उत्साह प्रगल्भा में गुण माना जाता था। ऐसी स्थिति में सामान्या या गणिका ही पात्र या पातुर का काम कर सकती थी।

इस विषय में कथकों ने परम्परा का पालन किया और सम्भवतः आज तक भी कथकों की बहू-बेटियाँ नाचती नहीं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की राजधानी में भारतीय कलाओं के संरक्षण, संवर्द्धन और पुनरुद्धार की बात सोची गई। नृत्य की विविध शैलियाँ मंच पर आईं। कुछ शैलियों में लोगों को प्राचीन शास्त्रों की झलक दिखाई दी, उनके गुरूओं में लोगों को विद्वता और कला में व्यापकता दिखाई दी।

कथक के गुरू लोग आचार-विहार, आहार-विचार, शिक्षा-दीक्षा में अन्य गुरूओं से पृथक थे, क्योंकि इनके पूर्वजों की कला का क्षेत्र केवल शृंगार था। हाँ इनके कन्हैया कभी-कभी माखन भी चुरा लिया करते थे, वैसे उनका कार्य गोपियों से छेड़छाड़ था।

कथक के विरोधियों को कथक में सर्वथा मुस्लिम प्रभाव दिखाई दिया, तब कथकों की वेशभूषा में अन्तर आया।

'रामचरितमानस' में सभी रस हैं। जब 'रामचरितमानस' को अभिनीत करने का अवसर आया, तब कथकों के समक्ष एक समस्या उठ खड़ी हुई, सभी रसों के अभिनय की शिक्षा इनके सम्प्रदाय से कभी की लुप्त हो चुकी थी।

कथक के अनुरागियों ने सोचा कि कन्हैया और गोपियाँ अपने सम्प्रदाय में हैं ही, वाजिद अली शाह रहस किया ही करते थे, चलो ब्रज के रास में कथक का मूल खोजा जाए, परन्तु रास एक विशिष्ट सामूहिक नृत्य था, जिसका अत्यन्त विकृत रूप रासधारियों में बचा है। कथक शब्द में तो अत्यन्त व्यापकता है, कथक का कार्य तो जीवन की सुख-दुःखमय सम्पूर्ण अवस्थाओं का अभिनय है।

कथक-शैली के युगपुरुष स्वर्गीय अच्छन महाराज के सत्संग का लम्बा अवसर हमें बाल्यकाल से ही मिला। उनकी प्रशंसा के लिए हमारे पास शब्द नहीं, वे शृंगार की प्रतिमूर्ति और लय के अवतार थे, परन्तु उनकी कला की सीमाएँ थीं। वे लखनवी तहजीब के इत्र थे। बड़ी अच्छी उर्दू बोलते थे, नजाकत और नफासत उनकी रग-रग में भरी थी।

रास के कुछ स्वर्गीय आचार्यों से भी विचार-विनिमय का सौभाग्य हमें मिला है नृत्य-शास्त्र की चर्चा सम्मुख किया जाना व्यर्थ था। वे लोग सीधे-सादे ब्राह्मण थे, कृष्ण चरित्र की विभिन्न लीलाएँ करके निर्वाह करना उनका लक्ष्य था।

राधागोविन्दसंगीतकार के अनुसार कुछ अभिनेता लोगों ने द्वारका पहुँचकर भगवान् कृष्ण के सम्मुख, उनके जन्म से लेकर द्वारका पहुँचने के बाद तक की प्रमुख घटनाओं का अभिनय विभिन्न लीलाओं के शीर्षकों से किया। भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर उन अभिनेताओं को प्रभूत द्रव्य दिया और कहा कि तुम सत्पुरुषों और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभिन्न देवताओं का अभिनय करके आजीविका चलाओ और किसी से भी याचना न करो।" इसीलिए रासधारी लोग कृष्णलीलाओं का अभिनय करते हैं। ऐसी स्थिति में रासधारियों और कथकों में समन्वय करना सरल नहीं है।

नृत्य का सामान्य सिद्धान्त है : शरीर से गीत का आलम्बन, हाथों से अर्थ का प्रदर्शन, नेत्रों में भावों का भावन और पैरों से ताल का निर्णय करना चाहिए।" यह विशेषता सभी नृत्यों में दिखाई देती है।

अगली बात है : "जिधर हाथ हो, उधर दृष्टि हो, जिधर दृष्टि हो, उधर मन हो, जिधर मन हो, उधर भाव हो, जिधर भाव हो रस होना चाहिए।" जब तक विभिन्न भावों और रसों के अभिनय की शिक्षा नहीं होगी तब तक बात कैसे बनेगी।

मात्र विक्षेप के द्वारा गीतमात्र का अनुकरण नृत्य भावाश्रित नर्त्तन नृत्य और रसाश्रित अभिनय नाट्य कहलाता है। जीवन की सुख-दुःखमय स्थितियों में मनुष्य के अंगों, प्रत्यांगों और उपांगों में कुछ स्वाभाविक चेष्टाएँ होती हैं। चिन्तक मनीषियों ने इनका अध्ययन करके इन्हें लिखित रूप दे दिया, यही शास्त्र है। मनुष्य के अनुभवों में जितनी वृद्धि होती है, शास्त्र का उतना ही विस्तार होता है। शास्त्र को सीमित समझ कर बँधे रहना पड़ता है, तो शास्त्रों से अपरिचित पूर्वजों के अनुभव से वंचित रहना है।

कथक के अनुरागी कथक के क्षेत्र में कुछ नया करना चाहते हैं; अच्छी बात है। हमारी दृष्टि में राधागोविन्द संगीतसार जयपुर घराने का ग्रंथ है, जिसमें अभिनय की सम्पूर्ण विधि है। जिस प्रकार किसी भी विषय का प्रतिपादन करने के लिए भाषा पर अधिकार अनिवार्य है, उसी प्रकार जीवन के सर्वांगीण अभिनय के लिए अंगों,प्रत्यांगों एवं उपांगों की चेष्टाओं एवं भंगिमाओं पर अधिकार आवश्यक है। इनका ज्ञान प्राप्त करने के लिए कथकों को राधागोविन्दसंगीतसार का मन्थन करना होगा।

गत-भाव लौर अरथभाव के अतिरिक्त तोड़े और ततकार का काम भी कथक शैली के अन्तर्गत है। वास्तव में यह अभिनयवर्जित कार्य नृत्य है।

गीत और ताल का अनुगमन करने वाले थां, तो, धि, दिग, ग जैसे अक्षरों के समूह पिल्लमूरू कहलाते हैं। शिवाजी के पिता शाहजी सभापण्डित वेद ने पिल्लमूरू का पूर्वोक्त लक्षण अपने ग्रंथ संगीतमकरन्द में किया है।" राधागोविन्दसंगीतसार में पिल्लमूरू को परमलु कहा गया है। लाला गुल्ला घराने के नर्तक मुहम्मद हुसेन दतिया वाले इसी को प्रमूल कहते थे।

मृदंग इत्यादि वाद्यों के वाद्यों या बोलों के आधार पर अंगसंचालन नाचना

---

१३. राधागोविन्दसंगीतसार, नर्तनाध्याय, पृष्ठ ६६-६७।

१४. अंगेनालसेद्-गीतं हस्यतेनार्थप्रदर्शनभ्। चक्षुषा भावपेद् भावं पादाभ्यां तालनिर्णयः।
भरतार्णव, परिशिष्ट, श्लोक

१५. यतो हस्तस्ततो दृष्टिः यतो दृष्टस्ततो मनः। यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः।
भरतार्णव, परिशिष्ट, श्लोक-२

१६. गीततालानुगो यत्र नानावाद्यविनिर्मितः।
अल्पो यः शब्दखण्डों हिथां दोधिदिगणांतकः पिल्लमूरू। भरतकोष, पृष्ठ ३७१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रमलू कहलाता है। तुथुकार या ततकार में तो केवल दो व्यंजन हैं तत्, ता, तित, तो, था, थैं, थैऽय, थीं इत्यादि इन्हीं के विकार हैं। पाटाक्षर-समह या प्रमलू के वजन पर पद-संचालन तत्कार हैं, राधागोविन्दसंगीतसार में इसे चचकार कहा गया है।

कथक-शैली में आज अत्यन्त सीमित ताल नाचे जाते हैं।

हम नहीं जानते कि मथुरा, वृन्दावन अथवा ब्रज के अन्य मन्दिरों में कहाँ-कहाँ प्रतिदिन नृत्य होता है। कृष्ण लीलाओं अथवा रामलीला को कथक-नृत्य माना जाए, तो यह कथक शैली की वर्तमान सीमा के अन्तर्गत न आ सकेगा।

कथक शब्द का यदि प्राचीन अर्थ लिया जाये, तो नृत्य की वे सभी शैलियाँ कथक नृत्य के अन्तर्गत आ जाएंगी जिनमें कथा का अभिनय होता है।

आज कथक जाति की कला और उसकी सीमा तथा इस नाम से प्रसिद्ध बिरादरी की परम्पराओं को देखते हुए मन्दिरों के साथ उसका सम्बन्ध ढूँढ निकालना सरल नहीं है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत के परम भक्त अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का व्यक्तित्व राष्ट्रीयतावादी किसी भी व्यक्ति के लिए आदर्श है। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'नुह सिपहर' में उन्होंने अपनी निस्सीम भारत-भक्ति का प्रदर्शन किया है।

भारतीयों का उच्चारण-नैपुण्य

अमीर खुसरो का कथन है कि भारतीय लोग अनेक भाषाओं को सुन्दरता-पूर्वक बोलते हैं, परन्तु जब विदेशी लोग हमारी भाषा को बोलने का प्रयत्न करते हैं, तो उनके होंठ सिल से जाते हैं। स्पष्ट है कि हम विदेशियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।[1]

भारत, ज्ञान-कोष

अमीर खुसरो ने कहा है कि ज्ञान-प्राप्ति के लिए चिर अतीत से लोग भारत आते रहे हैं, हम लोग विद्या की भिक्षा माँगने के लिए अन्यत्र नहीं गए। गणित-जैसे उपयोगी शास्त्र का आविष्कार भारत में हुआ। शतरंज-जैसे विश्वप्रिय खेल का आविष्कार भी भारत ने किया और 'कलीला वदमना' (पंचतन्त्र)-जैसे नीति-ग्रंथ की रचना भी भारत में हुई। अंकविद्या; शतरंज एवं 'पंचतन्त्र' संसार को भारत की ही देन है।[2]

ब्राह्मणों की विद्वता और श्रेष्ठता

अमीर खुसरो कहते हैं कि भारतीय ब्राह्मण अरस्तू के सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ा सकते हैं। शास्त्रों के रहस्य से सुपरिचित ब्राह्मण मौन का अवलम्बन करते हैं। लोगों ने इनसे ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया। मैंने सम्भव प्रयत्नों से इनकी कृपा प्राप्त की और इन्होंने मुझे अपना कृपापात्र बनाया।[3]

भारतीय संगीत की श्रेष्ठता

खुसरो का कथन है, भारतीय संगीत समस्त विश्व में उत्कृष्टतम है और श्रोता को इस सीमा तक तन्मय कर देता है कि इसके प्रभाव से हरिण तक मन्त्र-मुग्ध होकर बहेलियों को अपने प्राण अर्पित कर देते हैं।[4]

---

१. 'अमीर खुसरो', सम्पादक डा० मलिक, पृष्ठ ८५-८६, प्रकाशक : राजपाल एन्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

२. वही, पृष्ठ वही (भावार्थ)।

३. वही पृष्ठ-८५।   ४. वही पृष्ठ-८५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरब के संगीत की अपेक्षा भारतीय संगीत की श्रेष्ठता

अमीर खुसरो कहते हैं कि अरबी बद्दुओं की टेर से मस्त होकर ऊँट रास्ता चलते हैं, परन्तु भारतीय संगीत से मुग्ध हरिण की भाँति निश्चेतन नहीं होते, इसलिए दोनों की तुलना व्यर्थ है।[५]

विदेशियों के लिए भारतीय संगीत की अगम्यता

अमीर खुसरो ने स्पप्ट कहा है कि भारत में भारतीय संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक विदेशी संगीतज्ञ आए, परन्तु एक राग पर भी उनका अधिकार न हो सका।[५]

भारतीय संगीत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अमीर खुसरो के प्रयत्न

अमीर खुसरो की रचना 'किरानुस्सादैन' (रचना-काल १२८० ई०) से प्रतीत होता है कि अमीर खुसरो को अड़तीस वर्ष की आयु में ही ईरानी संगीत के चार उसूलों और बारह परदों तथा सूक्ष्म रहस्यों का ज्ञान हो चुका था।[६] परन्तु इस वक्तव्य से पैंतीस-छत्तीस वर्ष पश्चात् लिखित 'नुह सिपहर' में वे सर्वश्रेष्ठता में भारतीय संगीत के सम्मुख नतमस्तक हैं। अमीर खुसरो भारतीय संगीत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए विदेशी तथा भारतीय संगीतज्ञों की प्रतियोगिताएँ भी कराते थे।[७]

हिन्दी-भक्त खुसरो

हिन्दी', 'हिन्दवी' अथवा 'हिंदुई' खुसरो की मातृभाषा थी, क्योंकि ये उत्तर-प्रदेश में स्थित एटा जिले के अन्तर्गत पटियाली नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे और इनकी माँ हिन्दू (विशुद्ध भारतीय रक्त की महिला) थीं। इनके नाना 'रावत' (जमींदार) थे, जिनका नाम तो पता नहीं चलता, परन्तु इनको शाही दरबार से 'इमादुलमुल्क' उपाधि मिली थी और ये इसी नाम से प्रसिद्ध थे।

खुसरो की रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य से यह प्रमाणित होता है कि वे—१. ईरानी संगीत के मर्मज्ञ थे, २. भारतीय संगीत के घोर प्रशंसक और भक्त थे, ३. भारतीय संगीत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रतियोगिताएँ आयोजित कराते थे, ४. ब्राह्मणों के कृपा पात्र थे तथा ५. ब्राह्मणों से खुसरो ने कुछ सीखा था और वे ब्राह्मणों के एवं अपनी मातृभूमि भारत के बहुत बड़े भक्त थे।

ये भी सिद्ध होता है कि वे विदेशी मुसलमानों के उच्चारण का मजाक उड़ाते थे, उन्हें भारतीय संगीत सीखने के लिए अनुपयुक्त समझते थे, यहाँ तक कि वे

---

५. 'खिलजीकालीन भारत, पृष्ठ १८० पर उद्धृत 'नुह सिपहर' का भावार्थ।

६. 'अमीर खुसरो' (पूर्वोक्त), पृष्ठ ८६।

७. 'लाइफ एन्ड वर्क्स ऑव् अमीर खुसरो', लेखक—मुहम्मद वहीद, पृष्ठ २३८।

८. 'संगीत चिन्तामणि', प्रथम संस्करण, पृष्ठ २६८ पर उद्धृत, खुसरो की प्रसिद्ध रचना। 'एजाज-ए-खुसरवी' का पृष्ठ १८३, द्वितीय संस्करण का अंश।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत की रोटी खाकर परदेस की तारीफ करने वालों को खरी-खरी सुनाते थे। उन्होंने 'अरब' का नाम लेकर कहा है कि वहाँ का संगीत भारतीय संगीत की अपेक्षा घटिया है। उनका यह संकेत अपने उन समवर्तियों की ओर है, जो 'अरब' को प्रत्येक दृष्टि से आदर्श समझते थे।

वे अपनी काव्य-शक्ति पर गर्व करते हुए कहते हैं—"भारत इसलिए भी श्रेष्ठ है कि उसे खुसरो-जैसा गायक कवि प्राप्त है।"[9] अपनी प्रशंसा खुसरो ने कम नहीं की है।

पूर्वोक्त स्थिति को देखते हुए आज के युग में या औरंगजेबी युग में खुसरो-जैसे सूफी को 'हिन्दू-द्वेषी' बना देना कहाँ तक न्यायसंगत है, यह पाठकों के विवेक पर निर्भर है।

कैकुबाद (राज्यकाल, १२८७-१२९०) के युग में खुसरो के साथी

दिल्ली के सुल्तानों में खुसरो का सर्वप्रथम आश्रयदाता कैकुवाद था। इस युग में 'अवध की रूपाजीवाएँ, गायिकाएँ और नर्तकियाँ भी दिल्ली-दरबार में पहुँचने लगी थीं। गजलों के साथ-साथ हिन्दी गाने भी गाए जाते थे।'[10] सम्भव है, इनमें से कुछ कलाकार अमीर खुसरो की ही सिफारिश पर पहुँचे हों, क्योंकि कैकुबाद के दरबार में पहुँचने से पूर्व अमीर खुसरो अवध के सूबेदार मीर अमीरअली जामदार के ही आश्रय में थे।[11] अवध ही नहीं, चारों ओर से संगीतजीवी लोग उस समय दिल्ली पहुँच रहे थे, क्योंकि कैकुबाद का एक अमीर निजामुद्दीन मलिक भी कव्वालों को प्रभूत पुरस्कार देता था[12] और सम्राट् संगीत तथा नृत्य का अनुरागी होने के साथ-ही-साथ एक हिंदू (भारतीय रक्त की महिला) माँ की संतान था।[13] कैकुबाद ने ही अमीर खुसरो को 'मलिकुश्शुअरा' (कवीश्वर) की उपाधि दी थी।

इन कलाकारों की संगति ने अमीर खुसरो को अवध के संगीत और वहाँ की गेय वस्तुओं से प्रभावित किया।

जलालुद्दीन खिलजी के युग में अमीर खुसरो और उनके संगीतजीवी साथी

जलालुद्दीन खिलजी (राज्यकाल १२९०-१२९६ ई०) की विजयों का वर्णन अमीर खुसरो ने अपने ग्रंथ 'मिफताहुल्फुतूह' में किया। सम्राट् ने इस महान् व्यक्ति को 'अमीर' उपाधि से विभूषित किया। 'अमीर' की प्रतिष्ठा में वृद्धि की गई और इनका वेतन बारहसौ 'तनका' (एक विशिष्ट सिक्का) कर दिया गया। . .

जलालुद्दीन खिलजी के दरबार में फकाई की पुत्री नुसरत खातून और फुतूहा-जैसी रूपवती गायिकाएँ थीं, मेहर अफरोज के कटाक्ष मोहन-मंत्र थे,

---

९. अमीर खुसरो, पृष्ठ ८६पर उद्धृत 'नुह सिपहर'।
१०. 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृष्ठ ५८।
११. अमीर खुसरो', पृष्ठ १५।
१२. 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृष्ठ ५८।
१३. 'निजामी बंसरी', पृष्ठ ३० पर उद्धत 'चेहलरोजा'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुहम्मदसना चंगी (ढोल-वादक) जैसे कलाकार उनकी संगति करते थे।[१४] (अवध में ऐसी संगीतजीवी जातियाँ आज भी हैं, जिनकी नारियाँ सार्वजनिक रूप में गाती बजाती हैं और उनके पिता व भाई उनकी संगति करते हैं, उन जातियों में एक जाति 'डेरेदार' कहलाती है, जिसने 'इस्लाम' अंगीकृत कर लिया है। सम्भव है, उपर्युक्त गायिकाएं भी भारतीय रही हों, जिनके फारसी नामों ने उनकी भारतीयता पर परदा डाल दिया है।)

अमीर खुसरो इन रूपवती गायिकाओं के सौन्दर्य का वर्णन अपनी रचनाओं में करते थे।

अलाउद्दीन खिलजी के युग में अमीर खुसरो और उनके संगीतज्ञ साथी

अलाउद्दीन खिलजी (राज्य-काल १२९६-१३१६ई०)ने अमीर को 'खुसरुए-शाइराँ' उपाधि दी। अलाउद्दीन खिलजी की विजयों का वर्णन अमीर खुसरो ने अपने कई ग्रन्थों में किया है, जिसमें 'तारीखे अलाई' अत्यन्त लोकप्रिय हुई।

१२९७ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने दो सरदारों—नुसरत खाँ और उलुग खाँ—को गुजरात-विजय के लिए नियुक्त किया। इन लोगों के सफल अभियान के तीन बड़े परिणाम हुए—१. गुजरात पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया, वहाँ की रानी बन्दी बनाकर लाई गई और अलाउद्दीन खिलजी की अंकशायिनी हुई, राजा ने भागकर देवगिरि में शरण ली, उसकी पुत्री देवलदेवी भी उसके साथ थी। २. खम्भात से एक कर्पूर गौर अत्यन्त सुन्दर दास एक हजार दीनार में खरीदा गया, जो अनेकभाषाविद् था। भविष्य में यही दास अलाउद्दीन खिलजी का प्रसिद्ध सेनापति मलिक काफूर बना, जिसने समस्त दक्षिण भारत को जीतकर दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित कर दिया। ३. गुजरात की परवार (परिवार ?) नामक संगीतजीवी जाति के सहस्रों सुन्दर नर-नारी बंदी बनाकर दिल्ली लाए गए, जो दिल्ली के बाजारों में बिककर मुसलमानों के घरों में पहुँचे और उन्हें गुजरात के संगीत से मुग्ध करने लगे। यहाँ तक कि आगे चलकर इसी जाति का एक नोमुस्लिम सेनापति खुसरो खाँ अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र कुतुबुद्दीन खिलजी का प्रमुख सेनापति, अनन्य प्रेमी और वधकर्ता हुआ।

अस्तु, गुजरात से तो संगीतजीवी आए ही, दक्षिण-विजय के पश्चात् दक्षिण के संगीतजीवी भी दिल्ली में आए; क्योंकि देवलदेवी दिल्ली लाई गई थी। उसका विवाह अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र खिज्र खाँ के साथ हुआ था। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दिवलरानी-खिज्र खाँ' में अमीर खुसरो ने इस विवाह से सम्बन्धित उत्सवों में दक्षिण-भारत के कलाकारों द्वारा कला-प्रदर्शन की चर्चा की है, तथापि किसी कलाकार के नाम की चर्चा वहाँ नहीं है।

निम्नलिखित ध्रुवपद को इन उत्सवों में गोपाल नायक के सम्मिलित होने का प्रमाण माना जा सकता है—

---

१४. 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृष्ठ ५८ पर उद्धृत 'खिलजीकालीन भारत'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धक दलन रे प्रबल्ल नाद सिंघनाद
वल अपबल वक्क अर।
कुडांन धीर अडान मिलवत
चपल चाप अचपल अक्कअर।
गीत गावत नायक गोपाल विद्यावर।
साहिनिसाहि अलावदीं तपै डिलीनरेस
जाकी वसुधा सुचित तक्क धर॥

प्रस्तुत ध्रुवपद में 'साहिनिसाहि अलावदीं…डिलीनरेस', 'शाहंशाह अलाउद्दीन दिल्ली-नरेश' का अपभ्रंश है।[१५] अस्तु, इस ध्रुवपद में नायक गोपाल दिल्ली के प्रतापी नरेश अलाउद्दीन का वर्णन कर रहे हैं।

देवगिरि उस समय यादव वंश की राजधानी थी, उसके राजा रामचन्द्र को 'रायरायान' उपाधि देकर उसे गुजरात का सूबेदार बना दिया गया था। लगता है कि गोपाल नायक के विद्या और गुण से प्रभावित होकर अमीर खुसरो ने गोपाल नायक को दिल्ली में ही रोक लिया और गोपाल नायक के आश्रयदाता 'रायरायान' राजा रामचन्द्र गुजरात चले गए।

गोपाल नायक ने दिल्ली में रहकर 'चतुर्दंडी' सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। 'आलाप, ठाय (स्थाय, लोक-भाषा में 'ठाह'), 'गीत ओर प्रबन्ध' ये चार दंड 'चतुर्दंडी-सम्प्रदाय' के आधार-दंड हैं।[१६] सोलहवीं शती के नायक बैजू ने भी अपने एक प्रसिद्ध ध्रुवपद में 'चारौं डाँडी' (चतुर्दंडी) बाँधि आए नायक 'गोपाल' कहकर गोपाल नायक को चतुर्दंडी-संप्रदाय का प्रवर्तक कहा है। ध्रुवपद यों हैं—

विद्या सोई भली जौन साधी है रे लाल।
रंगमहल[१७] महँ दोउ जुरि बैठे
रीझि मृगन दई माल।
'सात गुपित, सात प्रगट',
चारौं डाँडी बाँधि आए नायक गोपाल।

---

१५. यह ध्रुवपद रामपुर-दरबार के एक कलाकार के पास एक संग्रह में प्राप्त हुआ है। संग्रह की माइक्रो-फिल्म 'संगीत-नाटक-एकेडमी', दिल्ली में सुरक्षित है।

१६. 'भरतकोष', पृष्ठ १९९।

१७. जिस विशेष भवन में संगीत-सभाएँ आयोजित होती थीं, वे मुस्लिम दरबारों में 'रंग-महल' कहलाते थे, रामपुर के वर्तमान किले में बने हुए 'रंगमहल' में आजकल एक विद्यालय है। 'रंगमहल' में 'रंग' शब्द संस्कृत का है और पूर्वरंग, रंगभूमि, रंगमंच-जैसे शब्दों में प्रयुक्त हुआ है।

भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धांत को न समझने के कारण मुसलमान-दरबारों की 'समिति' में सदा उसकी खिल्ली उड़ाई गई। गयासुद्दीन खिलजी की 'समिति' का मुँह 'संगीत-रत्नाकर' के तेलुगु-व्याख्याता विट्ठल के पिता ने प्रत्यक्ष प्रयोग के द्वारा श्रुति-सिद्धि से बन्द कर दिया था। ('भरतकोष', भूमिका, पृष्ठ ५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'बैजू' कहे, गाए तें भूलि गए सप्त सुर
पिघिलौ पारन बूड़े ताल ॥

इसका अर्थ यह है—'वत्स, विद्या वही भली है, जिसकी सिद्धि की गई है। (अर्थात् केवल तर्क-वितर्क से कुछ नहीं होता)। बैजू कहते हैं कि दोनों (अमीर खुसरो और गोपाल नायक ?) मिलकर प्रेमपूर्वक बैठ गए, 'मृगों' (गोपाल नायक के गाने से अनुरक्त व्यक्तियों) ने जयमाला गोपाल नायक के गले में डाल दी, नायक गोपाल ने सात 'गुप्त' (मूर्च्छना-पद्धति के) और सात 'प्रकट' (मेल-पद्धति या मुकाम-पद्धति) तथा चतुर्दंडी (आलाप, ठाय, गीत और प्रबन्ध) निश्चित कर दिए। गाने के प्रभाव से अलीउद्दीन-जैसा पाषाण पिघल गया, (जिन सात स्वरों के विषय में शास्त्रार्थ हो रहा था, वे) सात सुर लोगों के ध्यान से उतर गए और संगति करने वालों के ताल (झाँझ या मँजीरे) उलट (रुक) गए।

गोपाल नायक और अमीर खुसरो की प्रतिस्पर्धा की कहानी का मूल इसी ध्रुवपद में है, जिसके सीधे-सादे अर्थ का सत्यानाश परवर्तियों ने किया है।

औरंगजेबकालीन फकीरुल्लाह-जैसे लोगों ने अमीर खुसरो की मृत्यु से प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष पश्चात् 'रागदर्पण' में लिखा है कि गोपाल नायक अमीर खुसरो से हारकर मुसलमान हो गए और दक्षिण-भारतीयों का कहना है कि गोपाल नायक ने अमीर खुसरो पर विजय प्राप्त की।[१८]

गोपाल नायक मुकाम-सिद्धांत से अपरिचित थे और अमीर खुसरो मूर्च्छना-सिद्धांत से। गोपाल नायक पराधीन और पराजित राजा के कलाकार थे और अमीर खुसरो अलाउद्दीन खिलजी जैसे विजेता के दरबार का सम्मान थे। अमीर खुसरो गुणग्राही थे ओर गोपाल नायक भी गुणग्राहियों की खोज में थे। फलतः दोनों की मित्रता हो गई। वेदाश्रित मूर्च्छना-पद्धति को गुप्त रखना गोपाल नायक का धार्मिक कर्तव्य था और मुकाम-पद्धति को स्वीकृत करके उसमें देशी रागों का वर्गीकरण कर डालना आपद्धर्म। आंजनेय का यह नियम गोपाल नायक के सम्मुख था ही कि देशी रागों में श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नहीं होता। अस्तु, गोपाल नायक ने मूर्च्छना-सिद्ध रागों की मूर्च्छना की आरम्भिक ध्वनियों को 'सा' मानकर उसके संवादी पंचम को भी अचल मान लिया। शेष पाँच स्वरों के भी चढ़े और उतरे दो-दो भेद मान लिए गए। स्वरों के ये नवीन नाम 'खरज, उतरी रिखब, चढ़ी रिखब, उतरी गांधार, चढ़ी गांधार, उतरी मध्यम, चढ़ी मध्यम, पंचम, उतरी धैवत, चढ़ी धैवत, उतरी निखाद और चढ़ी निखाद मान लिए गए। इन ध्वनियों के क्रमशः विदेशी नाम रास्त, शहनवाज, दोका, कुर्द, सीका, गिरका, हिजाज, नवा हिसार, हुसेनी, अगन् और नीम माहुर को याद रखने की आवश्यकता भी भारतीय गुणियों न समझी।[१९]

१८. 'संगीत-शास्त्र', लेखक—वासुदेव शास्त्री, पृष्ठ १४६।

१९. निरक्षर मुस्लिम गुणी, इन बारह ध्वनियों को क्रमशः खरज, जरंज, रिखब, चंधार, गांधार तद्धम, मद्धम, पंचम, हैवत, धैवत, लिखाद, निखाद कहते थे। इनके खरज, रिखब, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निखाद कल्याण ठाठ हैं और खरज, जरज, चंधार, तद्धम, पंचम, हैवत और लिखाद भैरवी ठाठ के बोधक हैं। ये सम्प्रदाय कल्याण के स्वरों को मूल स्वर मानता था और उतरे हुए स्वरों को विकृत। —लेखक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अचल सारिकाओं वाली वीणा का जन्म

मंद्र, मध्य और तार-स्थान में बारह-बारह ध्वनियों का अस्तित्व मान लिया गया और 'प्रमाण-श्रुति' के अन्तर की उपेक्षा कर दी गई। षड्ज और पंचम की अचलता के कारण लोगों का ध्यान सप्तक की ओर से हटकर अष्टक की ओर चला गया। षड्ज, ऋषभ, गांधार और मध्यम को अष्टक का पूर्वार्द्ध और पंचम, धैवत, निषाद और अग्रिम स्थानीय षड्ज को अष्टक का उतरार्द्ध मान लिया गया।

आनुवंशिक कारीगर वीन पर इन पर्दों की स्थापना यों करते हैं ---

१. मुक्त तंत्री की ध्वनि को षड्ज मानकर चौथे, पाँचवें और सातवें पर्दे पर क्रमश: स्वयंभू या अन्तर गांधार, शुद्ध मध्यम और पंचम की स्थापना कर दीजिए।

२. पंचम के आधार पर दूसरे पर्दे पर ऋषभ (चतु:श्रुति ऋषभ) और उस ऋषभ के आधार पर चतु:श्रुति धैवत की स्थापना नवें पर्दे पर कर दीजिए।

३. अन्तर गांधार के आधार पर ग्यारहवें पर्दे पर 'नि', इस 'नि' के आधार पर छठे पर्दे पर 'मं' और इस 'मं' के आधार पर 'रे̳' की स्थापना पहले पर्दे पर कर दीजिए।

४. तीसरा पर्दा वहाँ मिलाइए कि उस पर 'ग॒' बोलने लगे और 'ग॒-प' में षड्जांतर-गांधार-सम्बन्ध हो जाए। इस 'ग॒' के आधार पर 'नि॒' की स्थापना दसवें पर्दे पर कीजिए।

५. पहले पर्दे पर स्थापित 'रे̳' के आधार पर 'ध̳' की स्थापना आठवें पर्दे पर कर दीजिए।

इन स्वरों की स्थापना का आधार उत्तर-भारतीय वीन की दाहिनी ओर से दूसरा तार है। दाहिनी ओर के पहले तार को 'म॒' में मिलाने पर सातवें पर्दे पर बोलने वाली ध्वनि बीनकारों का 'सा' हो जाएगी।

विज्ञ पाठक देखेंगे कि किसी भी मुकाम या मूर्च्छना में तीसरे पर्दे की ध्वनि (दक्षिण-भारतीय 'ग॒' और उत्तर-भारतीय 'ध॒' का कोई उपयोग नहीं है। यदि बीन की दाहिनी ओर से तीसरे तार को उत्तर-भारतीय अनुमंद्र पंचम में मिलाया जाए, तो तीसरे पर्दे पर 'नि॒' बोलेगा।

अस्तु, सम्प्रदाय से परिचित व्यक्ति के लिए इस वीणा पर षड्ज-ग्राम, मध्यम-ग्राम, छह मुकाम, बारहों ईरानी स्वर, बारहों दाक्षिणात्य स्वर और बारहों उत्तर-भारतीय स्वर विद्यमान हैं और सम्प्रदाय से अपरिचित व्यक्तियों के लिए ग्राम और मुकाम लुप्त हो गए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

अचल परदोंवाली उत्तर-भारतीय बीन तथा दक्षिण-भारतीय तंजोर वीणा पर विभिन्न स्वरावलियाँ

(चतुःश्रुतिक स्वरों का क्षेत्र ५१ घटक, त्रिश्रुतिक स्वरों का ४६ घटक और द्विश्रुतिक स्वरों का २८ घटक है।)

परदों का क्रम	मेरु की अपेक्षा प्रत्येक परदे की ध्वनि का अंतराल	परदों की ध्वनियों का पारस्परिक अंतराल	ईरानी स्वर-नाम और उनका अंतराल	उत्तर-भारतीय स्वर और 'सा' की अपेक्षा उनका अंतर	दाक्षिणात्य स्वर और 'सा' की अपेक्षा उनका अंतर	बुजुर्ग मुकाम और भातखंडे का बिलावल, शंकराभरण	रास्त मुकाम के स्वर और 'सा' की अपेक्षा अंतराल	हिजाज मुकाम और 'सा' की अपेक्षा अन्य स्वरों का अंतर	रहावी मुकाम और 'सा' की अपेक्षा अन्य स्वरों का अंतर	हुसैनी मुकाम और 'सा' की अपेक्षा अन्य स्वरों का अंतर	कोचक मुकाम और 'सा' की अपेक्षा अन्य स्वरों का अंतर	षड्ज-ग्राम और 'सा' की अपेक्षा अन्य स्वरों का अंतर	मध्यम-ग्राम और 'सा' की अपेक्षा अन्य स्वरों का अंतर	उत्तर-भारतीय 'नि॒' अर्थात् षड्ज-ग्रामीय 'ग' को षड्ज मानने पर कल्पित स्वर
को० १	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
मेरु ०	०	०	गिरका	म़	सा ०	सा ०						नि॒॒	ग॒॒	प़
१	२३	२३	हिजाज	मं़	रे॒॒ २३							नि़	म़	ध॒॒ –
२	५१	२८	नवा	प़	रे॒ ५१	रे॒ ५१	सा ०					सा ०	म ०	ध
३	७९	२८	हिसार	ध़	ग॒ ७९	×	×	×	×	×	×	×	×	नि॒
४	९७	१८	हुसैनी	ध	ग ९७	ग ९७	रे ४६					रे ४६	प़	नि़
५	१२५	२८	अगनू	नि॒॒	म १२५	म १२५						ग॒॒ ७४		सा ०
६	१४८	२३	नीममाहूर	नि़	मं १४८		ग ९७					ग ९७	ध	रे॒॒ २३

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

७	१७६	२८	रास्त	सा ०	प १७६	प १७६	म १२५					म १२५	नि	रे ५१
८	१६६	२३	शहनवाज	रे २३	ध १६६								नि	ग ७४
९	२२७	२८	दोका	रे ५१	ध २२७	ध २२७	प १७६	सा ०	सा ०	सा ०	सा ०	प १७६	सा ०	ग १०२
१०	२५५	२८	कुर्द	ग ७६	नि २५५									म १३०
११	२७३	१८	सीका	ग ६७	नि २७३	नि २७३	ध २२२	रे ४६	रे ४६	रे ४६	रे ४६	ध २२२	रे ४६	मं १४८
१२	३०१	२८	गिरका	म १२५	सां ३०१	सां ३०१	नि २५०	ग ७४		ग ७४	ग ७४	नि २५०	ग ७४	प १७६
१३	३२४	२३	हिजाज	मं १४८					ग ६७			नि २७३	ग ६७	ध १६६
१४	३५२	२८	नवा	प १७६			सां ३०१	म १२५	म १२५	म १२५	म १२५	सां ३०१	म १२५	ध २२७
१५	३८०	२८	हिसार	ध २०४	×	×	×	×	×	×	×	×	×	नि २५५
१६	३६८	१८	हुसेनी	ध २२२				प १७१	प १७१	प १७१	प १७१		प १७१	नि २७३
१७	४२६	२८	अगनू	नि २५०					ध १६६	ध १६६				सां ३०१
१८	४४६	२३	नीममाहुर	नि २७३				ध २२२			ध २२२		ध २२२	
१९	४७७	२८	रास्त	सां ३०१				नि २५०	नि २५०	नि ५०			नि २५०	
२०	५००	२३	शहनवाज								नि २७३		नि २७३	
२१	५२८	२८	दोका					सां ३०१	सां ३०१	सां ३०१	सां ३०१		सां ३०१	
२२	५५६	२८	कुर्द											
२३	५७४	१८	सीका											

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्तमान सारिकाओं में मध्यम-ग्राम, हिजाज मुकाम, रहावी मुकाम, हुसेनी मुकाम और कोचक मुकाम का 'सा' हमें नवें पर्दे पर ही मिलता है। 'रास्त' मुकाम का और षड्ज-ग्राम का 'सा' हमें दूसरे पर्दे पर मिलता है। यह तथ्य हमें अरब और ईरान की सांगीतिक ध्वनियों पर भारत के प्राचीन प्रभाव का परिचय देता है।

वर्तमान सारिका-स्थापन में मुक्त तन्त्री को 'सा' या 'म' मानने पर त्रिकाल में भी ग्राम-ज्ञान न होगा। ऐसा ही हुआ भी। 'प्रकट' स्वर-संज्ञानों का ज्ञान रखने वाले खुसरो के अनुवर्ती हुए, इन पर दरबार की मुद्रा लगी। 'गुप्त' और 'प्रकट' दोनों स्वर-संज्ञाओं का ज्ञान रखनेवाले गोपाल नायक के अनुवर्ती सज्जनों ने अपने को मौन रखा। गोपाल नायक के परम भक्त कल्लिनाथ जानते थे कि स०, रे ५१, ग ७६, म (१२५), प (१७६), ध (२२७) और नि (२५५) में 'रे, ग, ध, नि' षड्ज ग्रामीय रे (४६), ग (७४), ध (२२२), नि (२५०) की अपेक्षा एक-एक प्रमाण श्रुति (५, ५ घटक) चढ़े हुए हैं। परन्तु अहोबल 'सा रे, ग, म, प, ध, नि' (खरहर-प्रिया या काफी ठाठ) को ही शुद्ध स्वर समझ बैठे।

दक्षिण भारत पर इस वीणा का प्रभाव

दक्षिण-भारतवालों ने तो और भी गजब किया। इस वीणा के दाहिनी ओर से प्रथम तन्त्री की मुक्त ध्वनि को षड्ज मानकर क्रमशः पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें, दसवें और ग्याहरवें पर्दे की ध्वनि को त्रिश्रुति शुद्ध ऋषभ, शुद्धगांधार या पंचश्रुति ऋषभ, साधारण गांधार, अन्तरगांधार, शुद्धमध्यम, वराली मध्यम या पतपंचम, त्रिश्रुति, शुद्ध धैवत, शुद्धनिषाद या पंचश्रुति धैवत, कैशिक निषाद और काकली निषाद कह दिया। यही नहीं, तथाकथित साधारण गांधार को षट्श्रुतिक ऋषभ और तथाकथित कैशिक निषाद को षट्श्रुतिक धैवत भी कहा जाने लगा।

खुसरो ने अपनी पद्धति में 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां' में मिलनेवाले वर्तमान हिन्दुस्तानी भैरव राग को प्रथम राग कहा। सोलहवीं शती में इसी राग के स्वर कर्नाटक-पद्धति में भी मालवगौड मेल नाम से राग-शिक्षण का आधार बन गए।

खुसरो की मृत्यु १३२५ ई० से केवल १२३ वर्ष पश्चात् हिन्दुत्व के पुनरुद्धार में संलग्न विजयनगर-साम्राज्य के दरबार में बैठे हुए कल्लिनाथ कह रहे थे कि मेरे युग में 'संगीत-रत्नाकर' दुर्बोध हो गया है, प्रत्येक राग 'सा' से आरम्भ किया जाता है, मध्यम-ग्राम की समझ-बूझ गायब हो गई है और षड्ज का संवादी पंचम ही प्रयोग में रह गया है, काफी ठाठ के स्वर 'शुद्ध' स्वर समझे जाने लगे हैं, 'ग' को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋषभ और 'नि' को धैवत भी कहा जाने लगा है। मध्यम भी दो श्रुति चढ़कर 'म' कहलाने लगा है।

यह समस्त उत्पात उन सज्जनों की देन था, जो केवल वादक थे और स्वर-संज्ञाओं का अर्थ अथवा स्वरों का अर्थ समझने की आवश्यकता नहीं समझते थे।

भैरव के 'रे-ग' में (रे २३+७४=९७ ग) में तथा ध (ध १९९+७४=२७३ नि) में ७४ घटकों या पाँच श्रुतियों का अन्तर है। वैदिक सम्प्रदाय में एक स्वर का क्षेत्र ५१ सेवर्ट या चार श्रुतियों से अधिक नहीं होता। भैरव को आदि राग मान लेने पर भारतीय स्वर-शास्त्र का सम्बन्ध भरत और शार्ङ्गदेव की परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न हो गया था। तोड़ी, मारवा और पूर्वी-जैसे राग विदेशी परम्परा की देन थे।

अमीर खुसरो समन्वयवादी थे। उन्होंने विदेशियों को स्वरों के ईरानी नाम और उनके आधार पर सिद्ध होनेवाले मुकामों को भुलाने का आधार प्रस्तुत कर दिया।[२०] और गोपाल नायक ने इस पद्धति के द्वारा 'संगीत-रत्नाकर' के रहस्यों पर पर्दा डाल दिया।

रागवर्गीकरण का नवीन आधार

अमीर खुसरो के साहित्य का प्रत्येक पाठक यह तथ्य जानता है कि वे विशुद्ध भारतीय हृदय के व्यक्ति थे, विदेशी मुसलमानों की प्रतिभा को प्रत्येक क्षेत्र में ललकारते थे। उन्होंने इस वीणा (बीन) में स्वदेशी और विदेशी रागों को एक ही वाद्ययंत्र के सहारे वर्गीकृत करने का आधार प्रस्तुत कर दिया। ईरानी स्वरों के नाम बदलकर बीन में हिन्दुस्तानीपन ला दिया और हिन्दुस्तानी संगीत को भैरव, पूरवी, मारवा और तोड़ी-जैसे ठाठ दिए, जो मूर्च्छना-पद्धति में नहीं आते, परन्तु इस बीन में मिलते हैं।[२१]

---

२०. इन मुकामों और इनके स्वरों के लिए 'ध्वनि और संगीत', पृ० २९२, २९३ और २९४ देखिए। चौदहवीं शती ई० अर्थात् अमीर खुसरो की मृत्युवाली शती में ही अब्दुल कादिर द्वारा ये निर्धारित किए हुए हैं। मुहम्मद शीराजी की मृत्यु १३१५ ई० में हुई, यह अलाउद्दीन खिलजी का राज्य-काल था और इस समय अमीर खुसरो तथा गोपाल नायक, दोनों विद्यमान थे। स०, रे (४६), रे(४६), रे(५६)(५१), ग (७४), ग (९७), रे (५१) ग(१०२), म(१२५)म(१४८), प(१७१), प(१७६), ध(१९९), ध(२२२), ध(२२७), नि (२५०), नि (२९३), सां (२९६), सां (३०१) के रूप में सत्रह ध्वनियाँ शीराजी मानता था।

२१. बीनकार लोग तो मींड़ द्वारा प्रत्येक राग की अभीष्ट ध्वनियों को प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु तोड़ी के ग (७४), ध (१९९) पाठकों को सारिणी के पंद्रहवें कोष्टक में मिलेंगे। बाज के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कव्वाल बच्चों का परहेज और कलावंतों का सामीप्य

इस बीन से विदेशी मुसलमान कलाकारों अर्थात् कव्वाल बच्चों ने परहेज किया। कलावंतों (भारतीय नौमुस्लिम गुणियों) ने इस बीन को अपनाया और वे इस बीन के रहस्यों से मुहम्मदशाह रँगीले के युग तक परिचित रहे। उत्तर-भारत में कलावंत और कव्वाल बच्चे सदैव प्रतिस्पर्धी रहे।

खुसरो कव्वाली के आविष्कारक नहीं

गायकों का एक समूह जब परस्पर मिलकर कोई उक्ति गाता है और प्रमुख गायक उनका नेतृत्व करता है, तो गाने की उस विधा को 'कव्वाली' कहते हैं। इसकी विषय-वस्तु भक्तिपरक होती है। कव्वाली की संगति ढोलक से होती है। अमीर खुसरो की मृत्यु से एक वर्ष पूर्व १३२४ ई० में रचित 'संगीतोपनिषद्' के लेखक प्रसिद्ध जैन आचार्य सुधाकलश ने अपने एक दूसरे ग्रंथ 'संगीतोपनिषात्सा-रोद्धार' में 'ढोल' की गणना म्लेच्छ वाद्यों में की है।[२२] भारत में चिश्ती सूफियों के आदिपुरुष गाना सुनते और अपने गायकों के द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे।[२३] आदिपुरुष ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी थे, उनके शिष्य शैख हमीदुद्दीन नागौरी का प्रसिद्ध कव्वाल महमूद अमीर खुसरो के जन्म से कहीं पूर्व सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (शासनकाल १२१०-१२३५ ई०) के दरबार में धूम मचा रहा था। अतः खुसरो को कव्वाली का आविष्कारक कहना ठीक नहीं।

खुसरो कौल के आविष्कारक नहीं

'कौल' का अर्थ 'सूक्ति' है। इसे पढ़ा जाए, जो इसे 'रुबाई' कहते हैं। 'कौल' गाने वाले 'कव्वाल' कहलाते हैं और ये लोग सामूहिक रूप में गजल भी गाते हैं। इनमें से प्रत्येक का अस्तित्व पहले से विद्यमान है।[२४]

खुसरो तराना के आविष्कारक नहीं

जब सूफी भारत आए, तब अपनी रुचि का तराना भी साथ लाए।[२५]

श्री रशीदअहमद कहते हैं—"कव्वाली और तराना, दोनों हजरत अमीर

तार को पंचम में मिलाने से पाँचवें पर्दे की ध्वनि 'सा' हो जाएगी और तोड़ी के स्वर मिल जाएँगे। अन्यथा पर्दों पर इनकी प्राप्ति असंभव है। मुलतानी के 'ग' (७४) और 'ध' (२०४) सातवें पर्दे की ध्वनि को षड्ज मानने पर मिलते हैं। भैरव के रे (२३) और ध (१९९) मुक्त तंत्री की ध्वनि को षड्ज मानने से मिलते हैं।

२२. 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार', भूमिका, पृष्ठ ६-८-८८, गायकवाड़ सीरीज, प्रथम संस्करण।

२३. 'निजामी बंसरी', पृष्ठ ११०।

२४. 'अमीर खुसरो', पृष्ठ २०८ पर श्री हसनुद्दीन अहमद का लेख।

२५. वही, पृष्ठ २११।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खुसरो से पहले की चीजें हैं और भारत के इतिहास में भी हमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनके आधार पर हम कव्वाली का आविष्कारक अमीर खुसरो को नहीं कह सकते।......रफीक गजनवी ने कहा है कि अमीर खुसरो का कव्वाली या उसके विकास से कोई सम्बन्ध न था और न ही वे उसके आविष्कारक माने जा सकते हैं।[२६] खुसरो ने कव्वालों को भारतीय धुनों में बँधे हुए हिन्दी-गीत दिए।"

खुसरो सितार के आविष्कारक नहीं

१८५४ ई० में 'मअदनउल् मूसिकी' के लेखक मुहम्मदकरम इमाम ने इस झूठ का प्रचार किया कि सितार के आविष्कारक अमीर खुसरो हैं, जबकि मुहम्मदबिन कासिम से लेकर मुहम्मदशाह रँगीले तक के दरबार में किसी सितार-वादक की चर्चा नहीं मिलती। खुसरो के ग्रन्थों में सितार की चर्चा तक नहीं है।

अदारंग का वास्तविक नाम फीरोज खाँ था, इन्हीं की बनाई हुई गतें सितार की प्राचीनतम 'फीरोजखानी गतें' हैं। फीरोज खाँ 'अदारंग' रुहेले नवाब सादुल्लाह खाँ के आश्रय में थे। फीरोज खाँ के पिता खुसरो खाँ भारतीय सितार के आविष्कारक थे और नेमत खाँ 'सदारंग' खुसरो खाँ के अग्रज (बड़े भाई) थे। फीरोज खाँ को 'सदारंग' की लड़की ब्याही थी।[२७]

मुगल-सम्राट् शाह आलम ने अपने ग्रन्थ 'नादिरातिशाही' (संकलन-काल १७९८ ई०) में सितार की चर्चा भारतीय वाद्यों की सूची में की है। 'सदारंग' के वंशजों ने अच्छे-अच्छे सितार-वादक तैयार किए। 'सदारंग' तो सेनिए नहीं थे, परन्तु उनके परवर्तियों ने स्वयं को सेनिया कहना आरंभ कर दिया।

अस्तु, सितार के साथ अमीर खुसरो का कोई सम्बन्ध नहीं।[२८]

तबले के आविष्कारक अमीर खुसरो नहीं

मुहम्मदशाह रँगीले के युग में किसी तबला-वादक की चर्चा नहीं मिलती[२९] और 'नादिरातिशाही' तक में तबले की चर्चा नहीं है। कहा जाता है कि उन्नीसवीं शती के आरंभ में सितार की संगति के लिए तबले का आविष्कार दिल्लीवासी सुधार खाँ (सत्तार खाँ) ने किया, जिनका ठेका 'सत्तारखानी' (सितारखानी) प्रसिद्ध है।

इतिहास से अपरिचित लोग बेतुकी बातें कह डालते हैं और नासमझ लोग छानबीन किए बिना उन्हें रटने लगते हैं। भगवान् का बड़ा अनुग्रह है कि लोग

---

२६. वही पृष्ठ, २०९।

२७. 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृष्ठ ७९-९५।

२८. एक सितार-वादक बम्बईवासी खाँ साहब हमसे बहुत नाराज हैं और समझते हैं कि हम हजरत अमीर खुसरो से सितार छीने ले रहे हैं। इन खाँ साहब का यह दावा है कि ये उसी ढंग से सितार बजाकर दिखाते हैं, जिस प्रकार खुसरो के जमाने में बजाया जाता था। इन खाँ साहब को रशीद अहमद और हसनुद्दीन अहमद से भी नाराज होना चाहिए, जो हजरत अमीर खुसरो से कव्वाली और तराना छीने ले रहे हैं। —लेखक

२९. इस युग के कलाकारों की सूची 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृष्ठ ७९ पर देखिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारंगी, सितार और सरोद को अमीर खुसरो का आविष्कार नहीं कह रहे हैं।

खुसरो के समसामयिक कुछ अन्य कलाकार

अमीर खुसरो के समवर्ती कुछ कलाकारों की चर्चा यथास्थान हो चुकी है। खुसरो के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'एजाज़े खुसरवी' के दूसरे अध्याय में नूरमनि (तुरमुती) खातून की चर्चा है, जो ईरानी और भारतीय गायकों की समिति की अध्यक्षा थी और अमीर खुसरो की कृपा से ही राजकीय अनुग्रह की अधिकारिणी हुई थी।

बाबा फरीदुद्दीन गंजशकर के दौहित्र ख्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम और उनके अनुज ख्वाजा सैयद मुहम्मद मूसा महान् संगीत-मर्मज्ञ और गायक थे। ये दोनों भाई शैख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे।

गायक खुसरो

अमीर खुसरो के संगीत-गुरु का पता नहीं चलता, परन्तु उन-जैसे मेधावी पुरुष के लिए यह अत्यन्त सरल था कि संगति से ही सब कुछ सीख लें। वे अपने पीर शैख निजामुद्दीन चिश्ती के सामने नाचते भी थे और गाते भी थे। दरबार में उनका पद गायक या नर्तक का था। एक बार कोई व्यक्ति रहट से खेत में पानी दे रहा था और टेर लगा रहा था—'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो।' अर्थात् 'पानी निकालो, और राम का स्मरण करो।' यह सुनकर शैख निजामुद्दीन चिश्ती, सैयद मुहम्मद इमाम, सैयद मुहम्मद मूसा, प्रसिद्ध कवि हसनअली सजरी, अमीर खुसरो तथा अन्य कव्वाल गाने और नाचने लगे।

उपसंहार

जो लोग सितार को अमीर खुसरो के मत्थे मढ़ देना चाहते हैं, उन्हें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न होना चाहिए कि अचल सारिकायुक्त पूर्वोक्त 'बीन' का निर्माण दिल्ली में अमीर खुसरो और गोपाल नायक के सम्मिलित प्रयत्न से हुआ।

अमीर खुसरो की मृत्यु से केवल ग्यारह वर्ष पश्चात् हरिहर और बुक्क ने १३३६ ई० में विजयनगर-साम्राज्य की आधार-शिला रखी। ये दोनों भाई दिल्ली में बन्दी रह चुके थे। इन्हीं दोनों भाइयों के गुरु विद्यारण्य जी ने इसी बीन के आधार पर प्रचलित पचास रागों का वर्गीकरण पन्द्रह मेलों में किया।[३०] बुक्क की मृत्यु १३७९ ई० से केवल इकहत्तर वर्ष पश्चात् विजयनगर-सम्राट् देवराज द्वितीय के सभा-पण्डित कल्लिनाथ ने अपने युग के विषय में जो कुछ कहा है, उससे सिद्ध होता है कि उस समय समस्त दक्षिण-भारत में इस 'बीन' का प्रचार हो चुका था और 'संगीत-रत्नाकर' को समझने वाले कल्लिनाथ-जैसे विरले व्यक्ति बच रहे थे।

कल्लिनाथ ने 'संगीत-रत्नाकर' की टीका १४४८ ई० में की है। इसी समय प्रसिद्ध मेवाड़-नरेश महराणा कुम्भा अपना महान् ग्रन्थ 'संगीतराज' लिख रहे थे। इसी समय इलाहाबाद के निकट कड़ा के सूबेदार का पुत्र बहादुर मलिक अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों को एकत्र करके 'संगीत शिरोमणि' ग्रन्थ की रचना करा रहा था।

---

३०. 'संगीत शास्त्र', लेखक -- वासुदेव शास्त्री, पृष्ठ १४१-१५३, द्वितीय संस्करण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाबर ने इब्राहीम लोदी को १५२६ ई० में पराजित किया, उसका एक कलाकार शैखी बचपन से ही बीन बजाने का अभ्यास करता चला आया था।"[31] इसी युग में विजयनगर में बैठकर रामामात्य अपने ग्रन्थ 'स्वरमेलकलानिधि' की रचना कर रहे थे।

अकबर (राज्य काल १५५६-१६०५ ई०) के दरबार में शहाब खाँ और प्रबीन खाँ-जैसे बीनकार विद्यमान थे।

इस 'बीन' के साथ न जाने कैसे 'सरस्वती' और 'रुद्र' का नाम जुड़ गया और मुसलमान लोग इस 'बीन' का साथ हिन्दुओं से जोड़ बैठे। इस हालत में 'सितार' को 'पुराना मुसलमान' सिद्ध करना आवश्यक हो गया। फलतः अठारहवीं शती ईस्वी में बेचारे खुसरो खाँ के द्वारा आविष्कृत सितार को मुहम्मदकरम इमाम ने उन्नीसवीं शती में अमीर खुसरो के खाते में जमा कर दिया।

खुसरो निस्संदेह मुसलमान थे, परन्तु वे हिन्दुस्तानी सूफी थे, काजी या मौलवी नहीं। वे राजनीतिज्ञ थे, परन्तु अपने पीर (दीक्षा-गुरु) शैख निजामुद्दीन चिश्ती के अनन्य भक्त थे, जिनका जन्म बदायूँ (उत्तर-प्रदेश) में हुआ था और जिन्होंने खुसरो को हिन्दी में काव्य-रचना के लिए प्रेरणा दी थी। वे फारसी के महान् कवि थे, परन्तु हिन्दी भाषा पर उनका अधिकार अधिक था। जो कठमुल्ला उन्हें 'मूर्ति-पूजक' कहकर उनकी निन्दा करते थे, उनसे वे कहते थे कि हाँ, मैं मूर्ति-पूजक हूँ, मुझे संसार से कोई प्रयोजन नहीं।

'रंग' और 'वसन्त'-जैसी भारतीय वस्तुओं को अमीर खुसरो ने सूफियों की चिश्ती परम्परा में प्रचलित कर दिया। प्रत्येक वसन्त-पंचमी को जिन अमीर खुसरो की कृपा से आज भी शैख निजामुद्दीन चिश्ती की दरगाह में 'वसन्त' मनाया जाता है, उन्हें यदि औरंगजेब के लेखक फकीरुल्लाह ने औरंगजेबी ऐनक से देखकर अपने रंग में रँगा है, तो अमीर खुसरो का क्या अपराध है।

संगीत-जगत् के एक स्वर्गवासी कर्णधार का यह विश्वास था कि खुसरो जन्मना हिन्दू थे और लोभ में आकर मुसलमान हो गए थे। ये महाशय एक अत्यन्त प्रतिष्ठित संस्था के प्रिंसिपल थे और बी० ए० पास थे। ये खुसरो से सम्बद्ध इतिहास ग्रन्थ पढ़ने के लिए उद्यत ही न हुए। इनकी दृष्टि में यह असम्भव था कि भारतीय संगीत-जगत् का खुसरो-जैसा युग-पुरुष जन्मना हिन्दू न हो। यह सज्जन प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते थे—"संगीत परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील तो समस्त जगत् है, परन्तु परिवर्तन की पृष्ठभूमि की प्रामाणित खोज इतिहास का निर्माण करती और मानव के ज्ञान में वृद्धि करती है।"

कुछ खाँ साहबों का विश्वास है कि हिन्दुस्तानी संगीत का समस्त लालित्य अमीर खुसरो की देन है। ये सज्जन इतनी बात नहीं सोचते कि जिन आविष्कारों की जिम्मेदारी अमीर खुसरो पर थोपी जाती है, वे सब काल-कवलित क्यों हो गए!

अमीर खुसरो के बाद भी संगीत के क्षेत्र में कुछ प्रतिभाशाली मुसलमान हुए हैं, क्या उन्होंने कुछ नहीं सोचा, उनकी संगति में रहने वाले हिन्दुओं में क्या चिन्तन शक्ति सर्वथा लुप्त थी!

---

३१. 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृष्ठ ७०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खुसरो और गोपाल नायक-जैसी दो प्रतिभाओं का सम्पर्क संगीत-क्षेत्र की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना थी। क्या हम सब के संतोष के लिए यह जान लेना पर्याप्त संतोष का कारण नहीं कि एक हिन्दू और मुसलमान-मनीषी के सहयोग ने हमें 'बीन' के रूप में एक ऐसा भारतीय वाद्य दिया, जो सम्पूर्ण देश में राग-वर्गीकरण का सर्वमान्य आधार हो गया।

आज संगीत उच्चतम परीक्षाओं का विषय हो गया है। संगीत में शोध-कार्य हो रहा है। हमारे संगीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए विदेशों में जा ही नहीं रहे, वहाँ बस गए हैं। ये सब अच्छे लक्षण हैं।

यदि लोग इस तथ्य से परिचित हो जाएँ कि विक्रम की पाँचवी शती (चौथी शती ईस्वी) में बारह हजार हिन्दू गायक भारत से ईरान भेजे गए थे और वह बादशाह बहराम गोर का शासनकाल था[३२], तो कोई हानि नहीं है। यदि संगीतज्ञ सज्जन भी इस तथ्य से परिचित हो जाएँ कि भारतीयों की पुरानी संगीत लिपि संसार में प्राचीनतम है[३३], जो भारत से ईरान में, ईरान से अरब में और वहाँ ग्यारहवीं शती ईस्वी में गाइडो डी अरेज़ो के द्वारा योरोप में पहुँची, तो उनके सुरीलेपन में कोई कमी नहीं आएगी।[३४] अमीर खुसरो इस प्रकार के तथ्यों से परिचित थे, इसलिए उन्होंने कहा है कि चिर अतीत से लोग भारत में संगीत सीखने आते रहे हैं।

---

३२. 'राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, पृष्ठ २९-३०।

३३. 'शार्ट एकाउंट आफ दी हिन्दू सिस्टम्स ऑव् म्यूजिक', लेखक—एनी विल्सन, पृष्ठ ५।

३४. 'इंडियन गैजेटियर', इंडिया, लेखक—विलियम हंटर, पृष्ठ २२३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमीर खुसरो की संगीतज्ञता

(एक पाकिस्तानी मुस्लिम की दृष्टि में)

कुछ ही दिनों पूर्व एक उर्दू-पुस्तक 'हज़रत अमीर खुसरो का इल्मे मूसिक़ी और दूसरे मकालात' देखने का अवसर मिला। पुस्तक के लेखक हैं, जनाब रशीद मलिक और प्रकाशक हैं 'रिफ्रेंस रिप्रिंट्स', लाहौर। यह अक्तूबर १९७५ में प्रकाशित हुई है तथा इसकी भूमिका लिखी है प्रोफ़ेसर सैयद अली अब्बास जलालपुरी साहब ने।

पुस्तक के दृष्टिकोण को समझने के लिए विद्वान् भूमिका-लेखक के निम्नलिखत वाक्य पर्याप्त हैं—

"मुसलमानों के लाए हुए ईरानी तमद्दुन (संस्कृति) ने जिस तनासुब (अनुपात) व तवाफ़ुक (सादृश्य), तज़य्युन (श्रृंगार) व ज़ेबाइश (अलंकरण), कुशादगी (खुलापन) व फ़राख़त (विस्तार) को रिवाज दिया, उससे यहाँ हिन्दुओं के दरख़्तों के झुंड ख़ूबसूरत और खुशक़तअ् (क्रमबद्ध) बाग़ात (उपवनों) में बदल गए, उनके तंग और तारीक (अंधकारमय) महलों में कुशादगी (फैलाव) और मुसव्विरी (चित्रकला) में रंग व ख़त (रेखाओं) की रानाई (छटा) का इज़ाफ़ा (वर्द्धन) हुआ और उन्हें कपड़े पहनने और खाना खाने का सलीक़ा आया। क़दीम (पुराने) हिन्दु अपने बदन पर बेसिए कपड़े लपेट लेते थे और पत्तों पर रखकर खाना खाते थे, जूते की जगह खड़ाऊँ पहनने का रिवाज था।[1]

अस्तु, हमें इस दृष्टिकोण को अज्ञानजन्य मानकर मौन का अवलम्बन करना चाहिए और प्रस्तुत पुस्तक से लाभ उठाना चाहिए।

पुस्तक-लेखक का मत है कि हज़रत अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत में कोई नया आविष्कार नहीं किया, न रागों में, न तालों में, न वाद्यों में। वे ईरानी संगीत

---

१. पता नहीं कि 'मुसलमान' शब्द से प्रोफेसर साहब का क्या तात्पर्य है! भारत के बाहर जिन-जिन देशों में इस्लाम फैला, उन देशों की अपनी अलग-अलग संस्कृति थी। ईरान और भारत दो देश हैं और भौगोलिक खण्ड हैं। इस्लाम के उदय से पूर्व अरबों और भारतीयों के सम्बन्ध थे। मुहम्मद साहब के जन्म से पूर्व भी अरबों की एक अपनी संस्कृति थी। ईरान पर जब अरब मुसलमानों का आक्रमण हुआ, तब ईरानी लोग अरबों कीं अपेक्षा कम सुसंस्कृत नहीं थे। खैबर घाटी से भारत पर आक्रमण करने वाले मुसलमान गोरी (गोर निवासी) या गजनवी (गजनी निवासी) थे। जो लोग उर्दू नहीं जानते, उन विभिन्नदेशीय मुसलमानों की सभ्यता और संस्कृति भी सम्बद्ध देशों की है। समझ में नहीं आता कि ये पढ़े-लिखे पाकिस्तानी आदरणीय विद्वान् संस्कृति का सम्बन्ध किस वस्तु से समझते हैं!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के मर्मज्ञ थे, परन्तु एक कलाकार के रूप में उनके किसी समसामयिक प्रामाणिक ग्रन्थकार ने उनकी चर्चा नहीं की है। लेखक का यह विचार भी है कि इस तथ्त का साधक कोई भी प्रमाण उनकी या उनके किसी समसामयिक की कृति में नहीं मिलता कि हज़रत अमीर खुसरो को भारतीय संगीत आता था।

जनाब रशीद मलिक साहब की पुस्तक हमें अनेक स्थलों पर अच्छी लगी है, अतः हम उनके तर्कों को पाठकों के लाभार्थ क्रमशः रखेंगे।

१. "सितार की ईजाद (आविष्कार), इख़्तिराअ, (आविष्करण) या तरमीम (परिवर्तन, सुधार) से कोई वास्ता न था। (पृ० १४६)

अपने इस विचार की पुष्टि में लेखक का कथन है कि हज़रत अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'एजाज़े-खुसरवी' के दूसरे रिसाले (पुस्तिका, प्रकरण) में छब्बीस वाद्यों के नाम गिनाए हैं, परन्तु उनमें सितार की कोई चर्चा नहीं है। उस समय के कवि अपने कारनामों का ज़िक्र अपने अशआर (शैरों) में अक्सर करते थे। इस बात में हज़रत अमीर खुसरो किसी से पीछे न थे। (पृ० १४६-१४७) सितार के बारे में उनकी खामोशी इस बात की दलील है कि उन्हें सितार की ईजाद से कोई वास्ता न था। (पृ० १४७) खुद हज़रत अमीर खुसरो ने, न उनके किसी 'हमअस्र' (समवर्ती) ने और न ही अबुलफ़ज़ल ने इस सितार की ईजाद को उनसे मन्सूब (सम्बद्ध) किया है। सितार अमीर खुसरो से कहीं पहले इख़्तिराअ या ईजाद हो चुका था और उनके ज़माने से अहदे-अकबरी तक हमें हिन्दुस्तान में इसका कोई सुराग़ नहीं मिलता।[२] (पृ० १५७)

हम लेखक के इस दृष्टिकोण से सर्वथा सहमत हैं कि हज़रत अमीर खुसरो सितार के आविष्कारक नहीं हैं।

२. "यह साज़ (ढोल) बहुत क़दीम है और अमीर खुसरो का इसकी ईजाद से कोई वास्ता नहीं है।" (पृ० १७६)

हम लेखक के इस विचार से सर्वथा सहमत हैं कि 'ढोल' हज़रत अमीर खुसरो का आविष्कार नहीं है, परन्तु हज़रत अमीर खुसरो के समवर्ती ग्रन्थकार सुधाकलश ने अपने ग्रन्थ 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' में कहा है—

तथैवं म्लेच्छवाद्यानि डोल तब्ब मुखानि तु।
डपा च······· ······· ·······।। (भरतकोष, पृ० ३७)

इस उद्धरण में 'डोल' (ढोल) 'तब्ब' (तब्ल) और 'डपा' (दफ़>ढफ़>ढप) को म्लेच्छवाद्य कहा गया है। वास्तविकता यह है कि हज़रत अमीर खुसरो के युग में इस 'ढोल' को म्लेच्छवाद्य कहा जाता था।

३. "हमें इस बात की मुस्तनद (प्रामाणिक) शहादत (साक्ष्य) मिलती है कि ग्यारहवीं सदी ईसवी के आग़ाज़ (आरम्भ) में तबले का रिवाज यहाँ हो चुका था।" (पृ० १७७)

विद्वान् लेखक का कथन है कि हज़रत अमीर खुसरो के जन्म से सैकड़ों वर्ष

२. मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार को देखने वाले नवाब दरगाहकुली खां ने भी सितार की कोई चर्चा नहीं की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले तबला भारत में आ चुका था, इसके आविष्कार से हजरत अमीर खुसरो का कोई सम्बन्ध नहीं है। हम केवल इतना जानते हैं कि 'तब्ल:' फारसी शब्द है, परन्तु मुगल सम्राट् शाह आलम तक के युग में हमें किसी तबला-वादक का नाम नहीं मिलता। हम लेखक से सहमत हैं कि हजरत अमीर खुसरो तबले के आविष्कारक नहीं। न तो वर्तमान 'सितार' अपने इस रूप में विदेश की देन है और न अपने वर्तमान रूप में तबला।

४. "ढोलक को भी किसी तरह से अमीर खुसरो की ईजाद नहीं कहा जा सकता। 'दुहल' फ़ारसी लफ़्ज है काफ़ (क) तस्गीर (लघुतावाचक प्रत्यय) की है। चुनाँचि दुहलाक या ढोलक दुहल की ही मुख़्तलिफ़ शक्लें हैं।...इस साज़ का जिक्र उनकी अपनी तहरीरों (लेखों) में भी मिलता है, जो इस अम्र (तथ्य) का वाज़े (स्पष्ट) सुबूत है कि ढोलक उनके ज़माने में भी मौजूद थी।" (पृ० १७७-१७८)

हमें लेखक के इस कथन पर कोई आपत्ति नहीं।

५. "हजरत अमीर खुसरो के कलाम (उक्ति) से भी हमें इस (तालों के आविष्कार के) दावे के हक़ (पक्ष) में कोई शहादत (साक्ष्य) नहीं मिलती और न ही उनके हमअस्रों (समवर्तियों) में से किसी ने ऐसी किसी ताल का जिक्र किया है, जो उन्होंने ईजाद की हो।" (पृ० १८०-१८१)

इस सम्बन्ध में हमारा कोई मतभेद नहीं।

६. "कव्वाली मूसिक़ी की सिन्फ़ (प्रकार, विधा) की हैसियत से हज़रत अमीर खुसरो से बहुत पहले हिन्दुस्तान में पहुँच चुकी थी।" (पृ० १९५) "कव्वाली और तरान: दोनों हज़रत अमीर खुसरो से बहुत पहले की चीजें हैं...हम कव्वाली को हरगिज़ अमीर खुसरो की ईजाद नहीं कह सकते।" (पृ० १९३)

हम जनाब रशीद साहब से यहाँ बिलकुल सहमत हैं कि हजरत अमीर खुसरो कव्वाली या तराने के आविष्कारक नहीं हैं, परन्तु कव्वाली के न तो छंद भारत के लिए नए हैं न ताल। विषय भी भक्तिपरक है। लौकिक शृंगार से अध्यात्मपरक अर्थों की व्यंजना भी भारतीय शैली है। अमीर खुसरो से पूर्ववर्ती, परन्तु उसी शताब्दी के जैन आचार्य पार्श्वदेव ने अपने इस प्रकार के गीतों की चर्चा इन शब्दों में की है—

गूढार्थैः परमार्थैश्च संसारसुखमुख्यकैः।
पदैर्नियोजितं गीतमध्यात्मं योगिवल्लभम् ॥

अर्थात्—'अध्यात्मपरक ऐसा गीत योगिवल्लभ है, जिसमें ऐसे शब्दों की योजना हो, जो शब्द सांसारिक सुख का वर्णन प्रत्यक्षतया करते हों, परन्तु जो गूढ़ार्थ और परमार्थबोधक हों।'

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी उन भारतीय भजन-मण्डलियों से प्रभावित हुए, जो लोक के लिए ऐसे गीत गाती थीं। परिणाम कव्वाली हुआ।

निस्संदेह 'तरान:' एक फारसी शब्द है, परन्तु उसमे ताल, शुष्काक्षर और शुष्काक्षरों का प्रयोग सर्वथा भारतीय है। वस्तुतः वर्तमान तराने की विधा 'तेन्नकरण' नामक प्रबन्ध से प्रभावित है। बारहवीं शती के भारतीय ग्रन्थकार हरिपाल (काल, ११७५ ई०) ने अपने ग्रन्थ 'संगीतसुधाकर' में 'तेन्नकरणप्रबन्ध' की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चर्चा इन शब्दों में की है—

गीयते तेन्नकरणं स्वरैः धात्वोस्सतेन्नकैः।

जगदेकमल्ल भी अमीर खुसरो से पूर्ववर्ती हैं, वे कहते हैं—

स्वरास्सतेनका यत्र दृश्यंते धातुयुग्मके।
तदुक्तं तेन्नकरणं चालुक्य पृथिवीभुजा। (भरतकोष, पृ० २५६)

पार्श्वदेव ने 'संगीतसमयसार' में जगदेक के शब्द उद्धृत किए हैं।

७. "क़ौल बतौर सिन्फ़ मूसिक़ी ग्यारहवीं सदी ई० से मक़बूल (लोकप्रिय) हो चुका था…मूसिक़ी की यह सिन्फ़ हज़रत अमीर खुसरो की विलादत (जन्म) से पेश्तर की है। चुनाँचि यहाँ क़ौल भी था, क़व्वाली भी और उसके माहिरीन भी, जिनको क़व्वाल कहा जाता था। खुद हज़रत अमीर खुसरो ने भी मुहव्वलाबाला (पूर्वोद्धृत) 'एजाज़े खुसरवी' में ख्वाजः लतीफ क़व्वाल और शाबान क़व्वाल का जिक्र किया है। (पृ० १९६, १९७)

इस सम्बन्ध में जनाब रशीद अहमद साहब से हमारा कोई मतभेद नहीं।

८. "हम यह मानने पर मजबूर हैं कि एमन और फरोदस्त का हज़रत अमीर खुसरो से कोई तअल्लुक नहीं है।" (पृ० २१४)

यह सत्य है कि इनके आविष्कार का श्रेय हज़रत अमीर खुसरो को नहीं दिया जा सकता। 'कल्याण' शब्द 'एमन' का अनुवाद है। रामामात्य और वेंकटमखी 'कल्याण' को तुरुष्कप्रिय, अधम और गीत-प्रबंध के लिए अयोग्य मानते हैं, परन्तु एमन राग के प्रचलित रूप से उस कल्याण का चलन नहीं मिलता।

९. "हज़रत अमीर खुसरो ने 'एजाज़े-खुसरवी' में जहाँ बहुत-से ईरानी अरबी मूसिक़ी से मुतअल्लिक़ रागों का जिक्र किया है, वहाँ उन्होंने 'हिजाज़' का बहैसियत एक मुक़ाम के जिक्र किया है।" (पृ० २२४)

"हमारी किताबों में सबसे पहले इसका ज़िक्र पंडित विद्यारानिया (विद्यारण्य) की किताब 'संगीतसार' में मिलता है।[३] (पृ० २२२)

"जंगूला का हज़रत अमीर खुसरो से कोई तअल्लुक़ नहीं है।" (पृ० २२५)

"सरपरदा एक मुक़ाम है और यह भी 'एजाज़े-खुसरवी' में आता है।" (पृ० २२५)

"साज़गिरि ईरानी मूसिक़ी का एक पुराना 'लह् न' (टेर) है। हज़रत अमीर खुसरो ने इसकी ईजाद का दावा किए बग़ैर दो जगह इसका इस्तेमाल किया है। (पृ० २२८)

"ग़ारा राग 'रागतरंगिणी' में अमीर खुसरो से पहले का है। (पृ० २३१)

"यह (बहार) राग फ़ारसीउल् अस्ल (ईरान में उत्पन्न) है, हमने इसे ईरानी

---

३. विद्यारण्य की कृति 'संगीतसार' की चर्चा 'विद्यारण्यमतम्' के नाम से 'संगीतसुधा' में की गई है, 'संगीतसार' अब उपलब्ध नहीं है। विद्यारण्य के शिष्य और विजयनगर-साम्राज्य के संस्थापक हरिहर और बुक्क दिल्ली में कैद रहे थे। 'संगीतसार' के मेलकर्ता मुकाम-सिद्धान्त से प्रभावित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूसिक़ी से लिया है। (पृ० २३४)

"राग मुजीर ईरानी मूसिक़ी से मुतअल्लिक़ है और मुक़ाम हुसेनी का एक शअब: है, 'एजाज़े-खुसरवी' में भी इसका ज़िक्र मिलता है।" (पृ० २३४)

"हज़रत अमीर खुसरो भी राग वाखरज़ का कई बार ज़िक्र करते हैं—मगर कहीं उन्होंने इसकी ईजाद का दावा नहीं किया।" (पृ० २३५)

"फ़रग़ान: अमीर खुसरो के यहाँ यह इन मानों में दो वार इस्तेमाल हुआ है···लेकिन इसकी ईजाद का दावा भी नहीं किया गया है। (पृ० २३५)

अस्तु, रशीद अहमद साहब के अनुसार हज़रत अमीर खुसरो किसी राग के आविष्कारक नहीं हैं।

९. "खयाल हज़रत अमीर खुसरो से पहले भी गाया जाता था, तक़रीबन् तमाम मुहक़्क़िक़ीन (शोधकर्ता) इस बात पर मुत्तफ़िक़ (सहमत) हैं कि यह सुलतान हुसेन शर्की वालिए (शासक) जौनपुर (राज्याभिषेक १४५२ ई०) की विसातत (माध्यम) से मक़बूल हुआ।" (पृ० २४०)

जनाब रशीद अहमद साहब से हम इस बात में सहमत हैं कि हज़रत अमीर खुसरो ख़याल के आविष्कारक नहीं हैं। 'ख़याल' शब्द 'ध्यान' का पर्याय है। आरम्भ में 'ख़याल' शब्द का सम्बन्ध गीत के विषय के साथ था, किसी गायकी के साथ नहीं। शाह बुरहानुद्दीन जानम (रचना-काल १५८२ ई०) ने जो 'ख़याल' लिखे हैं, उनमें बिरहिन की पीर है। ख़याल-गायकी का वर्तमान रूप पचास वर्ष पुराना भी नहीं है, इसमें तानों की भरमार बड़े मुहम्मद खाँ की देन है, जिनकी नकल हद्दू खाँ और हस्सू खाँ ने की। भाषा, भाव और अर्थ की उपेक्षा करके किया जानेवाला कंठ-व्यायाम निरक्षर खोपड़ियों की उपज है।

१०. "हज़रत अमीर खुसरो को मूसिक़ी में बहुत दस्तरस हासिल थी, लेकिन इस अम्र की कहीं वज़ाहत नहीं मिलती कि वह कौन-सी मूसिक़ी थी? क्या उनका इल्म सिर्फ़ मुक़ाम ईक़ाअ़ के निज़ाम तक महदूद था या वह बर्रे-आज़म (अविभाजित भारत) की मूसिक़ी पर भी इतनी ही गहरी नज़र रखते थे। (पृ० २४६)··· उनकी किताबों में जा-ब-जा उस मूसिक़ी का ज़िक्र आया है, जो मुक़ाम ईक़ाअ़ के निज़ाम से मुतअल्लिक़ है, दूसरे अलफ़ाज़ में वह सिर्फ़ उस मूसिक़ी का ज़िक्र करते हैं, जो अफ़ग़ान और तुर्क हुक्मरान अपने हमराह लाए थे और जिस माहौल में हज़रत अमीर खुसरो रहते थे, वहाँ मफ़्तूह (पराजित) क़ौम की मूसिक़ी कभी बार (पहुँच) न पा सकी।" (पृ० २४६)

हम यहाँ तक तो जनाब रशीद अहमद साहब से सहमत हैं कि हज़रत अमीर खुसरो ने 'एजाज़े-खुसरवी' में भारतीय संगीत अथवा हिन्दू संगीतकारों की चर्चा नहीं की, परन्तु यह मानने में हमें संकोच है कि हज़रत अमीर खुसरो भारतीय संगीत से अपरिचित थे या जो कलाकार उनके द्वारा चर्चा का विषय बने हैं, वे कहीं बाहर से आए थे। हम जनाब रशीद अहमद साहब से यहाँ भी सहमत हैं कि हज़रत अमीर खुसरो को भारतीय संगीत के शास्त्रीय पक्ष पर अधिकार न था, परन्तु उन-जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति लोक से दूर था या उस समय प्रचलित भारतीय संगीत से अपरिचित था, यह बात मानने के लिए कोई भी प्रस्तुत न होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय के गोपाल नायक जैसे-गायक विदेशीय संगीत के सिद्धान्तों से उतने ही अपरिचित थे, जितने कि हज़रत अमीर खुसरो ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति से। अत: इन दोनों महापुरुषों को परस्पर परिचय से लाभ हुआ, वहाँ हार-जीत का प्रश्न ही नहीं था।

जनाब रशीद अहमद साहब का विचार है कि हज़रत अमीर खुसरो भारतीय संगीत को ईरानी या अरब संगीत की अपेक्षा घटिया समझते थे, हमें इस विषय में केवल इतना ही कहना है कि 'नुहसिपहर' में हज़रत अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत को संसार में सर्वश्रेष्ठ कहा है और अरब का नाम लेकर वहाँ के संगीत को भारतीय संगीत की अपेक्षा घटिया बताया है।

रशीद अहमद साहब की पुस्तक में ३१९ पृष्ठ हैं, प्रस्तुत लेख का प्रयोजन उस समस्त पुस्तक की आलोचना नहीं, यहाँ तो केवल हज़रत अमीर खुसरो की संगीतज्ञता के सम्बन्ध में रशीद साहब के विचार प्रस्तुत करना ही लक्ष्य है।

भारतीय संगीत के इतिहास में हमें केवल एक व्यक्ति ऐसा मिलता है, जिसने मुसलमान होते हुए भी भारतीय संगीत-सिद्धान्तों को गम्भीरतातूर्वक समझने की चेष्टा की, वह है बहादुर मलिक, जो बेचारा इब्राहीम शर्की के (कड़ा में) सूबेदार सुलतान मलिक का पुत्र था। 'संगीत-शिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना कराने का श्रेय इसी को है।

रशीद अहमद साहब-जैसे विद्वान् लेखक इस ऐतिहासिक तथ्य को सर्वथा भूल जाते हैं कि विभिन्न युगों में हिन्दू संगीतजीवी विभिन्न कारणों से मुसलमान हो गए, इस धर्म-परिवर्तन से न तो उनका रक्त बदला और न उनका संगीत, हाँ, उनके अन्नदाता बदल गए।

होता यह है कि एक 'उस्ताद' होते हैं और एक 'प्रशंसक'। ये प्रशंसक महोदय 'उस्ताद' से जो कुछ सुनते हैं, लिख मारते हैं। संगीत का इतिहास बनने लगता है।

कुछ वर्गों में उत्पन्न लोगों का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वे स्वयं को 'उस्ताद' कहलवाएँ। एक ऐसे ही 'उस्ताद' आजकल भी हैं, जो अपने विश्वास के अनुसार वैसे ही सितार बजाकर दिखाते हैं, जैसे कि हज़रत अमीर खुसरो के सामने बजाया जाता था (!) इनके भक्तों की भी कमी नहीं है, जनाब रशीद अहमद साहब की पुस्तक इन उस्ताद साहब को पढ़ना चाहिए।

हम यह मानते हैं कि मेलकर्ता-पद्धति मुक़ाम-पद्धति का प्रसाद है, जिसमें 'ग्राम-नियम' नहीं है, परन्तु 'आंजनेय'-जैसे आचार्य भी ग्राम-नियम-हीन स्वर-व्यवस्था को देशी रागों में मान्यता देते हैं और प्राचीन भारतीयों का विदेशों के साथ परिचय इस्लाम के जन्म से हजारों वर्ष पूर्व का है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमीर खुसरो, किंवदंतियाँ और पृष्ठभूमि

(एक पाकिस्तानी मुस्लिम की दृष्टि में)

एक पाकिस्तानी विचारक श्री रशीद मलिक साहब की दृष्टि में हज़रत अमीर खुसरो केवल ईरानी संगीत के मर्मज्ञ थे। हिन्दुस्तानी संगीत में न तो उन्होंने कोई उल्लेखनीय कार्य किया और न कोई आविष्कार। ऐतिहासिक जिज्ञासा के अभाव और अन्वेषण-सम्बन्धी निकम्मेपन ने अनेक वस्तुओं को अमीर खुसरो के साथ जोड़ दिया और समय-समय पर उनके तथाकथित आविष्कारों में वृद्धि होती गई।

हम श्री रशीद साहब के विचारों का अनुवाद पाठकों के लाभ के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं—

अमीर खुसरो के मत्थे अनेक बातों को मढ़ने का कारण

"हज़रत निजामुद्दीन औलिया तथा उस युग के दरबारों के साथ उनके सम्पर्क, उनके ज्ञान, वैदुष्य और उनके महान् काव्य, इन सब कार्यों ने उनके व्यतित्व के चारों ओर पवित्रता और महत्ता का एक तेजोवलय बना दिया था, अतः उनके साथ सम्बद्ध किसी किंवदंती को, चाहे वह चम्मो साकिन का किस्सा हो या किसी नानबाई का किस्सा, चाहे रेख्ता, चुटकुले, कहमुकरनियाँ हों या पहेलियाँ, चाहे हिन्दी-काव्य हो या संगीत, जो उनके महान् व्यक्तित्व के साथ नत्थी हो चुकी हैं या भविष्य में होती चली जाएंगी, हम चैलेंज नहीं करते। उस युग की नीतियों की दृष्टि से यह आवश्यक था और मुसलमानों को एक ऐसे 'मर्दे कामिल' (कमाल रखने वाले पुरुष) की आवश्यकता थी, जिसके नाम के साथ ऐसी किंवदंतियों को नत्थी करके यहाँ के संगीत से आत्मीयता और, शासक जाति की हैसियत से मुसलमान अपने जातीय गर्व का पहलू निकाल सकते।"[1]

रशीद साहब ने यह स्पष्ट कर दिया है कि एक विशिष्ट वर्ग ने शासक जाति के मिथ्या-गौरव को प्रतिष्ठित करने के लिए अनेक कपोल-कल्पनाओं की सृष्टि की और उन्हें हज़रत अमीर खुसरो के नाम से जान-बूझकर चिपका दिया। इस प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हुए रशीद मलिक साहब कहते हैं—

"क्योंकि अन्वेषण और गवेषणा की भावना समाप्त हो चुकी थी, मानसिक निकम्मेंपन ने नवीन कार्य करने के लिए समस्त स्रोत सुखा दिए थे, अतः हम सरल-तम मार्ग पर चल निकले, अनुसंधान, जिज्ञासा और परिश्रमसाध्य खोज की अपेक्षा

---

१. 'हज़रत अमीर खुसरो का इल्मे-मूसिकी और दूसरे मकालात', ले० श्री रशीद अहमद। पृष्ठ ३०५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे लिए यह सरलतम था कि जिस वस्तु के उद्भव अथवा विकास से हमारा परिचय न हो, जिसके इतिहास से हम अपरिचित हों, उसे किसी प्रभावशाली व्यक्तित्व साथ नत्थी करते जाएं। चिन्तन-विषयक निष्क्रियता और मानसिक निकम्मेपन का इसकी अपेक्षा बुरा उदाहरण हमें इतिहास में कदाचित् ही कहीं मिले।"[२]

"हजरत अमीर खुसरो जहाँ एक सूफी थे, वहाँ वह एक कामयाब दुनियादार भी थे। शाही दरबारों के साथ उनका सम्पर्क एक ऐसा कारण था कि हम निस्संकोच उनके सम्माननीय नाम का उपयोग किंवदंतियों को उनके साथ नत्थी करने के लिए कर सकते थे।"[३]

रशीद अहमद साहब का कहना है—"अमीर खुसरो संगीत की विभिन्न बन्दिशों के 'अशआर' (शैर का बहुवचन) लिखते थे, इन बन्दिशों में कौल, गजल, तराना, नक्श, नशीद और बसीत सम्मिलित हैं, इसके अतिरिक्त समस्त निष्कर्ष सरासर प्रक्षिप्त हैं, अटकलों या अनुमानों पर आश्रित हैं।"[४]

"बहरुल्फजायल" फारसी की सबसे पुरानी और पहली किताब है, जिसमें 'राग' शब्द का प्रयोग हुआ है और छह राग, छत्तीस रागिनी की चर्चा है, इसकी रचना हजरत अमीर खुसरो की मृत्यु से प्रायः सौ वर्ष पश्चात् हुई।"[५] अगर हम इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक देखें, तो यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि इसमें हजरत अमीर खुसरो से सम्बद्ध आविष्कारों की कोई चर्चा नहीं है, न उनके द्वारा आविष्कृत राग दृष्टिगोचर होते हैं, न वे वाद्य मिलते हैं और न वे रीतियाँ, जिन्हें हम आजकल उनके नाम से जोड़ते हैं। केवल यही बात यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि संगीत-विषयक जितनी अनुश्रुतियाँ हजरत अमीर खुसरो के महान् व्यक्तित्व के इधर-उधर चक्कर लगा रही हैं, वे सरासर 'वजई' हैं, हमारे अपने जहनों की उपज हैं, ये मनघड़ंत और खयाली बातें हैं, जिनके लिए हमारे पास कोई साक्ष्य नहीं।[६]

"विचित्र बात यह है कि स्वयं संगीतज्ञ होने पर भी मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूँनी, हजरत अमीर खुसरो की सांगीतिक सेवाओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता।[७]

अकबर के युग में किंवदंतियाँ इतनी बलवती हो चुकी थी कि अबुलफजल को भी कहना पड़ा—"जो देहली में गाया जाता है, उसे कौल और तराना कहते हैं, इसे अमीर खुसरो देहलवी ने मामत (सामत) और ततार के साथ हिन्दी और फारसी तर्ज और राग को मिश्रित करके आविष्कृत किया।"[८]

---

२. वही पृष्ठ ३०५-३०६।
३. वही, पृष्ठ ३०४।
४. वही, पृष्ठ २६०।
५. वही, पृष्ठ २६१।
६. वही, पृष्ठ २६३।
७. वही, पृष्ठ २६५।
८. वही, पृष्ठ २६५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाहजहाँ के युग में कपोल कल्पनाओं में वृद्धि

अब्दुलहमीद लाहौरी (मृत्युकाल १६५९ ई०) ने 'बादशाहनामा में कहा—"यद्यपि भारत को स्वर्गोपम भूमि में प्राचीन गायकों का आधार प्रबन्धों पर था, जिन्हें गीत, छंद, ध्रुव और स्तुति कहते हैं, परन्तु ये दुर्लभ एवं विचित्र प्रबन्ध कर्नाटक की भाषा में प्रचलित थे, इसलिए अमीर खुसरो ने (जो हजारी नस्ल से सम्बन्ध रखते थे और शैख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीदों में से थे) इन्हें चार किस्मों में गाया। पहली किस्म 'कौल' है, जो 'गीत' की शक्ल में अरबी-फारसी पद्य या गद्य पर आश्रित होता है, इसका आधार एक ताल, दो ताल, तीन ताल और चार ताल पर है। दूसरी किस्म फारसी है, जिसमें फारसी अशआर एक ताल पर आश्रित तराने के साथ प्रस्तुत किए हैं। तीसरी किस्म का नाम तरानः है, जिसमें अशआर नहीं हैं, उसकी आधारशिला एक ताल पर रखी है, रचना की एक चौथी किस्म है, जो हिन्दी भाषा में बनाई, जिसे 'खयाल' वगैरह के नाम से युक्त किया। अमीर खुसरो से पहले भी कुछ एक गवैयों ने खयाल गाया है।"[९]

औरंगजेब के युग में सैफुद्दीन फकीरुल्लाह का कमाल

भारतीय संगीत के इतिहास में सबसे पहले सैफुद्दीन फकीरुल्लाह ने अपनी पुस्तक 'राग-दर्पण' (रचना-काल १६६३ ई०) में यह कहा कि "कुछ फारसी और कुछ भारतीय रागों को मिश्रित करके अमीर खुसरो के मुवाफिक, उश्शाक, सरपरदः, साजगिरि, वाखरज, मुजीर, गनम, सनम, फरगानः, जीलफ, फरोदस्त, यमनी और एमन-बसंत ये तेरह राग प्रचलित किए। इस सूची में आरम्भिक छह नाम ईरानी मुकामों के हैं, जो अमीर खुसरो के शताब्दियों पूर्व से प्रचलित थे, अवशिष्ट रागों के विषय में फकीरुल्लाह के शब्द इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि प्रायः भारतीय रागों का फारसी नामकरण किया गया है।"[१०]

फकीरुल्लाह ने भी अबुल्फजल और अब्दुल हमीद लाहौरी की भाँति अपने कथन के सम्बन्ध में कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है।

फकीरुल्लाह ही पहला लेखक है, जो तरानः खयाल, नक्क, निगार, बसीत, तिल्लाना, सुहेला इत्यादि को अमीर खुसरो का आविष्कार कहता है, परन्तु कोई प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करता।

जो सितार-वादक या तबला-वादक हजरत अमीर खुसरो के कन्धे पर सितार या गोद में तबला देखना चाहते हैं, उनको फकीरुल्लाह से भी निराशा होगी, क्योंकि फकीरुल्लाह जैसा कपोलकल्पनाकुशल व्यक्ति भी सितार और तबले की चर्चा तक नहीं करता और न इन वाद्यों का आविष्कारक हजरत अमीर खुसरो को कहता है।

फकीरुल्लाह ने गारा, बहार, काफी, जंगूलः, हिजाज, एमन, शहनाज इत्यादि को हजरत अमीर खुसरो का आविष्कार नहीं कहा।

---

९. वही, पृष्ठ २६६-२६७ पर उद्धृत।
१०. वही, पृष्ठ २७६-२८३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फकीरुल्लाह ने अमीर खुसरो को किसी ताल का आविष्कारक भी नहीं बताया है।

वह पहला लेखक फकीरुल्लाह है, जिसने हजरत अमीर खुसरो और गोपाल नायक की प्रतिस्पर्धा को साम्प्रदायिक रंग दिया है। रशीद मलिक साहब ने फकीरुल्लाह और उसके समवर्ती मिर्जा मुहम्मद के वक्तव्यों पर टिप्पणी करते हुए कहा है—

"आखिर हजरत अमीर खुसरो को तख्त के नीचे छिपने की क्या आवश्यकता थी? वे पर्दे के पीछे भी छिप सकते थे, किसी निकटवर्ती कमरे में भी बैठ सकते थे, श्रोताओं में भी मिलकर बैठ सकते थे, क्योंकि नायक गोपाल तो उनको जानता न था, आखिर ये सज्जन (फकीरुल्लाह और मिर्जा मुहम्मद) उनको तख्त के नीचे छिपाने पर क्यों तुले हुए हैं? इस समस्त घटना को (अगर यह घटना है तो) यह आख्यानात्मक रंग देने की क्या आवश्यकता थी? अगर मुकाबला होना था, तो आमने-सामने बैठकर भी हो सकता था, जैसाकि संगीत के इतिहास में प्रायः होता आया है, छिपकर गाना सुनने का आग्रह और दूसरे दिन अपने प्रतिस्पर्धी को मुकाबले में पछाड़ देना हजरत अमीर खुसरो की शान में गुस्ताखी के समान है और उनसे इस कपटाचरण की आशा गलत काम है। वस्तुतः यह बात इस तथ्य का प्रमाण है कि यह सारा किस्सा कपोलकल्पित है।"[११]

रशीद मलिक साहब इन कपोल-कल्पनाओं के कारण पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

"संगीत के क्षेत्र में यहाँ विभिन्न प्रकार प्रचार में थे। महाद्वीप (अखण्डित भारत) के संगीत और ईरानी संगीत का निर्णय विजेता और शासक जाति के हाथों होना था, अतः इस (प्रवृत्ति) का प्रयोजन केवल ईरानी संगीत की श्रेष्ठता सिद्ध करना था, जो प्रकटतया हजरत अमीर खुसरो के व्यक्तित्व के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्तित्व के सहारे सम्भव नहीं था। यहाँ यह वास्तविकता भी विचारणीय है कि संगीत से हजरत अमीर खुसरो की व्यावहारिक पैठ के विषय में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। संगीत-विद्या में निष्णात होना, इस कला को जानना और उस सम्बन्ध में विवेक रखना एक बात है और व्यावहारिक रूप में एक कलाकार होना दूसरी बात। किसी इतिहास में हजरत अमीर खुसरो का परिचय कभी एक क्रिया-कुशल कलाकार के रूप में नहीं कराया गया।"[१२]

मिर्जा मुहम्मद ने भी सितार, तबले या ढोलक की न तो कोई चर्चा की है और न इनका आविष्कारक अमीर खुसरो को बताया है।"[१३]

मिर्जा मुहम्मद ने ९२ भारतीय तालों और १७ फारसी बहरों (छन्दों) की चर्चा विस्तारपूर्वक की है, परन्तु वह भी अमीर खुसरो को किसी ताल का आविष्कारक नहीं कहता।[१४]

---

११. वही, पृष्ठ २९३-२९४।
१२. वही, पृष्ठ २९४।
१३. वही, पृष्ठ २९६।
१४. वही, पृष्ठ २९६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुहम्मद करम इमाम की गप

'मअदन् उल् मूसिकी' (रचनाकाल १८५४ ई०) का लेखक मुहम्मद करम इमाम वह पहला व्यक्ति है, जिसने हरजत अमीर खुसरो की मृत्यु से ५३० वर्ष पश्चात् यह कहानी गढ़ी कि हजरत अमीर खुसरो सितार, ढोलक और सत्रह तालों के आविष्कारक हैं। मुहम्मद क़रम इमाम के विषय में जनाब रशीद मलिक साहब फरमाते हैं—

"मुहम्मद करम इमाम खाँ कहानियाँ गढ़ने में सबको मात दे गए हैं, अतिशयोक्ति के मिश्रण के जौहर, जो उन्होंने दिखाए हैं, उन्हीं का हिस्सा हैं। सम्पूर्ण पुस्तक का विश्लेषण समय का विनाश होगा और पुस्तक भी ऐसी है, जिसमें इसकी पात्रता नहीं है, केवल कुछ बातों के विहंगावलोकन से ही हमें समस्या का समाधान मिल जाएगा। नायक गोपाल का किस्सा इन्होंने बड़े रंगीन ढंग से लिखा है। उनके कहने के अनुसार यह प्रतिस्पर्धा अलाउद्दीन गोरी (!) के युग में हुई और आपके (अमीर खुसरो के) नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए और यहाँ तक कि उनके तीन रूमाल रोते-रोते तर हो गए। इस पर गोपाल ने अनुपम होने का दावा किया, परन्तु हजरत अमीर खुसरो ने उसे दो वर्ष पश्चात् आने के लिए कहा। इस अवधि में अमीर खुसरो ने 'शरीफों के बच्चों' को गाने के प्रत्येक प्रकार में निष्णात कर दिया। जब गोपाल वापस आया और संगीत की प्रतियोगिता पुनः हुई, तब अमीर खुसरो के शिष्यों ने गोपाल नायक को हर बात में हराया। इस पर पूर्वोक्त नायक अत्यन्त लज्जित हुआ, और मुसलमान होकर हजरत अमीर खुसरो का शिष्य हो गया।"[१५]

सैफुद्दीन फकीरुल्लाह गोपाल नायक को अमीर खुसरो से हरवाते हैं, तो मुहम्मद करम इमाम बेचारे गोपाल नायक को हजरत अमीर खुसरो के नौसिखिए शागिर्दों से पटखनी दिलाकर मुसलमान भी बना डालते हैं।

आश्चर्य तो यह है कि मौलाना शिबली और मौलाना अबुल्कलाम जैसे विचारक भी फकीरुल्लाह की बातों में आ गए, इस स्थिति पर जनाब रशीद अहमद साहब ने भी आश्चर्य प्रकट किया है।[१६]

रशीद अहमद साहब कहते हैं—

"सूफियों की दृष्टि में कीर्तन आया और जब उन्होंने देखा कि हिन्दुओं में संगीत उपासना की पद्धति है, तब उसका जवाब इन्हें भक्तिपरक सूफी संगीत दिखाई दिया और धीरे-धीरे चिश्ती परम्परा ने उसे अपनी पद्धति में सम्मिलित कर लिया।···क्योंकि ईरानी संगीत में भारतवासियों के लिए कोई आकर्षण न था, इसलिए उन्हें केवल स्थानीय संगीत का आश्रय लेना पड़ा।"[१७]

मुसलमानों का एक बड़ा वर्ग संगीत को इस्लाम की दृष्टि से 'हराम' मानता चला आया है, आज भी मानता है, परन्तु यह वर्ग भी हजरत अमीर खुसरो को

---

१५. वही, पृष्ठ २६८।
१६. वही, पृष्ठ २७१।
१७. वही, पृष्ठ ३००-३०१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महापुरुष मानने के लिए विवश है, इसीलिए मुसलमानों का संगीतानुरागी वर्ग अपने समर्थन के लिए हजरत अमीर खुसरो के नाम को अमोघ बाण की भाँति उपयोग में लाता रहा है। यही कारण है कि अनेक आविष्कार हजरत अमीर खुसरो के मत्थे मढ़े जाते रहे हैं। मुहम्मद करम इमाम के बाद तबला-वादकों ने भी पीछे रहना उचित न समझा और आज दिल्ली के अनेक तबला-वादक तबले के आविष्कार का श्रेय भी हजरत अमीर खुसरो को देने लगे हैं।

आजकल भी 'तबला' तो दरगाहों में नहीं पहुंचा, परन्तु हारमोनियम अवश्य पहुँच गया है, सम्भव है, पचास वर्ष बाद कुछ लोग इसे भी हजरत अमीर खुसरो का आविष्कार कह दें, क्योंकि कव्वाली के साथ आज हारमोनियम की हैसियत 'चोली के साथ दामन' की हो गई है।

मुसलमान संगीत-जीवियों में कोई स्वयं को नायक गोपाल की औलाद कहता है, तो कोई सुजानसिंह की, कोई अपने बड़े-बूढ़ों को किशनगढ़ के राजपूतों का वंशज बताता है, तो कोई स्वयं को शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण घोषित करता है। कौन, कब, किस परिस्थिति में कहाँ फँसकर किस और कैसी सन्तान को जन्म दे बैठा, इसका कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है, परन्तु यह प्रवृत्ति यह सिद्ध करती है, ये भारतीय हैं, इनका रक्त भारतीय है, इनकी विद्या भारतीय है, भले ही इनका धर्मान्तरण हो गया हो। अमीर खुसरो के विषय में इस वर्ग की मान्यताएँ भी इतिहास से अपरिचय का परिणाम हैं। •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोध का पहला पाठ और कुछ उदाहरण

भगवत्कृपा से आज अनेक विश्वविद्यालयों की स्नातकोत्तर परीक्षाओं में संगीत एक विषय हो गया है। अनेक विद्यार्थी एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं और अनेक पी-एच० डी० उपाधि से विभूषित हैं। जो लोग पी-एच० डी० नहीं हैं, वे आर्थिक लाभ के लिए ही सही, यह उपाधि प्राप्त करना चाहते हैं। ये सब अच्छे लक्षण हैं।

जो विद्यार्थी संस्कृत जानते हैं, या जिनके निर्देशक संगीतज्ञ होने के साथ ही साथ संस्कृतज्ञ भी हैं, वे उपलब्ध संस्कृत ग्रंथों के आधार पर संगीत के ऐसे पक्षों का दिग्दर्शन करना चाहते हैं, जो आज के विद्यार्थी की दृष्टि से ओझल हैं। कुछ लोग शोध के लिए अपने क्षेत्र का लोक-संगीत चुन लेते हैं और उसके सहारे उनकी नैया पार लग जाती है। इस अर्थप्रधान युग में प्रधान लक्ष्य उपाधि-प्राप्ति है और यह आर्थिक आवश्यकता या विवशता का परिणाम है।

शोध का पहला पाठ संदेह

जो लोग ज्ञान-भण्डार में वस्तुतः वृद्धि करने के लिए शोध-कार्य करते हैं, उनकी दृष्टि सामान्य लोगों की अपेक्षा विलक्षण होती है, वे किसी भी स्थापना को स्वीकृत करने से पूर्व भलीभाँति ठोक बजा लेते हैं। किसी भी मान्यता को प्रश्न और परिप्रश्न की कसौटी पर कसना और तथ्य पर पहुँचना सन्देह का ही परिणाम होगा, अतः शोध के क्षेत्र में पदार्पण नहीं करना चाहिए। शोधका अधिकारी विद्यार्थी और लोगों की भाँति सरसरी तौर से नहीं पढ़ता, समझ बूझकर पढ़ता है और विचार करता हुआ पढ़ता है। खोजबीन के पश्चात् सन्देह का निवारण होने से 'स्थापना' पर 'श्रद्धा' होती है, अतः 'श्रद्धा' सन्देहनिवारण का परिणाम है।

कुछ उदाहरण

(१) संस्कृत का एक शब्द है 'तद्वत्' और एक शब्द है 'तावत्'। तद्वत् का अर्थ है 'उस प्रकार' और 'तावत्' का अर्थ है 'उतना'। 'उस प्रकार' और 'उतना' दो विभिन्न बातें हैं। 'मैं किसी को 'पुत्रवत्' समझता हूँ' का अर्थ यह कदापि नहीं है कि मैं उसे 'उतना' ही प्यार करता हूँ, जितना की पुत्र को। यदि ऐसा होता, तो 'पुत्रवत्' समझा जाने वाला व्यक्ति भी 'पितृवत्' समझे जाने वाले व्यक्ति की सम्पत्ति में उत्तराधिकारी हो जाता और अनेक करोड़पतियों की सम्पत्ति में हिस्सा बँटाने लगता। कोई सम्पत्तिशाली व्यक्ति अपने पुत्र के किसी मित्र को 'पुत्रवत्' समझकर उसे अपनी किसी फैक्ट्री का मैनेजर तो बना सकता है, अपनी सम्पत्ति का उत्तरा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धिकार नहीं देता।

अस्तु, जो व्यक्ति 'तद्वत्' का अर्थ 'उतना' समझ बैठता है, न तो उसे संस्कृत भाषा आती है और न उसके गुरु को।

जो लोग 'भरत' की सारणा-सम्बन्धित पंक्तियों में 'तद्वत्' का अर्थ 'उतना' समझकर भरत को अस्पष्ट कहते हैं, उन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान पर्याप्त रूप में नहीं था, वे कोई हों किसी युग के हों। ऐसे ही लोगों ने घोषित कर दिया कि भरत और शार्ङ्गदेव की श्रुतियाँ समान हैं।

(२) भगवान् का परम अनुग्रह है कि 'सामवेद' के स्वरों के विषय में कोई भी मतभेद 'उत्तर' या 'दक्षिण' में नहीं है। सामवेदी जिस स्वर को 'प्रथम' कहते थे, वही वागीश्वरी का 'मध्यम' है। वागीश्वरी के अन्य स्वर भी सामवेदियों के हैं। अच्छे तानपूरे पर यदि आप दो तार अब तक चढ़ाकर एक पर षड्ज और दूसरे पर 'मध्यम' मिला लें, तो 'षड्ज' की ध्वनि से उपध्वनि के रूप में अन्तर गान्धार और पंचम, तथा मध्यम की ध्वनि से 'धैवत' और 'षड्ज' सुनाई देंगे। यह एक प्राकृतिक सिद्धान्त है। पूर्वोक्त ध्वनियाँ स्वरज्ञ व्यक्तियों को ही सुनाई देंगी, किसी वकील या डाक्टर को नहीं।

पूर्वोक्त धैवत और उसका सम्वादी ऋषभ वागीश्वरी में आज भी प्रयुक्त होते हैं तथा मध्यम का संवादी निषाद और उसका संवादी 'गान्धार' भी। इन स्वरों की यथास्थान प्राप्ति के लिए आज भी बागेश्वरी गाते समय तानपूरे पर षड्ज और मध्यम स्थापित किए जाते हैं।

इस तथ्य के प्रत्यक्ष होते हुए भी यदि कोई यह कहे कि भरत के षड्ज, मध्यम और पंचम, हमारे षड्ज, मध्यम पंचम से भिन्न थे, अथवा यह कहे कि भरत के ऋषभ-धैवत आज लुप्त हो गए हैं, तो उसे दूर से ही प्रणाम कर लेना चाहिए। तर्क का तो उत्तर होता है 'कुतर्क' अथवा 'हठ' का नहीं।

(३) अहोबल के पंचम और ऋषभ में सम्वाद है, अतः सिद्ध है कि यह ऋषभ, भरत और शार्ङ्गदेव का षड्जग्रामीय ऋषभ नहीं है। अहोबल के मध्यम और धैवत में आठ श्रुतियों का अन्तर होने के कारण सप्तश्रुतिक स्वयम्भू-सम्बन्ध नहीं है। इस प्रत्यक्ष स्थिति के होने हुए भी यदि कोई यह कहे कि भरत और शार्ङ्गदेव के षड्जग्राम का सादृश्य अहोबल के श्रीराग मेल या वर्तमान काफी ठाठ से है, तो यह साहसमात्र है और ऐसा साहस वही कर सकते हैं, जो वागीश्वरी और कल्याण के ऋषभों में अन्तर न देखते हों।

भरत की वीणा में इक्कीस तार होते थे, जिनमें तीनों सप्तकों की सिद्धि होती थी। सारिकाओं अर्थात् पर्दों या 'सारों' वाली वीणाओं का आविष्कार उस युग में, नहीं हुआ था। ऐसी स्थिति में भी यदि कोई सज्जन भरतमुनि ने क्यों तारों की लम्बाई पर स्वर-स्थान निश्चित न किए, तो इस प्रश्न का क्या उत्तर है।

(४) प्रामाणिक इतिहासों से यह बात सिद्ध है कि अमीर खुसरो के पिता सैफुद्दीन लाचीन कबीले के तुर्क थे और खुसरो की माता एक भारतीय महिला थीं, जिनके गर्भ से १२५३ ई० में उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पतियाली ग्राम में अमीर खुसरो का जन्म हुआ था। यह भी प्रमाणित है कि अलाउद्दीन खिलजी बेचारे का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म भारत में ही हुआ था और उसने १२९६ ई० से १३१६ ई० तक राज्य किया। अब यदि १९२२ ई० में हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना के समय अनेक विषयों के अधिकारी विद्वानों के समक्ष कोई संगीतोद्धारक यह कह दे कि अलाउद्दीन बारहवीं शती ई० में अमीर खुसरो को ईरान से साथ लाया था, तो स्वर्गीय पं० मदनमोहन मालवीय क्या वक्ता पर मुग्ध नहीं हो गए होंगे? ऐसी स्थिति में क्या उस समय वहाँ संगीत-विद्यालय की स्थापना हो सकती थी?

(५) शार्ङ्गदेव के समय तक भारत में किसी ऐसी वीणा का वर्णन नहीं मिलता, जिसमें वर्तमान बारह स्वरों के लिए बारह पृथक्-पृथक् 'सारें' (पर्दे) हों, परन्तु अमीर खुसरो की मृत्यु से केवल ग्यारह वर्ष पश्चात् अमीर खुसरो से परिचित हरिहर ने १३३६ ई० में विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना की और उनके गुरु श्रीमान् विद्यारण्य ने वर्तमान बारह ध्वनियों के भारतीय नाम रख कर पन्द्रह मेलों में उपलब्ध पचास रागों का वर्गीकरण किया। ये बारह ध्वनियाँ ईरान और अरब की देन थीं। इन तथ्यों में सभी इतिहास के द्वारा प्रमाणित हैं, फिर भी यदि कोई वर्तमान काफी ठाठ को षड्जग्राम का शुद्ध स्वर-सप्तक मान लेने का दुराग्रह करे, तो आप क्या करेंगे?

(६) यदि बीन के बाज के तार को मन्द्र मध्यम कहा जाए, तो उत्तर भारतीय बिलावल के स्वर यथास्थान प्राप्त होंगे, जिनके गांधार-धैवत में संवाद होगा और यह बिलावल पाश्चात्यों का शुद्ध सप्तक होगा। यदि बाज के युक्त तार की ध्वनि को 'स' कहा जाए, तो यथास्थान दाक्षिणात्यों का शंकराभरण मेल प्राप्त होगा, जिसके ऋषभ-धैवत में संवाद होगा, परन्तु 'ग-ध' में नहीं। अब यदि उत्तर भारतीय संगीत के कोई महापुरुष दाक्षिणात्यों के शंकराभरण में हिन्दुस्तानी बिलावल ढूंढ़े और अपने बीनकार गुरु के बिलावल पर ध्यान न दे, तो दोष किसका है? पर्दे दोनों वीणाओं में सदृश हैं। उत्तर भारतीय बीन में बाज का तार बीन के दाहिनी ओर होता है, जिस पर 'म' मिला होता है, उसके बराबर के तार पर 'स' मिला होता है और उसके बराबर के तार पर अतिमन्द्र पंचम और उसके बराबर के तार पर अतिमन्द्र षड्ज दाक्षिणात्य बीन में इन तीनों तारों की ध्वनि क्रमशः, दाहिनी ओर से मध्य षड्ज, मन्द्र पंचम, मन्द्र षड्ज और अनुमन्द्र 'पंचम' कहलाती है। दक्षिण भारतीय वीणा 'मध्यमेला' और उत्तर भारतीय बीन 'शुद्ध मेला' है। अस्तु 'मध्यमेला' में चतुःश्रुतिक धैवत प्राप्त होता है, जो उत्तर भारतीयों का चतुःश्रुति ऋषभ है और उत्तर भारतीयों को प्राप्त होने वाला त्रिश्रुति धैवत दाक्षिणात्यों का अन्तर गांधार है। जो लोग इस प्रत्यक्ष अन्तर को न समझेंगे, वे बिलावल के धैवत के विषय में युद्ध करेंगे और सामान्य पाठक उलझन में पड़ेंगे।

(७) सूफियों की सुहरवर्दी परम्परा और चिश्ती परम्परा की दृष्टि में ही भक्ति परक संगीत ग्राह्य है। सूफियों की नक्शबन्दिया परम्परा संगीत को सर्वथा त्याज्य समझती है, ग्वालियर के शैख मुहम्मद गौस इसी नक्शबन्दिया परम्परा के व्यक्ति थे और संगीत को सर्वथा त्याज्य समझते थे, ऐसी दशा में भी यदि कोई यह कहे कि शैख साहब ने तानसेन को महान् गायक होने का आशीर्वाद दिया था, तो यह बात ऐसी होगी जैसे कोई वैष्णव महमूद गजनवी को मूर्तिभंजक होने का आशीर्वाद दे, परन्तु विचार कौन करे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मआसिरुल उमरा' नामक इतिहास-ग्रन्थ के अनुसार शैख मुहम्मद गौस का जन्म वर्ष १५०२ ई० है अर्थात् मानसिंह तोमर की मृत्यु (१५१६ ई०) के समय गौस साहब की आयु केवल चौदह वर्ष थी, जब कि तानसेन प्रायः पच्चीस वर्ष के हो चुके थे, अब यदि लोग यह कहे जायें कि शैख साहब के आशीर्वाद से तानसेन का जन्म हुआ था, तो इसका क्या इलाज है।

'अकबरनामा' के अनुसार तानसेन की मृत्यु १५८९ ई० में हुई, उनकी शव-यात्रा के साथ गाना बजाना हुआ, विवाहोत्सव जैसा मनाया गया, उनके शव को आगरा से बाहर ले जाने की चर्चा किसी इतिहासकार ने नहीं की, परन्तु तानसेन की एक तथाकथित कब्र तैयार है। सोचे कौन ?

'रागदर्पणकार फकीरुल्लाह का परिचय तानसेन के संगतिकार भगवान् दास पखावजी से था और लालखाँ तथा उसके चारों पुत्रों से भी। लालखाँ को तानसेन की नहीं विलासखाँ की पुत्री ब्याही थी, विलासखाँ तानसेन के चार पुत्रों में से एक थे। तानसेन की किसी पुत्री की चर्चा उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध के पूर्व नहीं थी। उन्नीसवीं शती ई० के उत्तरार्ध में तानसेन की एक पुत्री की कल्पना की गई और उसके वंशज भी निकाल लिए गए। अब आप क्या कहेंगे।

रागदर्पणकार ने मिसरी खाँ ढारी को देखा था, जो विलासखाँ का केवल शिष्य था। उन्नीसवीं शती ई० में इस मिसरीखाँ को 'मिसरीसिंह' बना कर तानसेन की कल्पित पुत्री का पति घोषित कर दिया गया। मिसरी खाँ तो औरंगजेब के भाई शुजा के आश्रय में था और उसी के साथ बंगाल चला गया था। उसके विषय में दन्तकथाओं का जन्म बंगाल में हुआ और प्रसार अवध में।

(८) मुहम्मदबिन कासिम से लेकर (मुहम्मदशाह रँगीले अठारहवीं शती ई०) तक के युग में न तो किसी सितारवादक की चर्चा है और न भारतीय संगीत में 'सितार' ही चर्चा का विषय बना है। यह होने पर लोगों का प्रबल आग्रह है कि अमीर खुसरो को सितार का आविष्कारक मान लिया जाए।

सितार की प्राचीनतम गतें फीरोजखानी कहलाती हैं, फीरोजखाँ ही इनके रचयिता हैं जिन की मुद्रा 'अदारंग' है। फीरोजखाँ के पिता खुसरोखाँ सितार के आविष्कारक थे, जो नेमत खाँ 'सदारंग' के अनुज थें। इस ऐतिहासिक सत्य से अपरिचित व्यक्ति यदि कल्पनाओं में डूबते उतराते रहें और इसी में आनन्द लें, तो क्या किया जाए।

(९) यद्यपि 'ध्रुव' नामक प्रवन्ध पहले से था और इसमें गाया जाने वाला साहित्य 'ध्रुवपद' कहलाता है, तथापि यह सर्वविदित तथ्य है कि ध्रुवपद में ग्वालियर की भाषा का प्रयोग मानसिंह तोमर (राज्यकाल १४८६ ई० से १५१६ ई०) के दरवार में हुआ और ब्रजभाषा-ध्रुवपद के आदि कवि बैजू थे। इस तथ्य को न जान कर यदि कोई यह कहे कि बैजू हरिदास जी के शिष्य थे, तो क्या कहा जाए ? यदि प्रश्न किया जाए कि हरिदास जी के संगीत-गुरु कौन थे ? तो उत्तर मिलता है कि वे तो अमुक सखी का अवतार थे उन्हें किसी गुरू के पास जाने की क्या आवश्यकता थी। ऐसी दशा में शोधकर्ता क्या करे ? ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीत और रस

गीत का लक्षण

प्रसङ्ग अथवा सन्दर्भ के भेद से एक ही शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। हिन्दी के आधुनिक कवि अपनी उन रचनाओं को 'गीत' कहते हैं, जिन्हें वे अपनी मनचाही 'टेर' में गुनगुनाते या सुनाते हैं, ऐसी रचनाओं को रेडियो की भाषा में भी 'गीत' कह दिया जाता है, परन्तु वे 'गीत' हमारे प्रस्तुत विचार का विषय नहीं हैं।

संगीत-शास्त्र में जिसे 'गीत' कहा गया है, वह 'रञ्जक स्वर-सन्निवेश (स्वर-गुम्फ) है।[1] इसकी भाषा स्वरों की अपनी भाषा है। जिस भाषा पर व्याकरण में विचार किया जाता है, उसका अस्तित्व इस 'गीत' में नहीं है। खटोली पर पड़ा हुआ और रोता हुआ बच्चा 'भाषा' नहीं समझता, परन्तु गीतरूपी अमृत को पीकर प्रसन्न हो जाता है।[2] यह गीत रूपी अमृत 'रञ्जक स्वरयोजनामात्र' है।

वीणा या वेणु में प्रयुक्त 'रञ्जक स्वरसन्निवेश' भी गीत कहलाता है, इसीलिए भगवान् वेदव्यास ने भगवान् कृष्ण के उस वेणु-वादन को 'वेणु-गीत' कहा है, जिसने गोपियों को ही नहीं, पशुओं और पक्षियों तक को मोहित किया।[3]

रसास्वाद

'रञ्जन' गीत का प्रयोजन है और 'रञ्जकता' गीत का प्राण। रञ्जन में बाधक अप्रासंगिक स्वरों का प्रयोग दोष है और विस्वर प्रयोग भी। समस्त स्वरशास्त्र ऐसे ही अनन्त स्वर-सन्दर्भों के निर्माण और विस्तार की ओर दिशा-निर्देश करता है, जो सहृदय श्रोताओं के लिए उस अलौकिक आनन्द की सृष्टि करते हैं, जिसका 'रसन' (आस्वाद, चर्वणा) करके वे सहृदय रसिक अपनी लौकिक चिन्ताओं को सर्वथा भूल कर स्वयं आनन्दमय एवं रसरूप हो जाते हैं। श्रोताओं की वह विशिष्ट मनः स्थिति एवं चेतना ही रसास्वाद की स्थिति है।

---

१. "रञ्जकः स्वर सन्दर्भो गीत मित्यभि धीयते।"—संगीत-रत्नाकर, प्रबन्धाध्याय, श्लोक-१

२. अज्ञात विषया स्वादो बालः पर्य्यङ्किकागतः।
रुदन् गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते॥"—सं० र०, स्वरगताध्याय, श्लोक-२८

३. "गावश्च कृष्णमुख निर्गत वेणुगीत पीयूष मुत्तभित कर्ण पुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तन पयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशा श्रुकलाः स्पृशन्त्यः।
प्रायो वताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणु गीतम्।
आरुह्यये द्रुम भुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः॥
—श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, इक्कीसवाँ अध्याय, श्लोक-१३-१४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन लोगों को सद्गुरुओं से संगीत-शास्त्र और साहित्यशास्त्र, दोनों ही पढ़ने का अवसर मिला है, वे इस तथ्य से परिचित हैं कि किसी 'कथा' या 'भाषा' के अभाव में भी 'गीत' सर्वथा स्वतन्त्र रूप से रस-निष्पत्ति होती आई है, इसीलिए सोलहवीं शती ई० में 'रसकौमुदी' के प्रणेता श्रीकण्ठ तक ने कहा है—"नाट्य, गीत और काव्य, तीनों में शुद्धबुद्धस्वभाव 'रस' (सहृदयों को आस्वाद कराने वाले वैशिष्ट्य) का निवास है।"[४]

पाठ्य गीत और अभिनय ये तीनों ही स्वतन्त्र रूप से भी 'व्यञ्जक' होने के कारण रसानुभव कराने में समर्थ हैं। भगवान् भरत ने इन तीनों स्रोतों को एकत्र करके नाट्य-विद्यारूपी रस-गंगा को अवतरित किया, परन्तु मूल स्रोतों का स्वतन्त्र व्यक्तित्व (संगम-स्थल से ऊपर की ओर) सर्वथा और सदैव स्वतन्त्र है।

नाट्य में रस-परिपाक की प्रक्रिया

नाटक में कथावस्तु होती है, नायक, नायिका इत्यादि अनेक चरित्र होते हैं, कथा का अभिनय होता है, अतः नाट्य में 'रस-परिपाक' की प्रक्रिया बताते हुए भगवान् भरत ने अपना प्रसिद्ध सूत्र कहा—"विभाव, अनुभाव, संचारीभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।"[५] स्मरण रखना चाहिए कि यह सूत्र 'नाट्य' में रस-परिपाक की प्रक्रिया बताता है, मुक्तक काव्य अथवा गीत में स्वतन्त्र रूप से रस-परिपाक की प्रक्रिया का बोधन इस सूत्र का विषय नहीं। नाट्यशास्त्र न तो 'अलंकार-शास्त्र' का स्वतन्त्र ग्रन्थ है, न 'गान्धर्वशास्त्र' कला। 'गान्धर्व-कला' नामक एक स्वतन्त्र शास्त्र की चर्चा भरत मुनि ने स्वयं की है।[६]

गीत में रस-परिपाक

मुक्तक काव्य में जिस प्रकार काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञों द्वारा 'रस-परिपाक' माना गया है, इसी प्रकार गीत-शास्त्रज्ञ रञ्जक स्वर-सन्निवेश में रसानुभव कराने की शक्ति प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर मानते आए हैं।

संगीत-शास्त्र की दृष्टि से रस-परिपाक की प्रक्रिया का सूत्र यों होना चाहिए—

> "स्थायी (अंश, वादी, आधार स्वर, की नोट) स्वर पर आलम्बित, स्थायी स्वर के सम्वादी स्वर के द्वारा उद्दीप्त या सम्वदित, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभावित या अनुवादित तथा संचारी अर्थात् व्यभिचारी स्वरों द्वारा परिपोषित, सहृदयों का वह चैतन्य विशेष 'रस' है, जिसमें उनकी व्यक्तिगत राग-द्वेष-ग्रन्थियाँ विगलित हो जाती हैं।"

---

४. नाट्ये गीते च काव्ये त्रिषु वसति रसः शुद्धबुद्धस्वभावः।

—रस कौमुदी, गायकवाड़-सीरीज, सप्तम अध्याय श्लोक-२।

५. तत्र विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद् रसनिष्पत्तिः।

—नाट्यशास्त्र, छठा अध्याय, द्वितीय संस्करण, पृ० २७२, गायकवाड सीरीज।

६. गान्धर्व कल्पे विहितः सामगैरपि मध्यमः।

—नाट्यशास्त्र, अट्ठाईसवाँ अध्याय, पृ० ४३, गायकवाड़-सीरीज।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर-सन्दर्भ के राजप्रासाद में स्थायी स्वर राजा होता है, उसका सम्वादी मन्त्री होता है, अनुवादी स्वर प्रतिक्षण अनुवर्तन करने वाले अनुचर होते हैं और संचारी स्वर घूम फिर कर अर्थात् संचरण करके कार्य सिद्ध करने वाले सेवक होते हैं।

स्वर सन्निवेश का यह जगत् अपने समान स्वयं ही होता है।

अपने सीधे-सादे अर्थ का बोध कराने वाले भाषा प्रयोज्य शब्द 'वाचक' कहलाते हैं, वही शब्द जब लक्ष्यार्थ का बोध लक्षणाशक्ति के बल पर कराने लगते हैं, तब लाक्षणिक कहलाते हैं और वाचक शब्द जब लक्षण के माध्यम से अथवा सीधे ही व्यंग्यार्थ का बोध कराने लगते हैं, तब व्यंजना शक्ति से सम्पन्न होने के कारण व्यंजक कहलाने लगते हैं। अर्थात् लाक्षणिक और व्यंजक शब्द भी मूल रूप में वाचक होते हैं। 'रस' भी व्यंग्यार्थ ही है, उसकी प्रतीति होती है, वह कथन या श्रवण का विषय नहीं।

सांगीतिक स्वरों की स्थिति भाषा प्रयोज्य शब्दों की अपेक्षा सर्वथा विलक्षण होती है। सांगीतिक स्वरों में 'अवगमन' (अभिनय जताने) की शक्ति होती है[7]। भाषा की दृष्टि से गूंगे होने पर भी वे अपने तात्पर्यार्थ या व्यंग्यार्थ का बोध करा देते हैं। ●

७. (क) अवाचकस्यापि गीत शब्दादेः रसादिलक्षणार्थावगमात्।

—ध्वन्यालोक, कारिका-३३, वृत्ति, पृ०-३४६, गौतम बुक डिपो, १९५२।

(ख) अवगमन शक्तिर्ह्यभिनयनं वाचकत्वादन्या।

—नाट्यशास्त्र, अभिनव भारती, छठा अध्याय, पृ०-२७३, गायकवाड़-सीरीज द्वितीय संस्करण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीत (रञ्जक स्वर-सन्दर्भ) और रस

नाट्य-शास्त्र में कहा गया है—"हास्य और श्रृंगार में मध्यम और पंचम को 'स्वर करना' चाहिए, वीर, रौद्र एवं अद्भुत में षड्ज और ऋषभ को 'स्वर करना' चाहिए, करुण रस में गान्धार ओर निषाद को 'स्वर करना' चाहिए, बीभत्स और भयानक रस में धैवत को 'स्वर करना' चाहिए।[1]

'स्वर करना' का अर्थ 'आधार स्वर मानना' है। अर्थात् हास्य और श्रृंगार में मध्यम और पंचम से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का, वीर, रौद्र और अद्भुत में षड्ज एवं ऋषभ से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का, करुण रस में गान्धार और निषाद से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का तथा बीभत्स और भयानक रस में धैवत की मूर्च्छना का प्रयोग करना चाहिए।

इस व्यवस्था को समझने के लिए भरत-प्रतिपादित स्वरों के रूप, क्षेत्र एवं लक्षण का ज्ञान होना चाहिए, जब तक यह न होगा, तब तक रसों के साथ उनका सम्बन्ध समझ में आना असम्भव है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीनों के अनुसार मूर्च्छना का आरम्भक स्वर ही 'वादी, अंश, स्थायी या स्वर' होता है, आज की भाषा में वह 'की नोट' होता है, और उसका मूल नाम अक्षुण्ण रहता है।

स्वर लक्षण

'षड्ज' का अर्थ अन्य छः स्वरों को जन्म देने वाला एवं अन्य छः स्वरों से जन्म लेने वाला है।[2] ग्राम की स्थापना के समय वह प्रथम मूर्च्छना का आरम्भक स्वर होने के कारण अन्य स्वरों के लिए आधार स्वर, अंश स्वर, स्थायी स्वर या ज़नक है। अन्य मूर्च्छनाओं में षड्ज उन मूर्च्छनाओं के आधार स्वर, अंश स्वर या स्थायी स्वर से जन्म लेता है।

षड्ज स्वयं चतुः श्रुतिक होता है, सप्तक में दो स्वर उसके संवादी होते हैं,

---

१. हास्य शृङ्गारयोः कार्यौ स्वरौ मध्यम पञ्चमौ।
षड्जर्षभौ तथा चैव वीर रौद्राद्भुते स्वथ।
गान्धारश्च निषादश्च कर्तव्यौ करुणे रसे।
धैवतश्चैव कर्तव्यौ बीभत्से समयानके॥

—नाट्शास्त्र, अध्याय १७, श्लोक-१०३-१०४, गायकवाड़-सीरीज़।

२. षण्णां स्वराणां जनकः षड्भिर्वा जन्यते स्वरैः।

—मतङ्ग, कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उससे पूर्ववर्ती स्वर निषाद द्विश्रुतिक होता है और परवर्ती ऋषभ त्रिश्रुतिक। षड्जग्रामीय षड्ज की यह स्थिति सर्वथा उसकी निजी है, इसीलिए वह षड्ज-ग्राम का ग्रामणी या प्रधान स्वर है। विभिन्न मूर्च्छनाओं में षड्ज की यह स्थिति अक्षुण्ण रहती है। किसी भी अन्य स्वर में षड्ज के ये लक्षण षड्ज-ग्राम में घटित नहीं होते।

इसीलिए तंबूरे के जोड़े से गूंजने वाली ध्वनि को तभी 'स' कहेगा जब कि उसमें 'षड्ज' की ये सभी विशेषताएँ घटित हों।

ग्रामणी स्वर से अगला या उसका पड़ोसी होने के कारण यह 'वृषभ' के समान इतना बलवान् है कि अन्य स्वर इसकी अपेक्षा 'गौ' प्रतीत होते हैं, ग्रामणी स्वर के पश्चात् अगला स्वर होने के कारण हृदय में शीघ्र प्रविष्ट हो जाता है[3]। यद्यपि धैवत भी त्रिश्रुतिक है, परन्तु उसको ग्रामणी स्वर का वह निर्विघ्न पड़ोस प्राप्त नहीं है, जो ऋषभ को है। अस्तु, मूर्च्छना-वादी व्यक्ति तँबूरे के जोड़े से उठने वाली ध्वनि को तब ऋषभ ही कहेगा, जब उसमें ऋषभ की विशेषताएं मिलती हों। ये विशेषताएँ तंबूरे के जोड़े की ध्वनि को ऋषभ मानकर ऋषभ से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का उच्चारण करने पर होंगी।

आधार स्वर होने पर ऋषभ स्वर उत्साह, विस्मय अथवा क्रोध को व्यक्त करता है, अतः 'कोमल ऋषभ' जैसे नाम मूर्च्छनावादी की दृष्टि में हास्यास्पद हैं। वास्तव में आधुनिक भैरवी के 'रे-ध मूर्च्छनावादी की दृष्टि में मध्यम ग्रामीय ऋषभादि मूर्च्छना के गान्धार और निषाद हैं। जैसे—

मध्यमग्रामीय मूर्च्छना	रे	ग	म	प्	ध	नि	स	रे
श्रुत्यन्तर पारस्परिक	०	२	४	३	४	२	४	३
आरम्भक स्वर से श्रुत्यन्तर	०	२	६	९	१३	१५	१९	२२
भैरवी ठाठ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स

षड्ज-ग्राम में गान्धार स्वर के पश्चात् क्रमशः दो चतुःश्रुतिक स्वर मध्यम और पंचम हैं ऐसी स्थिति अन्य किसी स्वर की नहीं है। इस स्वर से करुणा फूटी सी पड़ती है, अतः यह गानात्मक वाणी का धारण जैसा करता है। यदि आधार स्वर में ये विशेषताएँ हों, तो मूर्च्छनावादी उसे 'गान्धार' ही कहेगा।

मध्यम स्वर सप्तक के आदिम स्वर षड्ज से नौ श्रुति पश्चात और सप्तक के अन्तिम स्वर निषाद से नौ श्रुति पूर्व होने के कारण सप्तक के ठीक बीचोबीच में तो है ही[3] अपने पूर्ववर्ती स्वर गान्धार से चार श्रुति पश्चात् और परवर्ती स्वर से चार

३. प्राप्नोति हृदयं शीघ्रमत्यस्माद् ऋषभः स्मृतः।
स्त्रीगवीषु यथा तिष्ठन् विभाति ऋषभो महान्।
स्वरग्रामे समुत्पन्नः स्वरोऽयमृषभस्तथा॥
—मतङ्ग, कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुति पूर्व होने के कारण गान्धार और पंचम के भी बीच में है। यह विषेशता अन्य किसी स्वर में नहीं, अतः मूर्च्छनावादी जब आधार स्वर में ये विशेषताएँ देखेगा, तब उसे 'मध्यम' ही कहेगा।

पंचम स्वयं चतुःश्रुतिक है उससे अग्रिम स्वर धैवत त्रिश्रुतिक है, उसका संवादी केवल षड्ज है। ये विशेषताएँ केवल पंचम में है, अतः मूर्च्छनावादी आधार स्वर में ये विशेषताएँ देखने पर उसे पंचम ही कहेगा। मध्यमग्रामीय पंचम त्रिश्रुतिक है उसका संवादी केवल ऋषभ है, मध्यमग्रामीय पंचम से अगला स्वर धैवत त्रिश्रुतिक है, ये समस्त विशेषताएँ केवल मध्यमग्रामीय पंचम में है। पंचम स्वरान्तरालों को नापने का साधन भी है।[५]

दोनों ग्रामों की पंचमादि मूर्च्छनाओं पर दृष्टिपात उचित होगा—

षड्जग्रामीय पंचमादि मूर्च्छना	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प
श्रुत्यन्तराल	०	३	५	९	१२	१४	१८	२२
मध्यमग्रामीय पंचमादि मूर्च्छना	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प
श्रुत्यन्तराल	०	४	६	१०	१३	१५	१९	२२

षड्जग्रामीय मूर्च्छना के 'ध, नि, स, रे, ग, म', की अपेक्षा पंचमादि मूर्च्छना के "ध, नि, स, रे, ग, म," एक एक प्रमाणश्रुति चढ़े हुए हैं।

मेल-सिद्धान्त की दृष्टि से षड्जग्रामीय पंचमादि मूर्च्छना के स्वरों की संज्ञाएँ

स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
०	३	५	९	१२	१४	१८	२२

होंगी और मध्यमग्रामीय पंचमादि मूर्च्छना के स्वरों की संज्ञाएँ—

स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
०	४	६	१०	१३	१५	१९	२२

होंगी, परन्तु मेलवादी इन सूक्ष्मताओं की ओर ध्यान नहीं देते।

मूर्च्छनावादी व्यक्ति यदि दरबारी गायेगा, तो वह इसे षड्ज-ग्रामीय पंचमादि मूर्च्छना का राग कहेगा। तंबूरे की बायीं ओर की तंत्री को जोड़े के मध्यम में मिलाएगा, क्योंकि इस मूर्च्छना के पहले और चौथे स्वर में नवश्रुति-संवाद है,

४. स्वराणां मध्यमत्वाच्च मध्यमस्वर इष्यते।

मतङ्ग कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत।

५. स्वरान्तराणां विस्तारं मिमीते स पञ्चमः।

मतङ्ग, कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले और पाँचवें स्वर में बारह श्रुतियों का अन्तर होने के कारण संवाद नहीं।

दरबारी के गान्धार और निषाद मूर्च्छना की दृष्टि से क्रमशः निषाद और गान्धार होंगे।

मूर्च्छनावादी व्यक्ति यदि जौनपुरी गाएगा, तो इसे मध्यमग्रामीय पंचमादि मूर्च्छना का राग कहेगा। इस मूर्च्छना के पहले और पाँचवें स्वर में तेरह श्रुतियों का अन्तर होने के कारण परस्पर संवाद है, परन्तु पहले और चौथे स्वर में दस श्रुतियों का अन्तर होने के कारण संवाद नहीं है, अतः मूर्च्छनावादी व्यक्ति जौनपुरी गाते समय तंबूरे के बाएँ तार पर पंचम स्थापित करेगा, जो मध्यमग्राम की पंचमादि मूर्च्छना की दृष्टि से 'ऋषभ' है।

अस्तु ये विशेषताएँ केवल पंचम में विद्यमान हैं, जो अन्य किसी स्वर में नहीं हैं।

धैवत स्वर मध्यम की ध्वनि से उपध्वनि के रूप में स्वतः उठता है और उस रूप में 'धीवानों' (स्वरज्ञों) को ही सुनाई देता है। यदि मध्यमग्रामीय धैवत को दो श्रुति उतार कर 'गान्धार' कह दिया जाए, तो मध्यमग्रामीय शुद्ध मूर्च्छनाएँ षड्ज-ग्रामीय शुद्ध मूर्च्छनाओं में बदल जाती हैं।[६] ये विशेषताएँ केवल धैवत स्वर में हैं।

धैवतादि मूर्च्छना किसी मेल के अन्तर्गत नहीं आती। विचार कीजिए—

धैवतादि मूर्च्छना	ध	नि̲	स	रे	ग̲	म	प	ध
श्रुत्यन्तराल	०	२	६	९	११	१५	१९	२०
आधुनिक स्वर संज्ञाएँ	स	रे̲	ग̲	म	म	ध̲	नि̲	स

इस मूर्च्छना का प्रयोग बीभत्स और भयानक रस में विहित है, परन्तु मेल-वादियों की दृष्टि से यह कोई मेल ही नहीं है, क्योंकि उन्हें इसमें पंचम का अभाव और मध्यम के दो रूप दिखाई देंगे। यह मूर्च्छना व्यंकटमखी के बहत्तर मेलकर्त्ता सिद्धान्त को व्यर्थ बना देती है। रत्नाकरोक्त 'शुद्ध भैरव' इसी मूर्च्छना का राग है।

सप्तक का अन्तिम स्वर होने के कारण[७] और मध्यम से नौश्रुति के अन्तर पर स्थित होने के कारण जो स्थिति निषाद की है वह अन्य किसी स्वर की नहीं है, वह 'ग्रामणी' षड्ज का पूर्ववर्ती है। अतः मूर्च्छनावादी व्यक्ति आधार स्वर में निषाद की विशेषताएँ देखने पर उसे निषाद ही कहेगा।

इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति जहाँ हमारा परिचय ध्वनि के सूक्ष्म अन्तरालों से कराती है, वहाँ स्वरों के एक विशिष्ट व्यक्तित्व से भी हमारा साक्षात्कार कराती है।

मेल-पद्धति का जन्म तो वैणिकों की सुविधा को देखते हुए एक-एक 'स्थान'

---

६. "तद्वन्मध्यमग्रामे धैवतमार्दवाद् द्वैविध्यमं तुल्यश्रुत्यन्तरत्वाच्च संज्ञान्यत्वम्।

नाट्यशास्त्र, ८ वाँ अध्याय, पृष्ठ २६, गायकवाड-सीरीज।

७. निषादत्ति स्वरा यत्र निषादस्तेन कथ्यते।

मतङ्ग-कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(मन्द्र, मध्य, तार) में बारह-बारह अचल सारिकाएँ स्थापित करने के लिए हुआ था, उनका लक्ष्य न तो सूक्ष्मतम अन्तरालों की प्राप्ति था और न राग और रस के पारस्परिक सम्बन्ध की खोज।

रञ्जक स्वर-सन्दर्भ

'गेय' शब्द का पारिभाषिक अर्थ रागजननी 'जातियाँ' और 'राग' हैं। 'गेय' को शार्ङ्गदेव ने 'लोकरंजन' और 'भवभंजन' कहा है।[८] 'राग' के आनन्द में मग्न सहृदय श्रोताओं को सुध-बुध नहीं रहती, वे कुछ समय के लिए अपनी समस्त सांसारिक चिन्ताओं को भूलकर अखण्ड आनन्द में सर्वांगमग्न हो जाते हैं। राग उनके तन-मन को अपने रंग में रंग लेता है, राग को इसीलिए 'राग' कहा जाता है। अतः 'राग' के लिए रंजकता अनिवार्य है। यह 'रंजन' ही 'रस' है, जिसका आस्वाद किया जाता है।

इस रंजक स्वर-सन्दर्भ को गीत भी कहा गया है। आचार्य शार्ङ्गदेव ने कहा है—

"रञ्जकः स्वरसन्दर्भो 'गीतमित्यभिधीयते ।"[९]

भगवान् वेदव्यास ने लीलापुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के वेणुवादन को 'वेणुगीत' कहा है। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् कृष्ण के वेणुगीत से गोपियाँ ही नहीं, गौएँ, बछड़े, हरिण, हरिणियाँ एवं पक्षी तक स्तब्ध रह गए थे।[१०]

आचार्य आनन्दवर्द्धन ने कहा है—"अवाचक (अभिधाशक्ति रहित) गीत-ध्वनियों से भी रसादिलक्षण अर्थ का अवगमन (बोध) होता है...गीतध्वनियाँ भी रसादिविषयक व्यंजना करती हैं...।"[११]

अतः यह सिद्ध है कि वीणा एवं वेणु से उद्भूत राग सहृदय मानवों को ही

---

८. तस्मादाहतनादस्य श्रुत्यादि द्वारतोऽखिलम् ।
गेयं वितन्वतो लोकरञ्जन भवभञ्जनम् ।
उत्पत्तिमभिधास्या मस्तथा श्रुत्यादि हेतुताम् ।
संगीतरत्नाकर, पिण्डोत्पत्ति प्रकरण का उपसंहार।

९. रज्यते येन सच्चित्तं स रागः सम्मतः सताम् ।
मतङ्ग, कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत।

१०. गावश्च कृष्णमुखनिर्गत वेणुगीत पीयूष मुत्तभित कर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाःस्नुतस्तनपयः कवलाः स्मतस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥
प्रायो बताम्बु विहगा मुनयो बनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदित कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुम भुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥

११. तथा हि गीतशब्देभ्योऽपि रसभिव्यक्तिः।...तथा हि गीतध्वनीनामपि व्यञ्जकत्वमस्तीति रसादि विषयम्।...न हि वैवाभिधानशक्तिः, सैवावगमन शक्तिः, अवाचकस्यापि गीत शब्दादेः रसादि लक्षणार्थावगयात्।...व्यञ्जकत्वं वाचक शब्दानामवाचकानां च गीत-ध्वनीनामशब्दरूपाणां च चेष्टादीनां यत्सर्वेषाभनुभवसिद्धमेव।
ध्वन्यालोक, कारिका ३३ की वृत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, पशु-पक्षियों को भी आनन्द में सर्वांग-मग्न कर देता है। यदि वादक के हृदय से राग-गंगा उमड़ रही है और वह व्यर्थ की पेचीदगियों में न पड़कर अपनी कला में स्वयं तन्मय हो गया है, तो वह अन्य पात्रों अर्थात सहृदयों को आनन्द-सागर में अवश्य निमग्न कर लेगा।

स्वरों के साथ भाव और रस के सम्बन्ध को निम्न सारणी में पुनः एक बार देख लेना उचित होगा—

स्वर	भाव	रस
षड्ज	उत्साह	वीर
	विस्मय	अद्भुत
	क्रोध	रौद्र
ऋषभ	उत्साह	वीर
	विस्मय	अद्भुत
	क्रोध	रौद्र
गांधार	शोक	करुण
मध्यम	रति	शृंगार
	हास	हास्य
पंचम	हास	हास्य
	रति	शृंगार
धैवत	भय	भयानक
	जुगुप्सा	बीभत्स
निषाद	शोक	करुण

यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई स्वर 'अंश' होने पर आश्रित स्वर-समूह की सहायता से रस का व्यंजक होता है, पर 'अंश' न होने की अवस्था में वह केवल 'भाव' का बोधक होता है, जिस 'रस' की अभिव्यक्ति करना हो, उसके विरोधी भाव को व्यक्त करने वाले स्वरों का लोप अथवा अत्यन्त अल्प प्रयोग प्रयोज्य मूर्च्छना के राग में होगा, और अनुरोधी या पोषक स्वरों का प्रयोग, स्थायी और उसके संवादी स्वर के अनुवादी स्वरों के रूप में भलीभाँति होगा।

वास्तव में 'रस' तो एक 'चेतना' या 'संवित्' की अनुभूति है, जो काव्य, नाट्य अथवा 'गीत' से स्वन्तत्र रूप में प्राप्त हो सकती है। इसीलिए श्रीकण्ठ ने कहा है—"शुद्धबुद्धस्वभाव रस, काव्य, नाट्य और गीत तीनों में निवास करता है।"[१२] आचार्य अभिनवगुप्त का कथन है—विभाव, अनुभाव, संचारीभाव रस-निष्पत्ति के हेतु नहीं है, उनके बोध के बिना भी रस की अभिव्यक्ति होती है।"[१३]

---

१२. नाट्ये, गीते च काव्ये त्रिसु वसति रसः शुद्ध बुद्धस्वभावः।

रस कौमुदी, गायकवाड़ सरोज सप्तम अध्याय, श्लोक २

१३. विभावादयो न निष्पत्ति हेतवो रसस्य, तद्बोधापगमेऽपि रस सम्भव प्रसङ्गात्॥

अभिनव भारती, नाट्यशास्त्र अध्याय ६, पृ० २८५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्य शार्ङ्गदेव ने भी गीत, वाद्य, नृत्य को रस-प्रधान कहा है।[१४]

भरत-मुनि ने नाट्य रसों का वर्णन किया है।[१५] उनका प्रतिपाद्य विषय 'नाट्य' है, प्रधानतया 'गीत' या 'काव्य' नहीं। वैसे तो भरत मुनि ने भी गीत को प्रयोग का प्राण कहा है।[१६]

गीत में रस-परिपाक की प्रक्रिया

वास्तव में वीणावादक या वेणुवादक वादन के द्वारा अपने हृदय में सनातन रूप से स्थित 'स्थायीभाव' की अभिव्यक्ति करता है। स्थायी स्वर उस स्थायीभाव को उभारता है, स्थायी स्वर का संवादी स्वर पूर्णतया स्थायी स्वर के कार्य में सहायता करता है, अनुवादी स्वर पूर्वोक्त स्वरों के आगे पीछे प्रयुक्त होकर इस स्थिति का पोषण करते हैं और संचारी स्वर रागवाचक स्वर गुच्छों में सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

हम यों कह सकते हैं कि स्थायी स्वर पर आलम्बित, संवादी स्वर द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुवादित या अनुभावित एवं संचारी स्वरों द्वारा परिपुष्ट, स्थायीभाव की वह अखण्ड अनुभूति 'रस' है, जो सहृदय श्रोताओं को सर्वांगमग्न एवं एकाकार कर देती है। उस समय सहृदय श्रोता अपनी लौकिक चिन्ताओं और सम्बन्धों को सर्वथा भूल जाते हैं।

संस्कृत में यों कहा जा सकता है—

"स्थापिसंवाद्यनुवादि संचारिस्वर संयोगात् रस निष्पत्तिः ॥"

रस की दृष्टि से लय प्रयोग का भी महत्त्व है और 'काकु' (दीनता, करुणा, भय) इत्यादि को व्यक्त करने वाले की आवाज के लगाव का भी। करुण रस में विलम्बित, हास्य और शृंगार में मध्य एवं वीर, रौद्र, बीभत्स और भयानक रस में द्रुतलय का प्रयोग उचित है।[१७]

रस-परिपाक के लिए उपयुक्त, राग, लय एवं काकु का प्रयोग आवश्यक है। लय की उखाड़-पछाड़ में रस-परिपाक की बात करना व्यर्थ है।

भरत-बोधित स्वरावलि में रामपुर-परम्परा के दस ठाठ

"जिसमें श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि नियम पूर्णतया चरितार्थ नहीं होते, वे देशी राग होते हैं।" भरत बोधित स्वरावलि यों है—

---

१४. रस प्रधान मिच्छन्ति तौर्य्यत्रिकमिदं विदः।
संगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक १३५१

१५. तस्मान्नाट्यरसा इति व्याख्याताः !
नाट्य शास्त्र, छठा अध्याय, द्वि० सं०, गायकवाड़ सीरीज, पृ० २८९

१६. 'गीतं प्राणा प्रयोगस्य।' अभिनव भारती, अध्याय १, पृ० १५

१७. एषां च द्रुतमध्यविलम्बितास्त्रयो लया रसेषूपपाद्याः। तत्र हास्य शृंगायोर्मध्यलयः, करुणे विलम्बितो वीररौद्राद्भुत बीभत्सभयानकेषु द्रुत इति।
नाट्यशास्त्र, अध्याय १७, पृ० ३९९, गायकवाड सीरीज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्ज-ग्राम स रे ग॒ ग म × प ध नि॒ नि

मध्यम-ग्राम म प् × ध नि॒ नि स रे ग॒ ग

भरत के अन्तर गांधार और काकली निषाद के लिए हमने क्रमशः 'ग-नि' लिखे हैं। षड्ज-ग्रामीय 'ग॒' का उपयोग मध्यमग्राम में नहीं, और मध्यम-ग्रामीय 'नि' षड्ज-ग्राम में अनुपयोगी है। यदि हम मध्यम-ग्रामीय 'नि' को 'म' कह दें। तो हमें दस स्वर 'स, रे, ग॒, ग, म, म॑, प, ध नि॒, नि,' मिल जाएँगे। सितार में बाज के तार पर मध्य स्थान के अन्तर्गत यही दस स्वर हैं। इन दस स्वरों में ही हमें, दसों ठाठ मिल जाएँगे। प्रक्रिया यों है।

अस्तु, भरत-बोधित दस स्वरों में हमें दस ठाठ यों मिल जाएँगे—

नि॒ स रे ग म प ध नि॒

स रे ग म॑ प ध नि सं — कल्याण

नि॒ स रे ग॒ म प ध नि॒

स रे ग म प ध नि सं — बिलावल

नि॒ नि रे ग॒ म म॑ ध नि॒

स रे॒ ग म प ध॒ नि सं — भैरव

नि॒ नि रे ग म म॑ ध नि

स रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सं — पूर्वी

नि॒ नि रे ग॒ म प ध नि॒

स रे॒ ग म॑ प ध नि सं — मारवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग ग मं ध नि नि रे गं

स रे ग मं प ध नि सं तोड़ी

स रे ग म प ध नि सं काफ़ी

प ध नि स रे ग म प

स रे ग म प ध नि स आसावरी

स रे ग म प ध नि सं खमाज

रे ग म प ध नि स रे

स रे ग म प ध नि सं भैरवी

पाठक देखेंगे कि 'रे' के स्थान पर भरत के 'नि', ग या 'ग' प्रयुक्त हुए हैं और 'ध' के स्थान पर 'मं, नि, ग,' अथवा 'नि'। ये सभी स्वर भरत के गांधार-निषाद या उनके विकार हैं, जिन्हें भरत ने 'शोक' या करुणा का व्यंजक बताया है। अत: मूर्च्छना-पद्धति के विद्यार्थी के लिए ऋषभ-धैवत का कोमल रूप मानना आवश्यक है।

भरत-पद्धति में 'नि-नि' या 'ग-ग' का प्रयोग एक मूर्च्छना में नहीं होता, परन्तु देशी संगीत में है।

जो सज्जन राग एवं रस अथवा भाव एवं स्वर के सम्बन्ध पर विचार करना चाहते हैं, सम्भव है उनके लिए यह संक्षिप्त विवेचन उपयोगी हो।*

---

* भगवत्कृपा से हम राजकीय सेवा के कार्यभार से मुक्त हो गये हैं और संगीत की सेवा के लिए अपने जीवन का प्रतिक्षण देने के लिए स्वन्तत्र हैं। देश-विदेश में भ्रमण करके भारतीय संगीत सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार करना हमारा लक्ष्य है। लेखन, संगीत साधना तथा संगीत-सम्बन्धी यात्राएँ अब हमारा व्यसन है।

२२ मई से ११ जून तक हम कुछ सदस्यों के निमंत्रण पर कलकत्ते में रहे थे। वहाँ एक सभा में 'राग एवं रस' विषय पर हमसे कुछ प्रश्नोत्तर हुए थे, जिनका सार प्रस्तुत पंक्तियों में लिपिबद्ध है। ●

—बृहस्पति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या हिन्दुस्तानी संगीत भारत में ही विदेशी है ?

(भारतीय संगीत के विषय में विश्व के समक्ष एक चिन्तनीय वक्तव्य)

अमेरिका की 'स्टोरियो' नामक एक विश्वविश्रुत संस्था ने 'दी एन्थालोजी आफ इंडियन म्यूजिक' शीर्षक से कुछ रिकार्ड संसार के समक्ष रखे हैं। इस संग्रह के प्रथम खंड के साथ एक परिचयात्मक पुस्तिका भी है, जिसका भूमिका-भाग हमारे परम मित्र डा० मेनन द्वारा लिखा गया है।

डा० मेनन को संगीत-शास्त्री होने के कारण 'पद्मभूषण' उपाधि से अलंकृत किया गया है, अतः पूर्वोक्त भूमिका एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य है, जिससे विश्व का जनमत प्रभावित हो सकता है।

इस संग्रह को प्रकाशित और प्रसारित करने का पुण्य-कार्य जिस संस्था ने किया है, उसके प्रयोजन की पवित्रता सन्दिग्ध नहीं हो सकती, अतः उक्त संस्था भारतीयों की ओर से कृतज्ञता की पात्र है।

हमारे परम सुदृढ़ रविशंकरजी इस यज्ञ के प्रधान पुरोहित हैं। उन्हें 'संगीत-शास्त्री' अथवा इतिहासवेत्ता होने का दावा कभी नहीं रहा, इसीलिए उन्होंने इस संग्रह की भूमिका लिखने का कार्य अपने संगीत-शास्त्री मित्र डा० नारायण मेनन को देकर अत्यन्त उचित कार्य किया है।

डा० मेनन ने इस भूमिका में अनेक ऐसी बातें कही हैं, जिन पर पुनर्विचार उचित है। ऐसी बातों में कुछ तो सैद्धान्तिक है और कुछ ऐतिहासिक। प्रस्तुत पंक्तियों में केवल ऐतिहासिक विषय को विचार का आधार बनाया जा रहा है।

डा० मेनन का कथन है—

"फारसी कवि, संगीतकार और स्वर-रचनाकार अमीर खुसरो, जिसने भारत आकर (१२वीं शताब्दी !) अलाउद्दीन खिलजी का दरबार सुशोभित किया, को अनेक ऐसे शैलीगत आविष्कारों का श्रेय प्राप्त है, जिन्होंने न केवल समकालीन प्रयोग पर ही स्थायी प्रभाव छोड़ा, वरन् जो असन्दिग्ध सरणियों और संगीत-रूपों में पुष्पित-पल्लवित हुए। उन्होंने भारत को फारसी 'मुक़ाम' से परिचित कराया, सिद्धान्त और प्रयोग की आद्यन्त कल्पना की।...यह सब उत्तर तक ही सीमित रहा। दक्षिण नवीन प्रभावों और व्यक्तियों से अछूता ही रहा और उसने अपने ही प्रकार से पारम्परिक कला का विकास किया।"

इस वक्तव्य में खुसरो को विदेशी कहा गया है। उन्हें ही भारतीय संगीत में मुकाम-सिद्धान्त का प्रवर्तक बताया गया है और यह भी कहा गया है कि कर्नाटक-संगीत तो मुस्लिम-प्रभाव से अछूता है और हिन्दुस्तानी संगीत का सिद्धान्त और प्रयोग खुसरो की देन है। अर्थात् हिन्दुस्तानी संगीत तो भारत में ही विदेशी है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्नाटक-संगीत ही भारत का मूल संगीत है।

जब इस प्रकार के वक्तव्य दिए जाते हैं, तब अमेरिकावासी भोले-भाले जिज्ञासु दक्षिण-भारत की ओर तथाकथित मूल भारतीय संगीत की खोज में लपकते हैं। अमेरिका के विश्वविद्यालय कर्नाटक-संगीत पर ही विशिष्ट दृष्टिपात करते हैं।

भूलते हुए व्यक्ति को सहानुभूतिपूर्वक ठीक मार्ग पर लगा देना मित्रों और सज्जनों का कार्य है। इसी मित्र-धर्म से प्रेरित होकर डा० मेनन के पूर्वोक्त वक्तव्य के विषय में कुछ लिखा जा रहा है।

अमीर खुसरो की माँ भारतीय थीं। उनके पिता अमीर सैफुद्दीन महमूद लाचीनी तुर्क थे। उत्तर-प्रदेश के एटा जिले के पटियाली नामक गाँव में अमीर खुसरो का जन्म १२५४ ई० में हुआ। उनका वास्तविक नाम अबुलहसन था।

हिन्दू माँ की सन्तान होने के कारण अमीर खुसरो में भारतीयता कूट-कूटकर भरी थी। भारतीय ब्राह्मणों को उन्होंने 'अरस्तू' के समान कहा है, भारतीय संगीत को अरब के संगीत की अपेक्षा उत्कृष्ट बताया है और भारत में दस ऐसी विशेषताएँ बताई हैं, जो अन्य देशों में नहीं हैं। यह सत्य है कि अमीर खुसरो फारसी भाषा के श्रेष्ठ कवि थे, परन्तु उन्होंने ब्रज-भाषा में भी कम नहीं लिखा।

अमीर खुसरो के जन्म से कहीं पूर्व मुलतान निवासी सन्त शेख बहाउद्दीन जकरिया मुकाम-सिद्धान्त के अनुसार 'मुलतानी' जैसे रागों का निर्माण कर चुके थे। शेख बहाउद्दीन जकरिया का जन्म ११८२ ई० में तथा स्वर्गवास १२६७ ई० में हुआ था और उनके पूर्वज ७वीं शती ई० में मुहम्मद बिन कासिम की सेनाओं के साथ भारत आए थे।

अमीर खुसरो के पीर निजामुद्दीन चिश्ती के गुरु बाबा फरीदुद्दीन गंजशकर थे। बाबा फरीद के दोनों दौहित्र ख्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम और सैयद मुहम्मद मूसा महान् संगीत-मर्मज्ञ और गायक तो थे ही, उन कलाकारों के महान् संरक्षक और आश्रयदाता भी थे, जो उस युग में हिन्दी और फारसी कृतियाँ गाते थे। चिश्तिया परम्परा के प्रसिद्ध महापुरुष ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी ने हिन्दी-कृतियाँ गाने वाले गायकों को आश्रय दिया था।

अमीर खुसरो ने दिल्ली की ग्यारह बादशाहतें देखी थीं। खुसरो की मृत्यु १३२४ ई० में हुई, जबकि गयासुद्दीन तुगलक का राज्यकाल था।

यद्यपि खुसरो तन-मन से भारतीय थे, तथापि उन्हें ईरानी संगीत का भरपूर ज्ञान था। 'ब्रज' उनकी मातृभूमि थी, बंगाल और अवध में भी वह रहे थे और दक्षिण की यात्रा भी उन्होंने की थी। उन्हें भारतीय संगीत का व्यावहारिक ज्ञान तो था, परन्तु मुसलमान होने के कारण उन्हें वेदाश्रित संगीत सिद्धान्तों का ज्ञान न कराया गया था। सोमेश्वर जैसे विद्वानों ने वेद के समान पवित्र ग्राम-रागों का प्रयोग मनोरंजन के लिए निषिद्ध कर दिया था, अन्यथा उन रागों में विधर्मियों द्वारा विकार हो सकता था।

भारतीय स्वरकारों ने 'मुकाम-पद्धति' क्यों स्वीकार की ?

ऐसी स्थिति में खुसरो ने ईरानी स्वर-शास्त्र के आधार पर भारतीय रागों का वर्गीकरण ईरानी मुकाम-पद्धति से किया। इस पद्धति को भारतीय कलाकारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने चुपचाप स्वीकार कर लिया, क्योंकि भारतीय वर्गीकरण पद्धति को 'गुप्त' रखना ही वह पाप से बचने का उपाय समझते थे। इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप अमीर खुसरो से हार मानकर गोपाल नायक ने झगड़ा जीत लिया था।

अमीर खुसरो के पीर शैख निजामुद्दीन चिश्ती ने चार सौ सूफी प्रचारक दक्षिण भेजे थे।

गोपाल नायक चतुर्दंडी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। आलाप, ठाय, गीत और प्रबन्ध को मिलाकर 'चतुर्दंडी' कहा गया। यह सम्प्रदाय खुसरो के सम्पर्क से उद्भूत हुआ था। इस समय से पूर्व 'चतुर्दंडी' शब्द से स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी का ग्रहण होता था।

देवगिरि के राजा रामचन्द्र राय ने दिल्ली आकर अलाउद्दीन खिलजी की अधीनता स्वीकार की थी। उन्हें 'रायरायान' पदवी देकर उनका राज्य छीन लिया गया और उन्हें गुजरात की जागीर दी गई। अपने आश्रयदाता की दुर्दशा देखकर गोपाल नायक पराजय स्वीकार न करते, तो क्या करते !

गोपाल नायक के झुकने पर सारे दक्षिण ने हथियार डाल दिए।

हिन्दुत्व के पुनरुत्थान के लिए विद्यारण्य ने खुसरो की मृत्यु से केवल बारह वर्ष बाद १३३६ ई० में विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्क से कराई। ये दोनों भाई दिल्ली में बन्दी रहे थे और मुसलमानों के रंग में रंग गए थे। विद्यारण्य ने उन्हें 'शुद्ध' किया था।

विद्यारण्य जब संगीत का पुनरुद्धार करने चले, तब उन्हें प्रचार में केवल पचास राग मिले, क्योंकि महमूद गजनवी के आक्रमण की लपेट में भारतीय संगीत भी भली-भाँति आया था। विद्यारण्य ने प्राप्त पचास रागों का वर्गीकरण ईरानी मुकाम-पद्धति से किया और इस पद्धति का नाम मेल-पद्धति रखा। विद्यारण्य द्वारा स्वीकृत मेलों में 'हेजुज्जी' है, जो 'हिजाज' शब्द का प्रसाद है।

१३४७ ई० में विजयनगर के महाशत्रु बहमनी साम्राज्य की स्थापना हुई, इसका संस्थापक 'हसन' नामक एक ईरानी शाहजादा था, जो अमीर खुसरो का सतीर्थ, अर्थात् शैख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद था। वह बहादुरशाह (प्रथम) के नाम से गद्दी पर बैठा। उसकी सभा में मुकाम-पद्धति से गाने वाले तीन सौ कव्वाल खुसरो-सम्प्रदाय के थे। विजयनगर-नरेश बुक्क पर आक्रमण करके बहादुरशाह (प्रथम) ने भयानक नर-संहार किया और अपने तीन सौ कव्वालों के लिए बलात् पारितोषिक वसूल किया।

१३९८ ई० में बहमनी सुलतानों और विजयनगर नरेशों का संगीत इतना घुल-मिल चुका था कि बहमनी सुलतान फीरोज के काजी सिराज ने नारी वेश में विजयनगर नरेश हरिहर के पुत्र के समक्ष सफलतापूर्वक नृत्य किया। विजयनगगर की गायिका की सफल संगति वाद्यों पर की और वह पहचाना न गया। छद्मवेशधारी सिराज ने उस राजकुमार का वध सफलतापूर्वक कर दिया।

१४०६ ई० में तो गजब हो गया। बहमनी सुलतान फीरोज ने विजयनगर नरेश देवराय (प्रथम) को हराकर उसकी पुत्री को अपनी पुत्रवधू बना लिया।

बहमनी सुलतानों की इन विजयों ने विजयनगर के सांस्कृतिक जीवन को अपने रंग में भली-भाँति रंगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१४४२ ई० में देवराय (द्वितीय) ने मुसलमानों को नौकरियाँ और जागीरें दीं। उन्हें प्रसन्न करने के लिए विजयनगर में मस्जिद का निर्माण हुआ और विजयनगर के राजसभागार में एक ऊंचे और बहुमूल्य पीठ पर कुरानशरीफ की स्थापना की गई। मुसलमान धनुर्धरों की संख्या विजयनगर की सेना में दो सहस्र थी।

उस युग से प्रायः सवा दो सौ वर्ष पूर्व कश्मीरी विद्वान् शार्ङ्गदेव ने जिस 'संगीत-रत्नाकर' की रचना देवगिरि में बैठकर की थी, उसे समझने वाला केवल एक व्यक्ति कल्लिनाथ देवराय (द्वितीय) की राज-सभा में था।

कल्लिनाथ ने कहा है कि व्यवहार में ग्राम-सिद्धान्त का लोप हो चुका है, राग और रस का पारस्परिक सम्बन्ध मेरे युग में उपेक्षित है। यह स्थिति मुकाम-पद्धति या मेल-पद्धति के प्रचार का ही प्रसाद थी।

जिस युग में कल्लिनाथ की आत्मा पीड़ा से कराह रही थी, उसी युग में मेवाड़ के प्रतापी राणा कुम्भा 'मुकाम-पद्धति' से सर्वथा अप्रभावित रहकर अपने महान् ग्रन्थ 'संगीत-राज' की रचना कर रहे थे।

मानसिंह तोमर (राज्य-काल १४८६-१५१६ ई०) की प्रेरणा से जिस समय ब्रजभाषा-ध्रुवपदों के आदि-कवि बैजू 'सपत प्रकट, सपत गुपत' कहकर मूर्च्छना-पद्धति और मुकाम-पद्धति, दोनों ही पर अपने अधिकार का परिचय दे रहे थे, उसी समय विजयनगर के राजपंडित लक्ष्मीनारायण 'संगीत-सूर्योदय' में 'कौल' और 'गजल; को स्थान देने के लिए विवश हुए थे।

बाबर, हुमायूँ और अकबर के समवर्ती दाक्षिणात्य ग्रन्थकार रामामात्य ने वीणा पर 'मुकाम-पद्धति' द्वारा स्थापित बारह ध्वनियों को अकारण ही शार्ङ्गदेवोक्त स्वर-संज्ञाएँ घोषित करके समस्त दक्षिण को इस भ्रम में डाल दिया कि रामामात्य का सम्बन्ध 'संगीत-रत्नाकर' से है। ईश्वर का परम अनुग्रह है कि टी० आर० श्रीनिवास आयंगर जैसे दाक्षिणात्य विद्वान् ने 'संग्रहचूड़ामणि' की भूमिका में अब यह मान लिया है कि रामामात्य, रघुनाथ और वेंकटमखी के तथाकथित शुद्ध (!) स्वरों का सम्बन्ध भरत, मतंग और शार्ङ्गदेव की वैदिक परम्परा से नहीं है।

तानसेन-जैसे गुणियों की कृपा से सम्राट् अकबर जब 'संगीत-रत्नाकर' की व्याख्या में समर्थ था, तब उसी युग के 'पुंडरीक विट्ठल' जैसे ग्रन्थकार 'मेल-पद्धति' से चिपटे हुए थे। उनके शिष्य श्रीकंठ वीणा पर 'मुकाम-पद्धति' से स्थापित बारह ध्वनियों के सम्बन्ध में केवल गुरु को प्रमाण मान रहे थे, उनके पास किसी ग्रन्थ का आधार नहीं था।

जहाँगीरकालीन आन्ध्रदेशीय सोमनाथ ने तो 'राग-विबोध' में यह स्पष्ट कहा था कि वे लोक-प्रथा के अनुसार स्वर-स्थापन का विधान कर रहे हैं। उनकी विधि प्राचीनों द्वारा उपदिष्ट नहीं है।

सोमनाथ की ईमानदारी में कोई सन्देह नहीं। उन्होंने 'मुकाम' के संक्रस्त-अनुवाद 'संस्थान' का प्रयोग किया है और 'मेल' तथा 'ठाठ' शब्द का भी। उन्होंने ही इस अनर्थ की ऐतिहासिक घोषणा की है कि 'स्वर' यदि एक-आध 'श्रुति' ऊँचा या नीचा हो जाए, तो कोई हानि नहीं है। यह मान्यता सर्वथा अवैज्ञानिक है और भारतीय रागों को बारह अचल ध्वनियों के निर्दय एवं जड़ शिकंजे में कस देती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाहजहाँकालीन तंजोर निवासी वेंकटमखी ने स्पष्ट कहा है, "मेरे दादा गुरु तानप्पा ने लोक-व्यवहार को देखकर राग-वर्गीकरण के लिए एक नवीन सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया है और प्रचलित रागों में आलाप, ठाय, गीत और प्रबन्ध की रचना की है।"

तानप्पा का राग-वर्गीकरण भी मुकाम-पद्धति से प्रभावित मेल-पद्धति पर ही आश्रित है।

वेंकटमखी के युग में दक्षिणवासी गायक आन्ध्रपद (तेलगु-कृतियाँ), कर्णाट-पद (कन्नड़ कृतियाँ) और तुरुष्क-पद (तुर्कों या दाक्षिणात्य मुसलमानों की भाषा दक्खिनी हिन्दी की कृतियाँ) एक ही शैली में गाते थे।

वेंकटमखी ने 'कल्याणी' और 'पन्तुवराली' जैसे रागों को तुरुष्कप्रिय (मुसलमानों को अच्छा लगने वाला) कहा है। वास्तव में 'कल्याणी' अरबी भाषा के शब्द 'ऐमन' का अनुवाद है, जिसका अर्थ 'कल्याणमय' होता है। 'पन्तुवराली' मुसलमानों का 'तोड़ी' है। इस 'मेल' का परिचय भारत से शेख बहाउद्दीन जकरिया ने कराया था।

वेंकटमखी के युग में कई विदेशी जातियाँ भारत में आ गई थीं, जो गाती-बजाती भी थीं। पुर्तगाली, डच, फ्राँसीसी और अंग्रेज भारत में पंजे जमाते जा रहे थे। वेंकटमखी जानते थे कि देश अनेक हैं, तभी सभी देशों में कलाकार और संगीतज्ञ हैं, लोक-रुचि में भिन्नता होती ही है। अतः उन्होंने सभी सम्भव रागों का अन्तर्भाव करने के लिए प्रसिद्ध बहत्तर मेलकर्ताओं की कल्पना की, परन्तु इन बहत्तर मेलकर्ताओं का आधार वीणा पर स्थापित वही बारह अचल ध्वनियाँ थीं, जिनकी स्थापना ईरानी मुकाम-सिद्धान्त के अनुसार हुई थी।

भारतीय परम्परा 'सप्तक' को मानती है, जबकि यूनानी, ईरान इत्यादि 'अष्टक' (ऑक्टेव) के कायल हैं। भारतीय दृष्टि औडुव, षाडव और सम्पूर्ण रागों में क्रमशः पाँच छह और सात स्वर देखती है, जबकि वेंकटमखी पूर्वोक्त रागों में क्रमशः छह, सात और आठ स्वर बताते हैं। अतः वेंकटमखी 'अष्टकवादी हैं।

रामामात्य, रघुनाथ, सोमनाथ, पुंडरीक, श्रीकंठ, वेंकटमखी इत्यादि वैणिकों के ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं, परन्तु स्वर-शास्त्र का जो विवेचन उनमें है, वह सर्वथा मुस्लिम प्रभावित है। 'संगीत-रत्नाकर' की वैदिक परम्परा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

१८-वीं शती के प्रसिद्ध सन्त त्यागराज ने काफी, शहाना, हुसेनी, जीलफ, जंगूला, दरबार इत्यादि रागों का खुलकर प्रयोग किया है। ये शब्द अपना इतिहास स्वयं कह रहे हैं।

कर्नाटक-संगीत में राग और रस के सम्बन्ध पर कोई विचार नहीं। रागों का कोई भावाधारित वर्गीकरण भी वहाँ नहीं है। रागों के समय की ओर कोई ध्यान नहीं है; बिलम्बित लय का प्रयोग प्रायः लुप्त है। वहाँ के तथाकथित शुद्ध स्वरों का सम्बन्ध वैदिक परम्परा से नहीं है। ऐसी स्थिति में भी यदि कोई यह कहने का साहस करे कि कर्नाटक-संगीत पर बाह्य प्रभाव नहीं है, तो उसके चरणों में नतमस्तक होने के अतिरिक्त अन्य क्या उपाय है?

उत्तर और दक्षिण के सामवेदियों के सामगान में एकात्मता है, इसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकात्मता के दर्शन उत्तर-भारत के लोक-गीतों में भी होते हैं। शास्त्रीय कहे जाने वाले उत्तर-भारतीय 'आलाप' में भी यह एकात्मता परिलक्षित होती है। परन्तु कर्नाटक का 'क्लासिकल म्यूज़िक' इस बिरादरी से सर्वथा अलग प्रतीत होता है। कर्नाटक के गायक-गायिकाओं के स्वर-प्रयोग में वह 'ठहराव' या 'टिकाव' क्यों नहीं है, जो उत्तर और दक्षिण के सामवेदियों के साम-गान में है ?

इन पंक्तियों के लेखक को कर्नाटक-संगीत में कुछ कम रुचि नहीं है, परन्तु व्यक्ति, वर्ग या जाति की रुचि किसी वस्तु के मूल को नहीं बदल देती।

हमें विश्वास है कि 'स्टोरियो' द्वारा प्रचारित संग्रह के अगले संस्करण में उचित संशोधन हो जाएंगे। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर-शास्त्र-दोहावली

'भरत-नाट्यशास्त्र' के २८वें अध्याय में स्वर, संवाद-विवाद-अनुवाद ग्राम, मूर्च्छना श्रुति, स्वर-साधारण, तान, मूर्च्छना-तान और जाति, इतने विषयों का प्रतिपादन है। यही विषय भारतीय स्वर-शास्त्र में प्रमुख हैं और स्वर-शास्त्र ही संगीत-शास्त्र की भित्ति है। 'संगीत-रत्नाकर' के स्वराध्याय में इनके अतिरिक्त वर्ण अलंकार, कूटतान और नष्टोद्दिष्ट-विधि, इन विषयों का समावेश है; जिनमें से वर्ण और अलंकार का प्रतिपादन 'भरत-नाट्यशास्त्र' के २८वें अध्याय की प्रतिपाद्य विषय-वस्तु का सुलझा हुआ निरूपण है। व्याख्या-सहित ये दोहे संगीत के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होंगे, ऐसी आशा है; क्योंकि इनसे स्वर-शास्त्र के जटिल विषयों को हृदयंगम करने में और स्मृति में दृढ़ रूप से अंकित करने में विशेष सहायता मिलेगी। दोहों की कुल संख्या प्रायः २५० से कुछ ऊपर है। यहाँ कुछ दोहे दिए जा रहे हैं।

मंगलाचरण

एरी बीनवारी ! बीनि-बीनि डारौ पापपुंज,
आभा दै अनोखी मन-मुकर सुधारौ आजु।
लोक-प्रतिबिम्ब, बिम्ब बापुरे अबिम्बन के,
ताहि मैं उभारौ हिय-बीन आपु सारौ आजु।
डारौ मुख माँहि बिन्दु जुगल-पयोधरनि,
कर फेरि पीठि, नेह-दीठि सों निहारौ आजु।
चारौ पुरुसारथ सुखारथ सँजोइ देवि,
हेरि-हेरि बेरि-बेरि पूतहिं उबारौ आजु।

भावार्थ—हे वीणा-वादिनी सरस्वती माता ! तुम मेरे पापपुंजों को बीन डालो, उन्हें निःशेष कर दो। मेरे मनोरूपी मुकुर(दर्पण) को अनोखी आभा (चमक) देकर आज सुधार दो। कवि-हृदय में प्रतिबिम्बित होनेवाले लोक-प्रतिबिम्ब तो 'अबिम्ब' या अमूर्त परम सत्ता के ही बिम्ब-मात्र हैं। उन बिम्बों को तुम आज मेरे हृदय में उभारो और मेरी हृदय-वीणा को अपने हाथों से मिलाओ। हे माँ ! मेरे मुख में अपने पयोधर-युगल से तुष्टि-पुष्टिकारी अमृतमय ज्ञान-दुग्ध के बिन्दु चुवा दो। मेरी पीठ पर हाथ फेरकर स्नेह-दृष्टि से आज मेरी ओर देख-भर दो। सुख के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थों को सँजोकर बार-बार (मेरी ओर) देख-कर अपने इस पुत्र का आज उद्धार करो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्राम-स्थापना

सुघर तँबूरा माँहि जब, मिलहिं सुरीले तार।
षरज माँहि इक गुंजरै, सुइ अन्तर-गान्धार ।।१।।

तम्बूरा जब ठीक से मिला हो, तब उस पर मन्द्र-षड्ज के तार में से उपस्वर के रूप में जो गान्धार सुनाई देता है, वही भरत का अन्तर-गान्धार है। उपस्वरों में मौलिक स्वर के पाँचवें आवर्तक में ५/४ मूल्य का गान्धार मिलता है। यही पाश्चात्य संगीत-परम्परा का 'Perfect third' है। भरत ने 'सा-ग' अन्तराल को संवादी कहकर उल्लिखित नहीं किया है, किन्तु ग्राम-स्थापना में अन्तर-गान्धार का महत्त्व उन्होंने असन्दिग्ध रूप से प्रतिपादित किया है। यह महत्त्व आगे के दोहों में स्पष्ट होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि मतंग ने मध्यम-ग्राम में सप्तश्रुत्यन्तर को भी संवादी बताया है और वही 'सा-ग'-अन्तराल है ('सप्तनवकत्रयोदशान्ताः संवादिनः'—बृहद्देशी, पृष्ठ १६)। यहाँ षड्ज-पंचम और षड्ज-मध्यम-संवाद से भी पूर्व षड्ज-अन्तर-गान्धार-संवाद को स्थान दिया गया है। इसका एक कारण तो यह है कि उपस्वरों में से गान्धार ही सबसे अधिक प्रबल और स्पष्ट रूप से सुनाई देता है, और दूसरे यह कि ग्राम-स्थापना में इसका महत्त्व विशेष ध्यान देने-योग्य है। अगले दोहों में शेष दोनों संवादों का उल्लेख है—

सप्तश्रुती-सम्बन्ध यहि 'स-ग'-अन्तर जिय जान।
'स-म' अन्तर नवश्रुति सदा, 'स-प' तेरह पहचान ।।२।।

इस अन्तर-गान्धार का षड्ज से सप्तश्रुति-अन्तराल है और यह सप्तश्रुति संवाद का द्योतक है। 'सा-म'-अन्तर नवश्रुतिक है और 'सा-प' त्रयोदशश्रुतिक है।

यहै तीनि अन्तर सतत, सुस्थापन-आधार।
ग्राम सारना-श्रुति तुरत, प्रगटत करे विचार ।।३।।

यही तीन संवादी अन्तराल स्वर-स्थापना के आधार हैं। स्वर-स्थापना की विधि कुछ आगे चलकर कही जाएगी। इनका विचार करने से ग्राम, सारणा, श्रुति सभी प्रकट हो जाते हैं। इन अन्तरालों की श्रुति-संख्या कैसे सिद्ध हो, इसका उत्तर अगले दोहे में है—

भये सारना-ज्ञान, यहि श्रुति-संख्या दरसाय।
आतुरता तजि सुघर मन, ज्ञान पाय हरसाय ।।४।।

सारणा का ज्ञान होने से ऊपर-लिखी श्रुति-संख्या सिद्ध हो जाती या स्पष्ट दिखाई देती है और ज्ञान की प्राप्ति से मन हर्षोल्लास से भर उठता है।

सुरमंडल इक लीजिए, साजिय इकइस तार।
ग्राम-मूर्च्छना-जाति सब, तुरत करिय निरधार ।।५।।

एक स्वरमंडल लेकर उस पर इक्कीस तार चढ़ाएं और आगे बताई जाने-वाली विधि के अनुसार उसपर ग्राम, मूर्च्छना, जाति इन सभी को सप्रयोग सिद्ध कर लें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्ज-ग्राम

पहले, चौथे, सातवें, तीजे 'स-म-नि-ग' सार ।
'स-म' सम्वन्ध अधार तहँ, रखिय सुरीले तार ॥६॥

पहिले तार पर षड्ज स्थापित कर लेने के बाद षड्ज-मध्यम-संवाद जाँचकर चौथे तार पर मध्यम और सातवें तार पर निषाद मिला लें। इस निषाद से अवरोह गति से षड्ज-पंचम-संवाद जाँचकर तीसरे तार पर गान्धार मिला लें। इस प्रकार 'सा-म' सम्बन्ध के आधार पर मध्यम और निषाद मिलाया गया तथा अवरोह-क्रम से 'सा-प'-सम्बन्ध के आधार पर गान्धार।

'म-ध' अन्तर नित सप्तश्रुति, धैवत छठें मिलाय।
दूजे रिषब मिलाइए, पुनि अवरोही भाय ॥७॥

धैवत मिलाने का एकमात्र मार्ग यही है कि मध्यम से आगे अन्तर-गान्धार-वाले सप्तश्रुति-अन्तराल को जाँचा जाए। इस प्रकार छठे तार पर धैवत मिलेगा। इस धैवत से अवरोह-क्रम में षड्ज-पंचम-सम्बन्ध जाँचकर दूसरे तार पर ऋषभ मिलाना होगा।

'ध-रि' 'स-प' सरिस भए तुरन्त, पँचये पंचम राखि।
षरज-ग्राम 'सरिगमपधनि' सुनिए काननि-साखि ॥८॥

इस प्रकार धैवत से अवरोह-क्रम में ऋषभ का षड्ज-पंचम-सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर पाँचवें तार पर षड्ज का संवादी पंचम मिलाना चाहिए। अब सात तारों पर षड्ज-ग्राम के सात स्वर स्थापित हो गए, जिन्हें प्रत्यक्ष कान से सुना जा सकता है।

'रि-प'-अन्तर इत दस-श्रुतिक, यहि रहस्य बड़ि जानि।
'स-म'-अन्तर नहिं कबहुँ उत, षरज-ग्राम यहि आनि ॥९॥

षड्ज-ग्राम में 'रे-प'-अन्तर दस श्रुति का है, यह बड़े रहस्य की बात है; अर्थात् यहाँ 'रे-प' में किसी प्रकार भी षड्ज-मध्यम-संवाद नहीं है। भरत-पद्धति में दो ग्रामों को भिन्न करने वाला स्वर पंचम ही है। षड्ज-ग्राम का पंचम षड्ज का संवादी तो है, किन्तु त्रिश्रुति ऋषभ का संवादी नहीं है।

'स-प', 'रि-ध', 'ग-नि' महँ देखियत, षरज-पंचम-सम्बन्ध।
'स-म', 'म-नि', षरज-मधिम तत, अविचल यहै प्रबन्ध ॥१०॥

'सा-प', 'रे-ध' और 'ग-नि', ये तीन षड्ज-पंचम-भाव से संवादी जोड़ियाँ षड्ज-ग्राम में हैं। षड्ज-मध्यम-भाव से संवादी जोड़ियाँ हैं 'सा-म' और 'म-नि'।

'म-नि' महँ सुर संवाद पै, नाहिं राग-संवाद।
यहि रहस्य जानत न जे, उरझत बिरथ बिवाद ॥११॥

षड्ज-ग्राम के 'म-नि' में स्वर-संवाद तो है, किन्तु राग-संवाद नहीं है। स्वर-संवाद और राग-संवाद की भिन्नता कुछ आगे चलकर संवाद-तत्त्व के स्पष्टीकरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के समय कही जाएगी। भरत ने षड्ज-ग्राम की संवादी जोड़ियों में 'म-नि' को स्थान नहीं दिया है और इसका कारण यही है कि उसमें राग-संवाद नहीं है जो लोग इस रहस्य को नहीं जानते, वे भरत के वचनों में 'म-नि' संवाद का अभाव देखकर व्यर्थ ही उलझन में पड़ते हैं।

षरज-ग्राम 'स-म', 'म-नि' बनत, मधिम-ग्राम महँ देखु।
'स-म', 'म-नि', यह अन्तर सदा, सरिस सत्य अबरेखु।।१२।।

षड्ज-ग्राम के षड्ज-मध्यम ही मध्यम-ग्राम में क्रमशः मध्यम-निषाद बन जाते हैं। इस प्रकार यह ध्रुव सत्य है कि षड्ज-मध्यम और मध्यम-निषाद का अन्तर बिलकुल सदृश है। इसलिए 'म-नि' में स्वर-संवाद निर्विवाद तथ्य है।

मन्दु थान आधार करि, सारिय मध्य 'रु तार।
तीनहु सप्तक देखिए, सारि सेसहू तार।।१३।।

ऊपर लिखी पद्धति से जो प्रथम सात तार मिलाए गए, उनसे मन्द्र-स्थान की निष्पत्ति हुई। इसी के आधार पर, मन्द्र से दुगुने मध्य और मध्य से दुगुने तार-स्थान के स्वर क्रमशः आठवें से चौदहवें और पन्द्रहवें से इक्कीसवें तार पर मिला लिए जाएँ। अब तीनों सप्तक एक साथ देखे जा जा सकेंगे।

मध्यम-ग्राम

तीजो तार चढ़ाइए, करि धैवत-संवाद।
तौ अन्तर-गान्धार छिनु, चढ़ि द्वै श्रुति मरजाद।।१४।।

षड्ज-ग्राम में तीसरे तार गान्धार मिलाने को कहा गया था, जिसका निषाद से षड्ज-पंचम-संवाद जाँचा गया था। अब इस गान्धार को दो श्रुति चढ़ाकर इसी तार पर अन्तर-गान्धार स्थापित करना है, इसलिए धैवत से अवरोह-क्रम से षड्ज-मध्यम-संवाद जाँचकर इस तीसरे तार को चढ़ाने की बात कही गई।

यहै सान्तरा मूर्च्छना, षरज-ग्राम की आदि।
मधिम-ग्राम 'मपधनिसरिय', बनतु आप मधमादि।।

गान्धार को इस प्रकार दो श्रुति चढ़ा देने से अब स्वरमंडल पर षड्ज-ग्राम की प्रथम सान्तरा मूर्च्छना स्थापित हो गई। इसी को मध्यमादि मूर्च्छना बना देने पर, अर्थात् जो 'सारेगमपधनि' था, उसी को 'मपधनिसारेग' संज्ञा दे देने पर मध्यम-ग्राम की प्राप्ति हो जाती है। इसी विधान को भरत ने 'द्विश्रुतिप्रकर्षाद्वैवतीकृते गान्धारे' कहकर सूत्रबद्ध किया है, अर्थात् षड्ज-ग्राम के गान्धार का दो श्रुति उत्कर्ष करके उस उत्कृष्ट गान्धार को धैवत बना देने से षड्ज-ग्राम की मूर्च्छना विशेष में ही मध्यम-ग्राम की उपलब्धि हो जाती है। इस विधान में स्वरों का केवल संज्ञा-भेद है। गान्धार के उत्कर्ष के अलावा इसमें और किसी स्वर को चढ़ाना-उतारना नहीं पड़ता। षड्ज-ग्राम में से मध्यम-ग्राम प्राप्त करने का यह एक मार्ग हुआ। दूसरा मार्ग अगले दोहे में कहा गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षरज-ग्राम पंचम उतरि, गहै रिषब-संवाद।
मधिम-ग्राम की मूर्च्छना,'सरिगमपधनि' न वाद ॥१६॥

त्रिश्रुति ऋषभ के साथ पंचम का षड्ज-मध्यम-संवाद स्थापित करने के लिए यदि पंचम को उतार दिया जाए, तो संज्ञा-भेद के बिना ही 'सा-रे-ग-म-प-ध-नि' में मध्यम-ग्राम की षड्जादि मूर्च्छना बन जाएगी। इसमें संज्ञा-भेद की कोई आवश्यकता नहीं।

जद्यपि दोउन बिधि मिलहिं, मधिम-ग्राम छिनु माहिं।
पै आदिम मारग सदा, रखियै संक नसाहिं ॥१७॥

यद्यपि ऊपर लिखी दोनों विधियों से मध्यम-ग्राम की प्राप्ति तत्काल हो जाती है, किन्तु प्रथम मार्ग अर्थात् संज्ञा-भेद वाली विधि ही ग्राह्य है। कारण अगले दोहे में देखें—

'म-प-ध-नि-स-रि-ग' स्वरावली, मधिम-ग्राम को मूल।
कहियतु आदिम मूर्च्छना, तहँ रहस्य, नहिं भूल ॥१८॥

'म-प-ध-नि-सा-रे-ग', इस प्रकार मध्यम से आरम्भ होने वाली स्वरावली ही मध्यम-ग्राम का मूल है; क्योंकि मध्यम-ग्राम की प्रथम मूर्च्छना का आरम्भ मध्यम से होता है, न कि षड्ज से। इसीलिए षड्ज-ग्राम के अन्तर-गान्धार को धैवत बनाकर अर्थात् षड्ज-ग्राम के षड्ज़ को मध्यम मानकर, जो मूर्च्छना बनाई जाती है, वही मध्यम-ग्राम का मूल है। पंचम के अपकर्ष के बिना ही यहाँ संज्ञा-भेद से यानी षड्ज-ग्राम के 'सा-रे' को ही 'म-प' बना देने से त्रिश्रुति पंचम की प्राप्ति हो जाती है। और, इस प्रकार षड्ज-ग्राम के 'म-प' तथा 'प-ध', इन दो चतुःश्रुति और त्रिश्रुति अन्तरालों का विपर्यय मध्यम-ग्राम में अनायास ही सिद्ध हो जाता है। मध्यम-ग्राम में 'म-प' त्रिश्रुतिक और 'प-ध' चतुःश्रुतिक हो जाते हैं; यथा—

षड्ज-ग्राम

सा — रे—अन्तर ग — म — प —ध—नि

मध्यम-ग्राम

म —	प —	ध —	नि —	सा—	रे—	ग
(४)	३	४	२	४	३	२

'म-नि', 'ध-रि', 'नि-ग' महँ देखियत, षरज-मधिम को भाव।
'म-स', 'प-रि', षरज-पँचम छबिहिं, धारत, मनु लै चाव ॥१९॥

मध्यम से आरम्भ होने वाली मध्यम-ग्राम की स्वरावली में 'म-नि', 'ध-रे' और 'नि-ग' में षड्ज-मध्यम संवाद दिखाई देता है। 'म-सा' और 'प-रे' यहाँ षड्ज-पंचम-संवाद है। इसलिए भरत ने षड्ज-ग्राम में षड्ज-पंचम और मध्यम-ग्राम में पंचम-ऋषभ-संवाद कहा। पंचम-ऋषभ-संवाद एक ही स्थान या सप्तक में तभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखाई देता है, जब सप्तक का आरम्भ मध्यम से किया जाए। मध्यम-ग्राम के इस आरम्भ-स्थान को ध्यान में रखकर ही भरत ने मध्यम-ग्राम में ऋषभ-पंचम-संवाद न कहकर पंचम-ऋषभ-संवाद कहा है; यथा—

संवादो मध्यमग्रामे पंचमस्यर्षभस्य च।
षड्जग्रामे च षड्जस्य संवादः पंचमस्य च॥ (२८/२१)

दोनों ग्रामों का भेदक स्वर पंचम ही है। उसी के आधार पर ग्राम-भेद का मर्म बताने के लिए भरत ने षड्ज-ग्राम में 'सा-प' और मध्यम-ग्राम में 'प-रे' संवादी कहा है। दोनों ही षड्ज-पंचम-भाव से संवादी जोड़ियाँ हैं। षड्ज-ग्राम में 'सा-प' संवादी हैं तो 'प-रे' नहीं हैं और मध्यम-ग्राम में 'प-रे' हैं तो 'सा-प' नहीं हैं। यह बात उस प्रसंग में उचित है, जब संज्ञा-भेद से षड्ज-ग्राम में से मध्यम-ग्राम प्राप्त किया जाता है। जब पंचम का अपकर्ष करके मध्यम-ग्राम बनाया जाएगा, तब त्रिश्रुति ऋषभ से षड्ज-मध्यम-संवाद जाँचकर पंचम का अपकर्ष करना होगा और तभी 'सा-म' सम्बन्ध का मध्यम-ग्राम में महत्त्व स्पष्ट होगा।

'स-प'-सम्बन्ध प्रधान उत, प्रथम मूर्च्छना माहिं।
'स-म'-सम्बन्ध प्रमुख इतै, रहत, अन्यथा नाहिं॥२०॥

षड्ज-ग्राम में प्रथम यानी षड्जादि मूर्च्छना में, दूसरे शब्दों में ग्राम की मूल स्वरावली में षड्ज-पंचम-सम्बन्ध प्रधान है और यहाँ मध्यम-ग्राम में 'सा-म' सम्बन्ध प्रमुख है। षड्ज-ग्राम की 'रे-ध' जोड़ी के स्थान पर मध्यम-ग्राम में 'ध-रे' और षड्ज-ग्राम की 'ग-नि' जोड़ी के स्थान पर मध्यम-ग्राम में 'नि-ग' जोड़ी बन जाती हैं। इस प्रकार पड्ज-पंचम-सम्बन्ध की प्रधानता के स्थान पर षड्ज-मध्यम सम्बन्ध की प्रधानता सिद्ध हो जाती है। (ऊपर १८ संख्यक दोहे की व्याख्या में दोनों ग्रामों की एकत्र लिखी हुई स्वरावली में यह देखा जा सकता है।)

'स' 'म' 'रि' 'प', 'ग' 'ध', 'म' 'नि', 'प' 'स'
भए, 'ध' 'रि', 'नि' 'ग' बनि दरसाएँ।
षरज-ग्राम के मद्धि महँ, जे समझे हरसाएँ॥२१॥

षड्ज-ग्राम का षड्ज मध्यम-ग्राम में मध्यम बन जाता है, ऋषभ पंचम बन जाता है, द्विश्रुति उत्कृष्ट गान्धार धैवत की संज्ञा पा लेता है, मध्यम निषाद बन जाता है, पंचम षड्ज बन जाता है, धैवत ऋषभ हो जाता है और निषाद गान्धार बन जाता है। (द्रष्टव्य ऊपर १८वें श्लोक की व्याख्या) इस प्रकार दोनों ग्रामों की स्वर-संज्ञाओं में जो सम्बन्ध है, उसे अगले दोहे में कहा गया है—

दुऊ ग्राम संज्ञनि महँ, षरज-मधिम-सम्बन्ध।
नामकरन-कारनु इतै, कबहुँ न जानत अन्ध॥२२॥

ऊपर लिखी स्वर-संज्ञाओं से यह स्पष्ट है कि षड्ज-ग्राम और मध्यम-ग्राम के सभी स्वरों में परस्पर षड्ज-मध्यम-सम्बन्ध है; यथा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्ज-ग्राम	मध्यम ग्राम
षड्ज	मध्यम
ऋषभ	पंचम
अन्तर-गान्धार	धैवत
मध्यम	निषाद
पंचम	षड्ज
धैवत	ऋषभ
निषाद	गान्धार

इसीलिए दोनों ग्रामों का नामकरण षड्ज और मध्यम स्वरों से हुआ है। यह रहस्य की बात अज्ञों के लिए दुर्गम है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्व० विद्याधरी बाई

(ठुमरी दुनिया का अविस्मरणीय स्वर)

रामपुर-राजवंश के आदिपुरुष नवाव अली मुहम्मद खां-सम्राट् मुहम्मद शाह रंगीले के स्नेह-भाजन थे। नवाव अलीमुहम्मद खां और उन के उत्तराधिकारियों को गुणग्राहकता के संस्कार मुगल दरबार से ही मिले थे।

ईद, वर्षगांठ इत्यादि के अवसर पर देश भर के गायकों, वादकों, गायिकाओं और नर्तकियों का जमघट रामपुर में रहता था। 'दरबारे खास' में तो अतिथि-कलाकार' अपनी कला के जौहर दिखाते ही थे, साथ ही सम्मानित नागरिकों, सहृदयों, एवं रईसों के लिए भी गोष्ठियाँ आयोजित होती और अतिथि-कलाकार अपनी कला से श्रोताओं को मुग्ध करते थे। इन अवसरों पर अत्यन्त सम्मानपूर्वक निमन्त्रित की जाने वाली गायिकाओं में काशी की विद्याधरी वाई का नाम मुख्य था। इन पंक्तियों के लेखक के जन्म से कहीं पूर्व इस शताब्दी के आरम्भ में ही विद्याधरी बाई के नाम का डंका देश भर में बजता था।

प्रायः पैंतीस वर्ष पूर्व की वात है, रामपुर-ररबार की कोकिला हशमतजान एक प्रसिद्ध ठुमरी 'चौंकि परी मैं तो पिया के जगाए" एक गोष्ठी में गा रही थीं। उस समय उनकी वय प्रायः साठ वर्ष होगी। लोग उन की एक-एक हरकत पर दाद दे रहे थे। हशमत जान के नेत्रों में आँसू छलक आए, बोली—मैं तो विद्याधरी बाई की नकल कर रही हूँ।"

स्व० उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ एक बार प्रसिद्ध ठुमरी 'साँची कहो माँ से बतियां' गा रहे थे और खूब गा रहे थे। लोग प्रशंसा करते नहीं अघा रहे थे। खाँ साहब बोले—"यह ठुमरी तो विद्याधरी बाई गा गई। उसका हक था।"

रामपुर के स्व० वजीर हुसेन खाँ ठुमरी और टप्पे के बादशाह थे। निहायत खूबसूरत गला पाया था। टुमरी गानेवालियों के लाडले थे। प्रसिद्ध ठुमरी मुरली वाले श्याम' गा रहे थे। लोग झूम रहे थे। खाँ साहब ने एक आह भरी और बोले—"अल्लाह, विद्याधरी जैसी 'हूक' और पुकार' गले में बिठा दे।"

बम्बई की वयोवृद्ध गायिका श्रीमती अंजनाबाई मालबेकर से ठुमरी की चर्चा चली तो वह बोलीं—"पुरानों में विद्याधरी ने ठुमरी की दुनिया पर राज किया।"

रेडियो और सिनेमा के युग से पूर्व संगीत के क्षेत्र में अखिल भारतीय यश अर्जित करना सामान्य बात न थी। संगीत-गोष्ठियों में विद्यमान प्रत्येक व्यक्ति से प्रशंसा प्राप्त करने के लिए 'गायिका' को अत्यन्त 'सभाचतुर' और 'चौमुखा' होना पड़ता था। संगीत-मर्मज्ञ जहाँ सुरीलेपन, बोलों के बनाव और लयदारी पर रीझते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे, वहाँ पण्डित और कवियों को सन्तुष्ट करने के विषय के अनुकूल सूक्तियों को बीच-बीच में गा कर प्रस्तुत करते रहना आवश्यक था। मुंशियों और शायरों को सन्तुष्ट करने के लिए अच्छे अशआर का भण्डार और चुनाव आवश्यक था। विद्याधरी बाई ने अपने अनुपम गुणों के कारण सभी वर्गों से प्रशंसा प्राप्त की थी। विद्याधरी जैसी शिष्ट गायिकाओं से शिष्टाचार सीखा जा सकता था। उनकी आकृति में 'आकर्षण' वाणी में 'मोहिनी' और संगीत में वशीकरण रहते थे।

कई वर्ष पूर्व जब यह ज्ञात हुआ कि विद्याधरी जी बनारस से कुछ दूर जसूरी नामक एक ग्राम में सात्विक जीवन व्यतीत कर रही हैं, तब कौतूहलपूर्ण हर्ष हुआ। भगवान ने कुछ ही दिनों के पश्चात ऐसा सुअवसर उपस्थित किया कि मैं उनका दर्शन कर सका।

अकस्मात् ही पहुँच गया था। जसूरी एक अत्यन्त सामान्य गाँव है। विद्याधरी जी के घर को जानने वाला कोई व्यक्ति साथ न था, परन्तु शीघ्र ही गांव के लोगों ने उनके घर तक पहुँचा दिया। छोटा-सा सामान्य, दुमंजिला, परन्तु जीर्ण-शीर्ण घर। मुझे ऊपर की मंजिल में एक कोठरी में ले जाया गया। कोठरी गोबर से लिपी थी। एक ओर भगवान की मूर्ति थी।

विद्याधरी जी पधारीं। मियाना कद उन्नत नासिका दन्तविहीन मुख, आकृति पर सात्विकता और शान्ति विराजमान। मैं देखता ही रह गया उस विनम्र और पवित्र आकृति को ओर, जिसके कोकिल-कण्ठ ने कभी भारत भर के महाराजाओं और नवाबों को अपनी स्वरलहरी से झुलाया था।

एक चटाई प्रस्तुत की गई। विद्याधरी जी बोलीं—"जिस हालत में हम हैं, हाजिर हैं, आपके लिए कोई खास तकल्लुफ नहीं किया।" उनके मुख से विशुद्ध उर्दू सुनकर मैं चौंका।

"किसी खास तकलीफ की जरूरत नहीं, आपक कदमों में कुछ देर बैठने हाजिर हुआ हूँ"—मैंने कहा।

"आपका वतन रामपुर है, जहाँ गाने बजाने वालों का जमघट रहता था। कहिए, कैसे तकलीफ की?"

बड़े-बूढ़ों से आपकी तारीफ अक्सर सुनी थी, इश्तियाक (उत्कण्ठा) था, हाजिर हो गया। सोचा कुछ अच्छी बात कान में पड़ेगी।" मैं बोला।

विद्याधरी जी ने कहा—"अब तो भगवान का नाम बच रहा है। चाहती हूँ, अन्त सम्भल जाए।"

जिसने सारे ऐश्वर्य पर लात मार कर युगों से संन्यास ले लिया हो, थोड़े से थोड़े में सन्तोष करना स्वभाव बना लिय। हो, ख्याति और यश से जिसका मन भर गया हो, केवल भगवान का नाम ही जिसके लिए बच रहा हो, उसका अन्त तो सम्भला-सम्भलाया ही है।" एक उपस्थित सज्जन बोले।

भगवान का प्रसाद सम्मुख आ गया था और शीतल जल। हमलोग प्रसाद ग्रहण करने लगे, वार्तालाप होता रहा। निष्कर्ष यह है—

"विद्याधरी जी का जन्म लगभग एक सौ वर्ष पूर्व पटने में हुआ। उनके दो भाई भी थे। विद्याधरी जी के पिता के स्वर्गवास के पश्चात उनके कुटुम्बियों से अनबनके कारण उनकी माता अपने बच्चों को लेकर बनारस चली आईं। कुछ जेवर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बेच कर उन्होंने कुछ भूमि खरीद ली और उस पर खेती-बाड़ी कराती रहीं।

विद्याधरी जी ने आठ-नौ वर्ष की आयु से गाना सीखना आरम्भ किया। बनारस के रामसुमेर जी ने विद्याधरी जी को आरम्भिक शिक्षा दी, वे स्वयं सारंगी बजाते थे। आगे चलकर बनारस के प्रसिद्ध गुणी दरगाही जी से शिक्षा लेने का सौभाग्य भी विद्याधरी जी को प्राप्त हुआ। दरगाही जी सितार भी बजाते थे।

विद्याधरी जी के एक अन्य गुरु मिठाईलाल जी थे। वे सितार भी बजाते थे और गाते भी थे। विद्याधरी जी की जननी चाहती थीं कि विद्याधरी जी का विवाह कर दिया जाए, परन्तु उनकी प्रतिभा को देख कर उन के गुरुओं ने सम्मति दी कि यदि उन्हें गाने दिया जाए तो उन्हें अखिल भारतीय ख्याति मिलेगी। गुरुओं की सम्मति मान ली गई और उस युग की प्रवृत्ति के अनुसार विद्याधरी जी को अक्षरारम्भ फारसी लिपि से कराया गया। आरम्भ में उन्होंने उर्दू पढ़ी। उर्दू का अच्छा ज्ञान उस युग में सुशिक्षित कहलाने के लिए अनिवार्य था। अच्छी उर्दू जाने बिना शिष्ट समुदाय में सम्मान प्राप्त नहीं किया जा सकता था।

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान पं० दामोदर गोस्वामी ललित कलाओं के भी चूडान्त मर्मज्ञ एवं रसिक शिरोमणि थे। विद्याधरी जी को पूज्य गोस्वामी का सत्संग भलीभाँति प्राप्त हुआ। गीत-गोविन्द के अभिनय एवं गान पर विद्याधरी जी का अद्भुत अधिकार ऐसे ही महापुरुषों के अनुग्रह का परिणाम था। खयाल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, गजल, भजन सभी पर विद्याधरी जी का अधिकार था। जिस रज-वाड़े में भी निमन्त्रित की जाती थीं, वहाँ उनका अत्यन्त सम्मान होता था। यों कहना चाहिए कि विद्याधरी जी को निमन्त्रित करने वाले रईस संगीत संसार में गुणग्राही समझे जाते थे।

अवध की नवाबी के पतन के पश्चात जाफर खाँ बनारस जा बसे थे। यह रामपुर के बहादुर हुसेन खाँ के मामा थे। जाफर खाँ काशी-नरेश उदितनारायण सिंह के आश्रित थे। इनके पुत्र काजम अली और सादिक अली रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के आश्रय में रहे। रामपुर-दरबार के साथ काशी-नरेश के सम्बन्ध सदैव अच्छे रहे। दोनों दरबारों में पण्डितों और गुणियों का आदान-प्रदान होता रहा था।

विद्याधरी जी के गुरु दरगाहीजी और मिठाईलाल जी का सितार बहादुर हुसेन खाँ की परम्परा से प्रभावित था। इस विशिष्ट सम्बन्ध के कारण बनारस की गायि-काएं रामपुर-दरबार में अत्यन्त आत्मीयतापूर्ण व्यवहार पाती रही थीं। रामपुर-दरबार में प्रसिद्ध बीनकर उमराव खाँ के पुत्र अमीर खाँ और रहीम खाँ रहे। भातखण्डे जी और उस्ताद अलाउद्दीन खां के प्रसिद्ध गुरु स्व० उस्ताद वजीर खाँ के पूर्वोक्त अमीर खाँ के ही पुत्र थे। उमराव खाँ के छोटे भाई मुहम्मद अली बीनकार काशी-नरेश के आश्रय में रहे। बनारस की गायिकाओं की परम्परा, तन्त्रीवादकों के इस वंश की कला से प्रभावित रही।

वजीर खाँ और भैया गनपतराव की चर्चा आते ही विद्याधरी जी की आँखें मानो शून्य में अतीत को खोजने लगीं। बोलीं—"कलकत्ता जाने से पहले वजीर खाँ अपने बड़े-बूढ़ों के पास बनारस में भी कुछ दिन रहे थे, तब उनका शबाब (यौवन) था। बीनकार थे, खानदानी थे, तबियतदार थे, उनके बीन में 'सरस्वती' बैठी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'खमाज बजाकर सुनने वालों को रुला देते थे, उनके 'देस' में जादू था, बड़ा दर्द भरा 'देस' बजाते थे।''

''कभी ठुमरी भी बजाते थे ?''—मैंने पूछा।

''ठुमरी उनके लिए क्या बात थी बीन की जिस 'सार' पर अंगुली रख दें और उनकी दुनिया बदल दें। बड़ा खूबसूरत गला था वजीर खाँ साहब का।''

''ये बीनकार लोग तो ठुमरी को बहुत बढ़िया चीज नहीं समझते हैं।'' मैंने छेड़ा।

''बहादुर खाँ साहब की 'सरगमों' व 'तरानों' पर 'बोल' रख कर तो 'नंद' ने अपनी ठुमरियाँ कहीं...।'' ''मैं बोल बनाव की ठुमरी की बात ही कर रहा हूँ'', विद्याधारी जी की बात काट कर मैं ने कहा।

''बोल-बनाव की ठुमरी के बादशाह हैं---छम्मन साहब और भैया गनपतराव। छम्मन साहब की माँ 'लाली' और भैया गनपतराव की माँ 'चन्द्र-भागा', दोनों सगी बहनें थीं। छम्मन साहब की माँ 'लाली' को छम्मन साहब के पिता हैदरअली खाँ ने अपनी तालीम से 'रंग' दिया। ठुमरी तो छम्मन साहब और भैया गनपतराव की घुट्टी में पड़ी थी।''-- विद्याधरी जी ने कहा।

''आखिर इन लोगों की ठुमरी में खूबी क्या थी ?''—मैंने पूछा।

''जिस के दिमाग में पचासों रागों का इत्र हो, हर स्वर पर जिस का काबू हो, जहाँ से जो रंग चाहे, दे सकता हो, जिस के दिल में दर्द हो, वही बोल-बनाव की ठुमरी ढंग से गा सकता है। मौजुद्दीन खाँ ने भैया गनपतराव की बहुत खिदमत कर के कुछ सीखा था। बड़ी मोतीबाई को वहीं से तालीम मिली।'' विद्याधरी जी बोलीं।

''अपनी किसी गायिका सखी का नाम बताइए, जिस के साथ आपका स्नेह अत्यधिक रहा हो।''—मेरा प्रश्न है।

''आगरे वाली मलका मेरी प्यारी सखी थी। सूरत की भी अच्छी और 'सीरत' (गुण, स्वभाव) की भी सैकड़ों जलसों में हम लोग साथ-साथ गाए-बजाए।'' —विद्याधरी जी ने उत्साहपूर्वक कहा।

''ऐसी गायिकाओं का नाम बताइए, जिनका गाना आप को बहुत पसन्द रहा हो।''—मैंने पूछा।

''सभी अच्छी थीं। मेरे साथ जिन्हें भी कहीं बुलाया जाता था, अच्छी समझ कर ही बुलाया जाता था।''— विद्याधरी जी का उत्तर था।

'मेरे मन में विद्याधरी जी से कुछ सुनने की इच्छा थी। मैंने प्रश्न किया— ''आप भगवान का भजन तो करती ही होंगी।''

''क्या 'गीत-गोविन्द' भी भगवान को सुनाती हैं ?''—मैंने सरल भाव से प्रश्न किया।

विद्याधरी जी बच्चों की भाँति खिल-खिला कर हँस दीं और उन्हों ने कुछ खाँस कर ''श्रितकमलाकुचण्डल धृतकुण्डल ए।। कलित ललित बनमाल जय-जय देव हरे।'' आरम्भ कर दिया।

आवाज पर आयु का प्रभाव अवश्य था, बुढ़ापे की दुर्बलता स्पष्ट थी, परन्तु कण्ठ-स्वर स्वच्छ था। अपने इरादे को पूरा करने की चेष्टा कर रही थीं। निस्सन्देह,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझदार व्यक्ति उन से बहुत कुछ सीख सकता है। विद्याधरी जी गाने में मग्न थीं और मैं उनके कण्ठ-स्वर की निर्मलता और भावना में डूबा हुआ उनकी उस 'छवि' के विषय में अनुमान करने की चेष्टा कर रहा था, जो मेरे जन्म से पूर्व रही होगी।

विद्याधरी जी गा चुकी थीं।

"मैं आपको कहीं बाहर ले जाना चाहता हूँ"—मैंने अकस्मात ही कहा।

"कहाँ ले जाइएगा?" विद्याधरी जी ने पूछा।

"जहाँ अत्यन्त शान्ति हो, भगवान का मन्दिर हो, भजन-पूजन की सुविधा हो, तानपूरे निरन्तर छिड़ते रहें, तब आप भूल जाएँगी कि आपकी आयु क्या है।"—मैंने कहा।

विद्याधरी जी हँसी, खूब हंसी, बोली—"मेरे पैरों में तो दर्द रहता है, भला कैसे ले जाएँगे?"

"पैर दबाने के लिए आपको बच्चे बहुत मिल जाएँगे। आपको हवाई जहाज में ले जाएँगे।"—मैंने कहा। हवाई-जहाज में यात्रा की बात पर वे बहुत हँसी। कहने लगीं—"बरसों हुए, मैंने अपना तम्बूरा किसी को दे दिया। अब कभी-कभी अफसोस भी होता है, लेकिन जो चीज दे दी, उसका अफसोस ही क्या?"

कई बार मन में आया कि विद्याधरी जी से पूछूँ कि उन्होंने संगीत-जगत से वैराग्य क्यों ले लिया, परन्तु यह प्रश्न मैंने उनसे किया नहीं। विज्ञापन और प्रचार के इस युग में विद्याधरी बाई जैसी निःस्पृह संगीत साधिका यदि केवल अतीत की वस्तु बन कर रह जाए, तो आश्चर्य ही क्या है? ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्गीय अच्छन भैया

राजा और नवाब अपने कुमारों को, उनके बाल्यकाल से ही गुणियों और विद्वानों के सम्पर्क में लाकर उनमें गुणग्राहकता के बीज बो देते थे। ये बच्चे जब बड़े होकर राज-काज सम्हालते, तो अनायास ही ये अपने दरबार के लिए अच्छे गुणियों, विद्वानों और कलाकारों को चुनने में समर्थ होते थे। इतना ही नहीं, ये अपने समय के नवयुवक गुणियों का मार्ग-निर्देश करने में भी सर्वथा समर्थ होते थे, क्योंकि बचपन में ही इन्हें अपने पिता के दरबारी गुणियों के संसर्ग से वह आँख मिल चुकी होती थी, जो अच्छे-बुरे में परख कर सके। ऐसे गुणग्राहक नरेशों के आश्रित होना, कलाकार अपने लिए सम्मान की बात समझते थे।

उन्नीसवीं शती ई० से ही रामपुर के सभी नवाब गुणग्राही होते रहे हैं और वाजिद अली शाह के पतन के पश्चात् तो रामपुर-दरबार गुणियों, कलाकारों, विद्वानों और कवियों के लिए माँ की गोद बन गया। बिन्दादीन-कालकादीन के घराने का सम्बन्ध भी रामपुर दरबार के साथ तभी आया।

रामपुर के स्व० नवाब हामिद अली खाँ का स्वर्गवास १९३० ई० में हुआ। बिन्दादीन जी का स्वर्गवास १९१५ ई० में हो चुका था, जो नवाब हामिद अली खाँ के कृपापात्र थे। नवाब हामिद अली खाँ के आश्रय में जब श्री बिन्दादीन जी के बालक जगन्नाथ प्रसाद और बैजनाथ प्रसाद पहुँचे, उन्हें राजकीय अनुग्रह मिला। इन दोनों बालकों का प्यार के नाम क्रमशः 'अच्छन' और 'लुच्चू' नवाब हामिद अली खाँ ने रखे।

भातखण्डे-संगीतशास्त्र का चौथा भाग जिन्होंने पढ़ा है, वे जानते हैं कि स्व० नवाब हामिद अली खाँ गुणग्राहक होने के साथ ही साथ गुणी भी थे। भातखण्डे जी उन के विधिवत् शिष्य हुए थे। अच्छन भैया भी नवाब रामपुर के 'गंडाबन्द शागिर्द थे। वर्तमान रामपुर नरेश नवाब रज़ा अली खाँ को अपने बचपन से ही अच्छन भैया का सत्संग प्राप्त हुआ और अच्छन भैया की याद उन्हें जब-तब आती है।

रामपुर-दरबार के बुजुर्ग सोज़ खाँ स्व० नवाब मिर्ज़ा बिन्दादीन-कालकादीन के बाल सखाओं में थे। अच्छन भैया उन्हें चचामियाँ कहते थे। चचामियाँ इन पंक्तियों के विनम्र लेखक से कहा था कि अच्छन की उम्र जब अठारह साल की थी, तब तक उसकी, तिताले की तालीम पर अठारह लाख रुपया खर्च हो चुका था। बिन्दानीन-कालकादीन ने अपने समय के गायकों, तन्त्रीवादकों, पखावजियों और तबलियों को नौकर रखकर अच्छन भैया के मानस में वंश-वंश के संस्कार आरोपित किए थे। गाने-बजाने वालों की प्रसिद्ध कहावत है—"हर कूचे नेमत होती है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् प्रत्येक घराने की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं। अपने बड़ों के लाड़ले अच्छन को अनगिनत कूचों की नेमतें खुलकर बटोरने का अनुपम अवसर मिला। इसीलिए जब वे खयाल गाते, तो उनके गले की फिरत और तैयारी, साथ-साथ उसमें लय के अनूठे चमत्कार, देखकर बड़े-बड़े गवैये हैरत में पड़ जाते। अच्छन भैया जब तबला हाथ में लेते, तो 'बायें' बुल-बुल बोलने लगती और ढोलक यदि उनके हाथ में आ जाती, तो कहरवा और दादरा जैसे ताल मानों मूर्त होकर मचलने लगते, सड़क रुक जाती।

इस घराने का विशिष्ट कार्य नारी के संयोगिनी रूप का अभिनय है। नायिका भेद का, विभिन्न नायिकाओं की संयोग श्रृंगार-सम्बन्धिनी दशाओं और चेष्टाओं का, वर्णन कवियों ने किया, उनका चित्रण चित्रकारों ने किया, परन्तु उन नायिकाओं का हँसता-खेलता, रीझता-खीझता, रूठता-मनता, इठलाता-मचलता सजीव और मूर्तरूप अच्छन भैया के उस घराने ने प्रस्तुत किया, जिसे नरेशों का आश्रय और कवियों तथा साहित्य-मर्मज्ञ रसिकों का सत्संग प्रतिक्षण प्राप्त रहा। बिन्दादीन की ठुमरियों और दादरों पर इस सत्संग का प्रभाव स्पष्ट है।

नारी के रूपों और अवस्थाओं का अभिनय अच्छन भैया के जीवन का सत्य बन गया था। नारी सुलभ भीरुता, नज़ाकत और सुकुमारता उनके पोर-पोर में थी और यह उनका दोष नही, गुण था।

साँवला रंग, मोटीनाक और उसके पास एक बड़ा काला मसा, साथ ही साथ तुन्दिल शरीर। अच्छन भैया के व्यक्तित्व में कुछ भी तो आकर्षक न था। अच्छन भैया कहते थे—"हुस्न तो अदाओं का जादू है, मूरत में क्या रखा है।" एक बार अच्छन भैया ने एक ठुमरी शुरू की—'मोहे, छेरत मोहन गिरिधारी रे।' एक विनोदी मित्र बोले—"भैया, ज़रा आईने में अपनी शक्ल तो देखो, मोहन कोई पागल हैं, जो तुम्हें छेड़ें।" महफ़िल में ठट्ठा लगा। अच्छन भैया तनिक मुसकराये, उनकी भौंहें खिचीं, जैसे दो कमानें साथ-साथ खिची हों और आँख भर भैया ने उस सज्जन की ओर देखा, जैसे अचूक तीर सनसनाता हुआ निशाने पर बैठा हो और फिर हल्की सी मुस्कराहट, जैसे बिजली चमकी हो और ज़रा सा मुँह फेर लिया। महफ़िल में हाय-हाय मच गई। हर साहबे दिल सीना थाम कर रह गया। भैया बोले—"मोहन, हमें अब तो छेड़ेंगे।" हर जुबान पर था—"छेड़ेंगे और जुरूर छेड़ेंगे।"

इसी ठुमरी से सम्बद्ध एक घटना और। ठुमरी पर एक सज्जन ने ऐतराज किया—"गिरिधारी, का काम गोवर्द्धन उठाकर मुसीबतजदः लोगों की रक्षा करना है, गोपियों से छेड़-छाड़ करना नहीं, यदि 'गिरिधारी' ने छेड़छाड़ की और अँगुलियों में भी सबसे छोटी, और वह भी बाएँ हाथ अँगुली पर टिका हुआ गोवर्द्धन लुढ़क गया, तो सारी गोपियों का सुरमा बन जाएगा।" एक साहित्य मर्मज्ञ मित्र बोले—"केवल 'गिरिधारी' नहीं, 'मोहन गिरिधारी' छेड़-छाड़कर रहे हैं। काव्य का तात्पर्य समझने के लिए सहृदयता चाहिए। जो 'गोवर्द्धनधारी' हैं और बाएँ हाथ की छोटी अँगुली पर गोवर्द्धन जैसा बड़ा पर्वत उठा सकते हैं, धारण कर सकते हैं, वे अपने हृदय जैसे विशाल और पुष्ट स्थल पर्वत पर क्या दो-दो पर्वत धारण नहीं कर सकते, ठुमरी में 'गिरधारी' हैं, न गोवर्द्धन की चर्चा है और न अँगुली की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोचिए, तो वह 'गिरिधारी' किस प्रकार के हैं, जो 'मोहन' हैं।"

इस व्याख्या पर भैया फड़क गए और साहित्य-मर्मज्ञ सज्जन से लिपट कर बोले—"वाह वाह !! हारा हुआ मुकदमा जिता लिया, तुम हो खानदानी पंडित, लेकिन यार हम तो गिरिधारी का मतलब गोवर्द्धनधारी ही समझते थे।

आपत्ति करने वाले सज्जन थे रामपुर के स्व० राजकवि राधा मोहन चतुर्वेदी और व्याख्याकार था, उन्हीं चतुर्वेदी जी का अभिन्न सखा और संस्मरणों का लेखक।

किसी भी ताल की एक आवृति में आने वाला काल 'लय' कहलाता है। मात्राओं और भागों के आधार पर ताल का अभ्यास किया जाता है, परन्तु उस अभ्यास का परिणाम आवृत्ति के काल का अखण्ड रूप में, सिद्ध हो जाना है। जो लोग मात्राओं और ताल-भागों के आधार पर लय बरतते हैं, उनकी लय हिसाबी लय कहलाती है और यह घटिया बात है। जो ताल की आवृत्ति के काल को अखण्ड रूप में देखकर लय बरतते हैं, वही सिद्ध लय कलाकार हैं और उनकी लय 'जिगरी लय' कहलाती है, यह लय बढ़िया है। जो बजाज़ एक-एक इंच नाप कर कपड़ा फाड़ता है अर्थात् गज भर कपड़ा फाड़ने के अवसरों पर गिरह या इंच में हिसाब लगाता है, उसका अभ्यास तो अपरिपक्व है, जो बजाज़ ऐसी नजर रखे कि बग़ैर नापे उसके हाथ ठीक गज भर का टुकड़ा थान से फटे, वही अपने काम में माहिर है। कालरूपी 'थान' से आवृत्ति रूपी टुकड़े को बगैर नापे, ठीक-ठीक अलग कर देने वाले सिद्ध लय कलाकार अच्छन भैया थे। वे लय के बादशाह थे। समुद्र की सभी तरंगों में तरंगत्व होता है, परन्तु आकार-प्रकार में कोई भी दो तरंगें समान और सदृश नहीं होतीं। यही स्थिति उन लय-तरंगों की थी, जो अच्छन भैया के प्रदर्शन रूपी समुद्र में उमड़ती थीं। उन तरंगों का वर्गीकरण असम्भव था और उनके द्वारा प्रयुक्त लय रूपों का नामकरण असम्भव था। मुनीमों की भाँति हिसाब जोड़ कर लय-प्रयोग का अभिमान करने वालों की बुद्धि ऐसे अवसरों पर चकरा जाती थी। •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुआरिफुन्नग़मात की कुछ शंकाएँ और उनका समाधान

बीसवीं शती ई० के आरम्भ १९१० में स्व० भातखण्डेजी के प्रयत्नों से 'लक्ष्य-संगीत', नामक संस्कृत-ग्रन्थ की रचना हो चुकी थी। उसके प्रकाशित होने पर लोग इतना ही जान पाए थे कि यह ग्रन्थ किसी 'चतुर पण्डित' नामक व्यक्ति की रचना है, जो प्रचलित राग-पद्धति के अनुसार है। 'चतुर पण्डित' का निवास-स्थान भरत-खण्ड है।

सन् १९१६ ई० से पूर्व स्व० भातखण्डेजी ने 'लक्ष्यसंगीत' के विषय में कहा था—

(क) 'लक्ष्यसंगीत' ग्रन्थ भी हिन्दुस्तानी पद्धति का है, उसमें भी डेढ़सौ से अधिक राग नहीं हैं। (भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग १, पृष्ठ २५)

(ख) हमें लक्ष्यसंगीतकार का मत स्वीकार कर लेना चाहिए, बस यही काफ़ी होगा। वह मत हमें भी पसन्द है। (वही, पृ० ७४)

(ग) यह रचना 'रागतरंगणी' के पश्चात् की और हमारी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की ही रचना है। (वही, पृ० १०९)

(घ) लक्ष्यसंगीतकार के समय भी संस्कृत-ग्रन्थ प्राप्त थे और वे ग्रन्थकर्त्ता ने देखे भी थे। (वही, पृष्ठ १२१)

(ङ) लक्ष्यसंगीतकार ने इन मध्यकालीन ग्रन्थकारों के लिए जो-कुछ कहा है, वह कठोर दिखाई देने पर भी असत्य नहीं है। (वही, पृष्ठ १२१)

(च) लक्ष्यसंगीतकार ने अपने ग्रन्थ के अन्त में कुछ वर्गीकरण दिए हैं, उनमें यह वर्गीकरण नहीं है, अतः उसे मैंने तुम्हें बता दिया। (वही, पृष्ठ १३७)

(छ) इस (लक्ष्यसंगीत) के लेखक (चतुर पण्डित) का मैं अनुयायी हूँ। इस सम्बन्ध में तुम्हें पहले ही विस्तारपूर्वक बता चुका हूँ। (वही, पृष्ठ १४४)

(ज) मैं अपने प्रचलित संगीत के लिए 'लक्ष्यसंगीत' को ही आधार-ग्रन्थ मानता हूँ। (वही, पृष्ठ २१८)

(झ) मैंने 'लक्ष्यसंगीत' को पसन्द किया है। उससे अधिक उपयोगी ग्रन्थ प्राप्त न होने तक मैं तुम्हें उसी ग्रन्थ की पद्धति के अनुसार चलने का अनुरोध करूँगा।

(ञ) लक्ष्यसंगीतकार ने जो भी प्राचीन ग्रन्थों का अनुशीलन किया होगा, परन्तु अर्वाचीन संगीत के प्रति भी उसका प्रेम अतिशय रहा होगा, ऐसा दिखाई देता है। (वही, पृष्ठ २४४)

(ट) मैंने तुम लोगों से 'लक्ष्यसंगीत' ग्रन्थ की पद्धति को स्वीकार करने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार-बार आग्रह किया है, इसका यह अर्थ नहीं की 'चतुर पण्डित' कोई अलौकिक बुद्धि का व्यक्ति था। (वही, पृष्ठ २६५)

(ठ) हमारी पद्धति 'लक्ष्यसंगीत' ग्रन्थ के अनुसार है और 'लक्ष्यसंगीत' संस्कृत-ग्रन्थों के अनुसार है। (भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग २, पृ० १००)

(ड) आजकल की हमारी संगीत-पद्धति को देखते हुए 'लक्ष्यसंगीत' जितना उपयोगी ग्रन्थ शायद ही प्राप्त हो सकेगा। (भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग १, पृ० १८९)

(ढ) 'चतुर पंडित' अर्वाचीन संगीत-परिवर्तन का तिरस्कार करने वाला नहीं था। (भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग ३, पृ० ११९)

स्वर्गीय भातखण्डे जी के इन कथनों ने 'लक्ष्यसंगीत' और उसके तथाकथित रचयिता 'चतुर पंडित' के विषय में यह धारणा उत्पन्न कर दी थी कि भातखण्डे जी को 'चतुर पंडित' नामक किसी अज्ञातपरिचय ग्रन्थकार का ग्रन्थ खोज करते-करते उपलब्ध हुआ है, जो संगीत के प्रचलित रूप की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। भातखण्डेजो एक निष्पक्ष व्यक्ति होने के कारण 'चतुर पंडित' के अनुयायी हैं और भरत या शार्ङ्गदेव के प्रति जिन कठोर शब्दों का प्रयोग भातखण्डेजी करते हैं, वे उनके अपने नहीं, अपितु 'चतुर पंडित' के हैं, जो कि रागतरंगिणीकार के पश्चात् कभी हुआ है। 'लक्ष्यसंगीत' संस्कृत-ग्रन्थों के अनुसार है और उसकी तुलना में कोई ग्रन्थ नहीं ठहरता।

'चतुर पंडित' और 'लक्ष्यसंगीत' के विषय में भातखण्डे जी के कथनों और लेखों ने एक उत्सुकता और एक विशिष्ट कौतूहल की सृष्टि कर दी थी। बड़े-बड़े गुणी, राजा, ताल्लुकेदार, नवाब इत्यादि भातखण्डेजी की ओर उन्मुख हो गए थे और उनके भक्त बन गए थे। जो ग्रन्थ भारत के किसी भी विद्वान् को न मिला हो, परम उपयोगी हो, संस्कृत-भाषा में हो, भरत और शार्ङ्गदेव को कठोर बातें सुनाने तक से न चूकता हो, उसका उद्धार करने वाला तपस्वी व्यक्ति भला संगीत प्रेमी विभिन्न वर्गों के लिए श्रद्धा का पात्र क्यों न बनता।

भातखण्डेजी ने इस कौशल और चतुरता से सत्य को छिपाया कि वर्षों तक लोग इसी भ्रम में पड़े रहे कि 'लक्ष्यसंगीत' सौ-दो सौ वर्ष पुराना ग्रन्थ है। संस्कृत-भाषा और उसमें लिखे हुए ग्रन्थों के प्रति लोगों की श्रद्धा का उपयोग भातखण्डेजी ने इस नीतिज्ञता से किया कि बड़े-बड़े लोग चक्कर में आकर उनके चरण चूमने लगे। भातखण्डेजी ने अपनी ही मान्यताओं को 'चतुर पंडित' की उक्तियों का जामा पहनाकर चमत्कार कर दिया। वास्तविकता कोई न भाँप सका।

इस नीति से अत्यन्त दूरवर्ती परिणाम हुए। रामपुर-दरबार की दृष्टि भातखण्डे जी की ओर आकृष्ट हुई। बिलसी (जिला बदायूँ) के रईस नवाब छम्मन साहब, अकबरपुर के रईस राजा मुहम्मद नवाबअली खाँ (ठाकुर नवाब अली खाँ) जैसे महान् राग-मर्मज्ञ भातखण्डेजी से 'लक्ष्यसंगीत' पढ़ने के लिए उत्सुक हुए। छम्मन साहब से सम्पर्क का परिणाम भातखण्डे जी का रामपुर-दरबार में प्रवेश हुआ। राग-ज्ञान के सम्बन्ध में भातखण्डे जी का भाग्य वस्तुतः यहीं से खुला। रामपुर के स्वर्गीय नवाब हामिद अली खाँ की शिष्यता, नियमपूर्वक गण्डा बँधवाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भातखण्डे जी ने अंगीकृत की, जिसका परिणाम यह हुआ कि रामपुर-नवाब के गुरु वजीर खाँ का द्वार भी भातखण्डेजी के लिए खुल गया। छम्मन साहब जैसे गुणी तो भातखण्डे जी को रागों और चीज़ों की शिक्षा उदारतापूर्वक देते ही थे।

रामपुर से होने वाले लाभ के विषय में स्वयं को ऋणी मानते हुए भातखण्डे जी का कथन है—

(क) रामपुर में तानसेन-परम्परा की बड़ी मान्यता है।·····मेरे गुरु (नवाब साहब रामपुर) खयाल तो प्रायः सुनते भी नहीं। (भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग ४, पृ० ६५६)

(ख) रामपुर के नवाब साहब ने और भी एक विशेष बात मुझसे कही थी। उन्होंने बताया कि 'रे मप' ये स्वर दो बार कहकर फिर गांधार से षड्ज तक जाने में देसी राग अत्यन्त स्पष्ट तथा पृथक् होगा। (वही, पृ० ४९७)

(ग) सआदतअली खाँ (छम्मन साहेब)······की और मेरी घनिष्ठ मित्रता थी मैं रामपुर बहुधा उनके कारण और उनके लिए ही जाता रहता था। उनके पास से मैंने कई बातें सीखीं। उत्तर के रागों के भेद मैंने उनकी संगति से अच्छी प्रकार समझे। (वही, पृ० ३८७)

'लक्ष्यसंगीत' के ही कारण ठा० नवाब अली खाँ भातखण्डे जी से प्रभावित हुए और 'लक्ष्यसंगीत' ने ही भातखण्डे जी को नवाब रामपुर एवं छम्मन साहब का कृपापात्र बना दिया।

दिल्ली की अखिल-भारतीय संगीत-परिषद् के अध्यक्ष रामपुर के स्वर्गीय नवाब हामिद अली खाँ थे और बड़ौदा की अखिल-भारतीय संगीत-परिषद् के अध्यक्ष ठाकुर नवाब अली खाँ। भातखण्डेजी के प्रयत्नों ने ही इन गुण-ग्राहक रईसों का उपयोग संगीतोद्धार के कार्य में किया था।

इस कौशल से स्वर्गीय भातखण्डेजी ने रामपुर दरबार के गुणियों से भी हजारों बन्दिशें प्राप्त कीं और उन्हें स्वरलिपि-बद्ध कर दिया और 'लक्ष्य-संगीत' की ही बदौलत ठाकुर नवाब अली खाँ को अपना शिष्य बना लिया। सफल होने पर भातखण्डेजी ने 'लक्ष्य-संगीत' का भेद खोल दिया था।

अपने ग्रन्थ 'मुआरिफुन्नग़तमात' की भूमिका में ठाकुर साहब कहते हैं—

इसी दृष्टि से प्रचलित संगीत की व्यवस्था के लिए भी एक ग्रन्थ की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता की पूर्ति 'चतुर पंडित' ने की, जो संगीत-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् हैं। उन्होंने जो ग्रन्थ लिखा है, उसका नाम 'लक्ष्यसंगीत' है और इस युग में यही एक ऐसा ग्रन्थ है,जो वर्तमान संगीत की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

'लक्ष्यसंगीत' की भाषा संस्कृत है, जिसके समझने वाले हमारे प्रदेश में बहुत कम हैं, इसीलिए अपने गुरु एवं माननीय मित्र पं० विष्णुनारायण भातखण्डे साहब बी० ए०, एल्-एल्०, बी० वकील हाई कोर्ट बम्बई के आदेशानुसार मैंने इस ग्रन्थ की रचना 'लक्ष्यसंगीत' के सिद्धान्तों के अनुसार उर्दू में की। उक्त पंडितजी के उत्तम शोधकार्य और अनुपम योग्यता का ही परिणाम है कि यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। यदि पद-पद पर वे सहायता न करते, तो मेरे द्वारा यह कार्य होना कठिन था।

(मूल पुस्तक, पृ० २६-२७ का अनुवाद)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठाकुर साहब के उपर्युक्त शब्द बताते हैं कि भातखण्डे जी ने अपनी बुद्धिमत्ता और व्यवहारकुशलता से ठाकुर साहब जैसे गुणी को कितना वशीभूत कर लिया था। ठाकुर साहब के ही प्रयत्न से काले नज़ीर खाँ जैसे श्रेष्ठ गायक भी भातखण्डे जी के शिष्य होकर 'लक्ष्यसंगीत' कण्ठाग्र करने लगे थे।

भातखण्डे जी ने निम्नलिखित शब्दों में ठाकुर साहब के ग्रन्थ के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं—

मेरी इस पद्धति का उत्तर-भारत में, प्रचार करने के लिए (जहाँ उर्दू का अधिक प्रचलन है) मेरे मित्र और अधिवेशन के सभापति, लखनऊ के ठाकुर एम्० (मुहम्मद) नवाबअली खाँ ने उर्दू में मेरे ही विचारों के आधार पर 'मुआरिफुन्नग़मात' ग्रन्थ की रचना की है। वे मेरे वर्गीकरण से संतुष्ट हैं और चाहते हैं कि इसका खूब प्रचार हो और मुझे यह कहते हर्ष होता है कि इतने थोड़े समय में ही इसका दूसरा बड़ा संस्करण छप चुका है।

(उत्तर-भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६२)

भातखण्डेजी के उपर्युक्त शब्द बड़ौदा की संगीत परिषद् में दिए हुए उनके लिखित भाषण का अंश हैं।

ठाकुर साहब शास्त्र (!) के क्षेत्र में भातखण्डेजी से प्रभावित थे, कला के क्षेत्र में नहीं। ठाकुर साहब बासत खाँ के पुत्र उस्ताद मुहम्मद अली खाँ के शिष्य थे।

मुआरिफुन्नग़मात के द्वितीय और तृतीय भाग में ध्रुवपदों और होरियों का संग्रह है। इन ग्रन्थों में जो बन्दिशें दी हुई हैं, उनकी स्वरलिपि में भातखण्डेजी की स्वरलिपियों से अन्तर है। इस विषय में भातखण्डेजी का कथन है—

"मेरे स्नेही एवं गुरुबन्धु राजा नवाब अली खाँ ने वहाँ के मुहम्मद अली खाँ के पास से सम्पादन करके अपने मुआरिफुन्नग़मात ग्रन्थ में कुछ प्रकार प्रकाशित किए हैं। यद्यपि उनके व मेरे पठन में थोड़ा भेद है, परन्तु वैसा भेद तो रहता ही है।" (भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग ४ पृ० ३८९)

भातखण्डेजी ने कहा है—

"लाइब्रेरियों में संगीत-सम्बन्धी, उर्दू तथा पर्शियन भाषा के कई ग्रन्थ हैं। मुझे वह भाषा न आने के कारण उनका उपयोग मैं नहीं कर सका।"

(वही, पृ० ७६०)

यदि भातखण्डे जी को उर्दू आती होती, तो वे यह देखते कि एक ही चीज की, उनकी और ठाकुर नवाब अली खाँ की स्वरलिपियों में थोड़ा नहीं बहुत अन्तर है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ठाकुर साहब ने भातखण्डे जी को 'संगीतशास्त्र' का अनुपम पंडित कहा है, 'संगीत-कला' का नहीं। भातखण्डेजी द्वारा रचित लक्षण-गीतों के विषय में ठाकुर साहब का कथन है—

"मुझे यह आशंका है कि कदाचित् इन लक्षणगीतों पर यह आक्षेप किया जाए कि इनमें कोई बात (विशेषता) नहीं है और न कोई खूबसूरत तान है।"

(मुआरिफुन्नग़मात, प्रथम भाग मूल, पृ० ६२, अनुवाद)

रागों के रूप के सम्बन्ध में भी अनेक स्थानों पर ठाकुर साहब का मतैक्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भातखण्डे जी से नहीं है। ठाकुर साहब ने ललित में कोमल धैवत ही माना है, जबकि भातखण्डे जी को ललित में तीव्र धैवत के प्रति परम आग्रह है।

अस्तु, भातखण्डे जी का लक्ष्य उत्तर-प्रदेश के गुणियों के पेट से विद्या और तअल्लुकेदारों की जेब से रुपया निकालकर एक संगीत-विद्यालय खोलना था। उन्हें इस प्रदेश से ये दोनों वस्तुएँ मिलीं। लखनऊ में 'मैरिस-कॉलेज' खुला और ठाकुर साहब इसके प्रेसिडैन्ट चुने गए। ठाकुर साहब को 'लक्ष्यसंगीत' में निहित ज्ञान मिला।

उत्तर-प्रदेश के साधनों का भरपूर उपयोग भातखण्डेजी ने अपनी पद्धति के प्रचार के लिए किया।

'मुआरिफुन्नग़मात' प्रथम भाग में ठाकुर साहब द्वारा उठाए गए प्रश्नों का वास्तविक महत्त्व जानने के लिए इस विस्तृत पृष्ठभूमि के ज्ञान की आवश्यकता थी, इसीलिए प्रमाण-सहित यह वस्तुस्थिति स्पष्ट की गई।

ठाकुर साहब की कुछ मान्यताएँ

(क) विद्यार्थियों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि वर्तमान संगीत सीखने के लिए केवल इन्हीं बारह स्वरों के समझने की जरूरत है। (मुआरिफुन्नग़मात, हिन्दी-अनुवाद, पृ० २२)

(ख) श्रुतियों का प्रयोग वर्तमान राग-अध्याय में नहीं है। (वही, पृ० २२)

(ग) श्रुतियों की भाँति ग्राम भी वर्तमान संगीत में प्रचलित नहीं है। (वही, पृ० ३२)

(घ) किसी विद्वान् ने षड्ज-ग्राम और मध्यम-ग्राम मिला दिए हैं, क्योंकि आज केवल षड्ज ग्राम प्रचलित है। (वही, पृ० ३३)

(ङ) आजकल की कोमल ऋषभ 'रत्नाकर' की शुद्ध ऋषभ है और आज कल की शुद्ध ऋषभ 'रत्नाकर' की शुद्ध गांधार मानी गई है। (वही, पृ० १८)

(च) हमारी तीव्र मध्यम को उन्होंने (शार्ङ्गदेव ने) विकृत पंचम माना है। (वही, पृ० १८)

(छ) ग्रन्थों के सिद्धान्त से मद्रासी ठीक हैं और हम ग़लत हैं। मद्रासी स्वर बहुत से ग्रन्थों के भी शुद्ध स्वर हैं और 'रत्नाकर' जो सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, इन्हीं स्वरों को शुद्ध मानता है, लेकिन एक भी प्राचीन ग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो हमारे स्वरों को शुद्ध मानता हो। (वही, पृ० १७)

(ज) हम पिछले छोड़े हुए रागों को नहीं गाते, फिर हमको पुराने स्वरों से क्या मतलब ? (वही, पृ० १८)

(झ) श्रुतियों का वर्तमान संगीत से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह केवल सूत और मींड पर निर्भर हैं। (वही, पृ० २२)

(ञ) प्राचीन काल में ठाठ नहीं थे, इसलिए ग्रन्थों की भाषा में यह शुद्ध ठाठ हमारा षड्ज ग्राम हुआ। (वही, पृ० ३४)

(ट) ग्रन्थकारों ने षड्ज को हमेशा चौथी श्रुति पर ही माना है और आज कल के स्वरों की षड्ज पहली श्रुति पर क़ायम की गई है। (वही, पृ० २१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ठ) 'पंचम' एक श्रुति उतरते ही तीव्र मध्यम बन जाती थी और ग्रन्थ के जितने रागों में तीव्र मध्यम आती थी, वे सब मध्यम ग्राम से गाए जाते थे तथा शुद्ध मध्यम के राग और रागिनी षड्ज ग्राम से। (वही, पृ० ३३)

(ड) कुछ गायक कहते हैं कि श्री राग को ऋषभ और धैवत से पूर्वी की ऋषभ और धैवत एक श्रुति ऊँची है, किन्तु इस प्रकार की बातों से विवाद (तकरार) पैदा होता है और परिणाम कुछ नहीं होता। (वही, पृ० २३३)

इन मान्यताओं के कारण ठाकुर साहब जैसा राग-मर्मज्ञ मार्ग से उसी प्रकार भटक गया, जिस प्रकार आज के सहस्रों व्यक्ति भटक गए हैं। ये मान्यताएं ठाकुर साहब को भातखण्डे जी या 'लक्ष्यसंगीत' से प्रसाद-रूप में मिली थीं, जिन्होंने मुहम्मद अली खाँ सेनिए जैसे स्वर-मर्मज्ञ के शिष्य नवावअली खाँ के मन में गायकों द्वारा की जाने वाली सूक्ष्म स्वरों की चर्चा को 'तकरार' का कारण सिद्ध कर दिया। भारतीय संगीत के लिए इसकी अपेक्षा बड़ा दुर्भाग्य असम्भव है।

ठाकुर साहब हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते थे और मियाँ की मलार हो या बिलासख़ानी तोड़ी, उसे हारमोनियम में बजाए बिना रहते नहीं थे; ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार भातखण्डे जी के परम मित्र स्व० फैयाज़ खाँ इन रागों को प्रस्तुत करते समय भी साथ में हारमोनियम अवश्य 'संगत' के लिए रखते थे। 'लक्ष्यसंगीत' ने ऐसे लोगों के लिए बड़ी सुविधा (!) उत्पन्न कर दी और संगीत में से श्रुतियों का झंझट (!) हटा दिया।

स्व० अल्लाहबन्दे खाँ और उनके पुत्र नसीरुद्दीन खाँ जैसे लोगों से इन मान्यताओं के भक्तों की कभी न बनी और इसी विरोध के कारण इन मान्यताओं के उपासकों ने 'खयाल' के प्रति विशेष पक्षपात किया, ध्रुवपद की उपेक्षा की, क्योंकि आलाप के मर्मज्ञ गुणी 'बारह स्वरों' के कारागार में रागों को बन्दी करने के लिए प्रस्तुत न थे और उन्होंने अखिल-भारतीय संगीत-परिषदों में अपना मत डटकर प्रकट किया था, परन्तु नक्कारखाने में तूती की कौन सुनता! आज भी उन गुणियों के वंशधरों की बात कोई नहीं सुनता और उन्हें विद्यार्थी ही नहीं मिलते।

इन मान्यताओं को पढ़कर जिज्ञासु व्यक्ति मन में ये प्रश्न उत्पन्न होते हैं—

(१) जब आज के रागों से श्रुतियों का कोई सम्बन्ध ही नहीं, तब इस कथन का क्या अर्थ है कि 'आजकल के स्वरों की षड्ज पहली श्रुति पर क़ायम की गई है'? इस प्रकार के वाक्यों को आडम्बर-मात्र ही कहा जाएगा।

(२) स्वरों की सूक्ष्म अवस्थाओं की चर्चा में यदि स्वर-सिद्ध गायकों को प्रमाण न माना जाए, तो बढ़इयों अथवा हलवाइयों की बिरादरी जमा करके उनसे इस विषय में निर्णय लिया जाए?

(३) शार्ङ्गदेव ने 'सा' से चार श्रुतियों के पश्चात् तो कोई ऋषभ नहीं बताया है और भातखण्डेजी तथा ठाकुर साहब का शुद्ध ऋषभ 'सा' से चार श्रुतियों के पश्चात् हैं; भला यह शुद्ध ऋषभ 'रत्नाकर' में कैसे घुसकर उसका शुद्ध गांधार हो गया?

(४) तीव्र मध्यम और पञ्चम में दो श्रुतियों का अन्तर भातखण्डेजी मानते हैं, ठाकुर साहब ने 'एक श्रुति उतरे पंचम' को भला तीव्र मध्यम कैसे कह दिया?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(५) "आजकल का कोमल ऋषभ 'रत्नाकार' का शुद्ध ऋषभ हैं।" यह बात ठाकुर साहब कहाँ से ले आए ? व्यंकटमखी का मत भला शार्ङ्गदेव के मत्थे कैसे मढ़ दिया गया ?

(६) "श्रुतियों की भाँति ग्राम भी वर्तमान संगीत में प्रचलित नहीं है।" और "आजकल केवल षड्ज-ग्राम प्रचलित है।" जैसे परस्पर विरोधी वाक्यों का गोरख-धन्धा क्या अर्थ रखता है ?

(७) ये 'नए' और 'पुराने' स्वर क्या पदार्थ हैं ? स्वरों के नाम नए हो सकते हैं, स्वर भला कैसे पुराने हो जाएँगे ?

(८) "षड्जग्राम के रागों और रागिनियों में शुद्ध मध्यम होता था और मध्यमग्राम की रागिनियों में तीव्र मध्यम।" यह विलक्षण दृष्टिकोण ठाकुर साहब कहाँ से ले आए। "आजकल केवल षड्जग्राम प्रचलित है" और "तीव्र मध्यम वाले राग मध्यमग्राम के हैं।" ये दोनों बातें तो परस्पर विरोधी हैं। तोड़ी, पूरवी, मारवा, कल्याण जैसे ठाठों के राग तो ठाकुर साहब की दृष्टि से मध्यमग्राम के हुए ? "कुछ न समझे, खुदा करे कोई।" क्या ठाकुर साहब को ग्राम के लक्षण का भी ज्ञान था ?

(९) ठाकुर साहब ने ललित में दोनों मध्यम, सब लोगों की भाँति मानते हुए इस राग को भैरव ठाठ में रखा है। भैरव ठाठ, शुद्ध मध्यम के कारण 'षड्ज-ग्राम' हुआ। इसमें भला ललित कैसे आ गया, जिसका 'म' ठाकुर साहब के ही कहने के अनुसार मध्यमग्राम का चिह्न है। ठाकुर साहब ने जो कुछ भी लिखा है, उस पर कभी विचार भी किया था ?

(१०) "एक भी प्राचीन ग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो हमारे स्वरों को शुद्ध मानता हो।" कहकर "ग्रन्थों की भाषा में यह शुद्ध ठाठ हमारा षड्जग्राम हुआ।" कहना भला कहाँ तक संगत है। जब ठाकुर साहब के स्वरों को शुद्ध मानने वाला कोई ग्रन्थ ही नहीं, तब ग्रन्थों के अनुसार उनका शुद्ध ठाठ 'षड्जग्राम' कैसे हो गया ?

ठाकुर साहब की मान्यताओं को पढ़कर बेचारे विद्यार्थी उलझते हैं, परन्तु ठाकुर साहब के ग्रन्थ पर भातखण्डेजी के समर्थन की मुहर लगी है और भातखण्डेजी से मतभेद प्रकट करना संगीत क्षेत्र में 'नास्तिकता' से कुछ कम कोटि का अपराध नहीं समझा जाता।

मुसलमान गायक श्रद्धालु होते हैं और बुजुर्गों के ऊपर कीचड़ नहीं उछाला करते। ठाकुर साहब के ग्रन्थ में प्रतिपादित ऐसे ही विचारों ने उर्दू-पाठकों के मन में भी भरत और शार्ङ्गदेव के प्रति व्यर्थ ही अश्रद्धा जगा दी। शेखों; सैयदों, मुग़लों या पठानों में ठाकुर साहब के ग्रन्थ से संगीत का प्रचार नहीं हुआ। संगीतजीवी मुसलमान पहले भी गाते-बजाते थे और ठाकुर साहब जैसे लोगों के उस्ताद थे। हाँ उन्हें 'लक्ष्य-संगीत' नहीं आता था।

ठाकुर साहब के प्रश्न, उनका आधार और समाधान

प्र० १—'रत्नाकर' में बाईस श्रुतियों का उपयोग क्या है ? किन अवसरों पर इनके प्रयोग का निर्देश है और उनका क्या निश्चित नियम है ?

(मुआरिफुन्नग़मात मूल, पृष्ठ २५, अनुवाद)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधार—श्रुतिजात्युपयोगः क्व क्रियेत नियमैश्च कैः।

(लक्ष्यसंगीत, पृ० ६)

अर्थात्—श्रुतियों की 'जातियों' (दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु, मध्या) का उपयोग कहाँ और किन नियमों के अनुसार किया जाता है ?

समाधान—वास्तव में ठाकुर साहब का प्रश्न 'लक्ष्यसंगीत' के प्रश्न से भिन्न हो गया है। 'लक्ष्यसंगीत' ने श्रुतियों की जातियों के उपयोग के विषय में प्रश्न उठाया है और ठाकुर साहब श्रुतियों के उपयोग का प्रश्न उठा रहे हैं। यहाँ ठाकुर साहब के प्रश्न का उत्तर है।

भरत ने नवश्रुति, त्रयोदशश्रुति और सप्तश्रुति जैसे प्राकृत अन्तरालों के आधार पर अपने स्वरों की सिद्धि की है। इन अन्तरालों के नाम क्रमशः षड्ज्-मध्यम-भाव, षड्ज-पञ्चम-भाव और मध्यम-धैवत-भाव हैं। स्वर-सिद्धि के पश्चात् ग्रामों की प्राप्ति कीहै और षड्ज ग्राम के सप्तक के आधार पर चार सारणाओं द्वारा बाईस श्रुतियों की प्राप्ति की है। इस प्रकार सर्वप्रथम स्वरों के प्राकृतिक सम्बन्धों का, उनके द्वारा सप्तक का, षड्जग्राम के मूल सप्तक में ऋषभ-पञ्चम में असंवाद देखने के कारण पञ्चम को उतारकर ऋषभ का संवादी बनाने से मध्यम ग्राम का और तत्पश्चात् श्रुतियों का और उनकी संख्या का ज्ञान हुआ। इस प्रकार 'श्रुति-सिद्धांत का मूल प्रयोजन स्वरों की पारस्परिक दूरी को जानना है'। श्रुतियों के ज्ञान पश्चात् यह निश्चय हुआ है कि किन-किन स्वरों की स्थिति कितनी श्रुतियों के पश्चात् है : भरत ने षड्ज की अपेक्षा ऋषभ की ऊँचाई बताने के लिए ऋषभ की श्रुतियाँ सब स्वरों की श्रुतियों से पूर्व बताई हैं।

'रत्नाकर' में श्रुतियों का मूल उपयोग यही है।

साधारणतया लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि सप्तक की बाईस श्रुतियों में कदाचित् क्रमशः अतिकोमल, कोमल, तीव्र, तीव्रतर इत्यादि स्वर मिल जाते होंगे; ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता, तो मूर्च्छनाओं की कोई आवश्यकता न थी।

षड्जग्राम की विभिन्न मूर्च्छनाओं की ओर निम्नलिखित दृष्टि से देखा जाना चाहिए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१.	स्वर—	सा	रि	ग	म	प	ध	नि	सां
	श्रुतियाँ	०	३	५	९	१३	१६	१८	२२
२.	स्वर—	नि	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
	श्रुतियाँ	०	४	७	९	१३	१७	२०	२२
३.	स्वर—	ध	नि	सा	रे	ग	म	प	ध
	श्रुतियाँ	०	२	६	९	११	१५	१९	२०
४.	स्वर—	प	ध	नि	सा	रे	ग	म	प
	श्रुतियाँ	०	३	५	९	१२	१४	१८	२२
५.	स्वर—	म	प	ध	नि	सा	रे	ग	मं
	श्रुतियाँ	०	४	७	९	१३	१६	१८	२२
६.	स्वर—	ग	म	प	ध	नि	सा	रे	गं
	श्रुतियाँ	०	४	८	११	१३	१७	२०	२२
७.	स्वर—	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	रें
	श्रुतियाँ	०	२	६	१०	१३	१५	१९	२२

इस सारणी में, मूर्च्छना के अन्त में मूर्च्छना के आरम्भक स्वर का द्विगुण रूप और जोड़ दिया गया है। मूर्च्छना के आरम्भक स्वर की श्रुति-संख्या शून्य रखी गई है, क्योंकि वह मूर्च्छना का आधार-स्वर है और उसके पूर्व कोई अन्य स्वर नहीं है, जिसकी अपेक्षा आरम्भक स्वर की ऊँचाई बताई जाए, इसलिए आरम्भक स्वर के द्विगुण रूप की श्रुति-संख्या मूर्च्छना के अन्त में बताई गई है।

प्रत्येक स्वर के नीचे श्रुतियों की संख्या बताते हुए, आरम्भक स्वर की अपेक्षा उस स्वर की ऊँचाई बताई गई है।

ध्यानपूर्वक देखने से इस सारणी में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देंगी—

आरम्भक स्वर की अपेक्षा 'दो श्रुतियों' के अन्तर पर तीसरी और सातवीं मूर्च्छना का द्वितीय स्वर, 'तीन श्रुतियों' के अन्तर पर पहली और चौथी मूर्च्छना का द्वितीय स्वर, 'चार श्रुतियों' के अन्तर पर दूसरी और छठी मूर्च्छना का द्वितीय स्वर, 'पाँच श्रुतियों' के अन्तर पर पहली और चौथी मूर्च्छना का तृतीय स्वर, 'छह श्रुतियों' के अन्तर पर तीसरी और सातवीं मूर्च्छना का तृतीय स्वर, 'सात श्रुतियों' के अन्तर पर दूसरी और पाँचवीं मूर्च्छना का तृतीय स्वर, 'आठ श्रुतियों' के अन्तर पर छठी मूर्च्छना का तृतीय स्वर, 'नौ श्रुतियों' के अन्तर पर अन्तिम दो मूर्च्छनाओं के अतिरिक्त सभी मूर्च्छनाओं का चौथा स्वर, 'दस श्रुतियों' के अन्तर पर अन्तिम मूर्च्छना का चौथा स्वर, 'ग्यारह श्रुतियों' के अन्तर पर छठी मूर्च्छना का चौथा और तीसरी मूर्च्छना का पाँचवा स्वर, 'बारह श्रुतियों' के अन्तर पर चौथी मूर्च्छना का पाँचवाँ स्वर, 'तेरह श्रुतियों' के अन्तर पर तीसरी और चौथी मूर्च्छना के अतिरिक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी मूर्च्छनाओं का पाँचवाँ स्वर, 'चौदह श्रुतियों' के अन्तर पर चौथी मूर्च्छना का छठा स्वर, 'पन्द्रह श्रुतियों' के अन्तर पर तीसरी और सातवीं मूर्च्छना का छठा स्वर, 'सोलह श्रुतियों' के अन्तर पर पहली और पाँचवीं मूर्च्छना का छठा स्वर, 'सत्रह श्रुतियों' के अन्तर पर दूसरी और छठी मूर्च्छना का छठा स्वर, 'अठारह श्रुतियों' के अन्तर पर पहली, चौथी और पाँचवीं मूर्च्छना का सातवाँ स्वर, 'उन्नीस श्रुतियों' के अन्तर पर तीसरी और सातवीं मूर्च्छना का सातवाँ स्वर, 'बीस श्रुतियों' के अन्तर दूसरी पर और छठी मूर्च्छना का सातवाँ स्वर और 'बाईस श्रुतियों' के अन्तर पर प्रत्येक मूर्च्छना के आरम्भक स्वर का द्विगुण स्वर है।

आरम्भक स्वर से 'एक' और 'इक्कीस' श्रुति के पश्चात् कोई स्वर किसी मूर्च्छना में नहीं है, क्योंकि निरन्तर दो श्रुतियों पर क्रमशः दो स्वरों का होना सम्भव नहीं।

भातखण्डेजी ने जिन स्वरों को अपना शुद्ध स्वर माना है, उन स्वरों से युक्त बिलावल ठाठको आधार मानकर यदि उसकी मूर्च्छनाएँ बनाई जाएँ, तो भी स्थिति यही होगी और सातों मूर्च्छनाओं में बीस श्रुतियों तक के अन्तराल मिल जाएँगे।

"हिन्दुस्तानी संगीत में स्वरों की शुद्ध अवस्था उनकी पहली श्रुति पर मानी गई है।" यह गलत और अवैज्ञानिक बात सबसे पहले 'लक्ष्यसंगीत' में कही गई है। यदि प्रथम श्रुति पर 'षड्ज' माना जाए, तो पाँचवीं श्रुति पर भातखण्डेजी का शुद्ध ऋषभ ब्रह्मा को भी न मिलेगा, क्योंकि समस्त श्रुतियाँ समान नहीं हैं।

उपर्युक्त मूर्च्छनाओं में दूसरी मूर्च्छना के स्वरों को यदि 'सा, रि, ग, म, प, ध, नि, सां, नाम दिया जाए, तो यह अष्टक भातखण्डेजी का 'बिलावल ठाठ और दक्षिण वालों का शंकराभरण मेल होगा। यह स्थिति निम्नलिखित होगी—

भातखण्डेजी का बिलावल—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
आरम्भक स्वर से दूसरी श्रुतियों में—	०	४	७	९	१३	१७	२०	२२

इस ठाठ में 'घोर अशुद्धता' यह है कि इसके 'ग' और 'ध' में संवाद का विनाश है, क्योंकि धैवत, गांधार की अपेक्षा दस श्रुतियों के अन्तर पर स्थित है, दूसरी 'घोर भ्रष्टता' यह है कि धैवत स्वर मध्यम के पश्चात् आठ श्रुतियों के अन्तर पर जा पड़ा है, जिससे कि मध्यम और धैवत के सहज और प्राकृतिक उस सप्तश्रुत्यन्तर का विनाश हो गया है, जिसके कारण 'धैवत' को धैवत कहा जाता है, तीसरी 'विपत्ति' यह है कि 'मध्यम' सप्तक के ठीक बीच में नहीं है, वह आरम्भक स्वर से नौ श्रुति पश्चात् है, परन्तु सप्तक के अन्तिम 'नि' से ग्यारह श्रुति पूर्व है। चौथा 'अनाचार' यह है कि ऋषभ और षड्ज दोनों का संवाद पंचम के साथ है। किसी भी ग्राम के मूल सप्तक में पंचम का संवाद षड्ज और ऋषभ—दोनों के साथ नहीं हो सकता। षड्ज-ग्राम के ऋषभ-पंचम में संवाद नहीं होगा। जब पंचम को ऋषभ के साथ संवाद करके उसके अपने मूल स्थान से उतार दिया जाता है, तब वह मध्यमग्राम का पंचम बनता है, जिसका संवाद षड्ज के साथ नहीं रहता। इस अवस्था में पंचम जितना उतरता है, उसी अन्तर का नाम 'प्रमाण-श्रुति' है।

भातखण्डेजी के बिलावल में पंचम को उतारने का उपाय ही नष्ट होगया है, क्योंकि उनके पंचम का संवाद तो षड्ज और ऋषभ—दोनों के साथ है ही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जबसे 'सा' को ही प्रत्येक ठाठ या मेल का कारण मानने की परम्परा मुसलमानों के संसर्ग के कारण चली, तबसे अतिकोमल, कोमल, तीव्र या तीव्रतर जैसे विशेषण स्वरों के पूर्व लगाए गए।

इस बात को ध्यानपूर्वक समझ लेना आवश्क होगा।

यदि प्रत्येक मूर्च्छना के स्वरों को षड्ज इत्यादि नाम दे दिए जाएँ, तो—

(क) आरम्भक स्वर से दो श्रुतियों के अन्तर पर कोमल ऋषभ होगा।

(ख)	,,	तीन	,,	वागीश्वरी का ऋषभ होगा। संकेत (वा० ऋ०)
(ग)	,,	चार	,,	यमनकल्याण का ऋषभ होगा संकेत (ती० ऋ०)
(घ)	,,	पाँच	,,	तोड़ी का गांधार होगा। संकेत (अतिको० ग)
(ङ)	,,	छह	,,	मुल्तानी का गांधार होगा। संकेत (कोमल ग)
(च)	,,	सात	,,	विहाग का गांधार होगा, संकेत (अन्तर ग)
(छ)	,,	आठ	,,	यमनकल्याण का गांधार होगा। सं० (तीव्र ग)
(ज)	,,	नौ	,,	शुद्धमध्यम होगा। सं० (शु० म०)
(झ)	,,	दस	,,	उत्कृष्ट मध्यम होगा। सं० (उ० म०)
(ञ)	,,	ग्यारह	,,	तीव्र मध्यम होगा। सं० (ती० म०)
(ट)	,,	बारह	,,	दरबारी का पंचम होगा। सं० (द० प०)
(ठ)	,,	तेरह	,,	पंचम होगा। सं० (शु० प०)
(ड)	,,	चौदह	,,	दरबारी का धैवत होगा। सं० (अति० को० ध)
(ढ)	,,	पन्द्रह	,,	कोमल धैवत होगा। सं० (को० ध०)
(ण)	,,	सोलह	,,	वागीश्वरी का धैवत होगा। सं० (वा० ध)
(त)	,,	सत्रह	,,	भीमपलासी का धैवत होगा। सं० (ती० ध)
(थ)	,,	अठारह	,,	वागीश्वरी का निषाद होगा। सं० (अतिको० नि)
(द)	,,	उन्नीस	,,	भीमपलासी का निषाद होगा। सं० (को० नि)
(ध)	,,	बीस	,,	विहाग का निषाद होगा। सं० (का० नि)

ठाकुर साहब बेचारे हारमोनियम बजाते थे, इसीलिए सूक्ष्म स्वरों की चर्चा को 'तकरार' का कारण समझते थे, क्योंकि हारमोनियम के पर्दों की ध्वनियों में तो समान दूरी होती है, परन्तु भातखण्डे जी के मतानुयायी ठाकुर साहब ने तार की लम्बाई पर स्वरों की जो स्थापना की है, वह हारमोनियम से मेल नहीं खा सकती।

इस बात को समझने के लिए भातखण्डे जी की मान्यता ढंग से समझनी होगी। निम्नलिखित मण्डल-प्रस्तार (अगले पृष्ठ पर) को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए—

यह प्रस्तार भातखण्डेजी के बिलावल का बोधक है। इसमें भातखण्डेजी की मान्यता के अनुसार भातखण्डेजी के बिलावल के स्वर क्रमशः पहली, पाँचवी, आठवीं, दसवीं, चौदहवीं, अठारहवीं, और इक्कीसवीं श्रुति पर दिखाए गए हैं, अर्थात् भातखण्डेजी का 'ऋषभ' षड्ज से चार श्रुति पश्चात्, गांधार सात श्रुति पश्चात्, मध्यम नौ श्रुति पश्चात्, पंचम तेरह श्रुति पश्चात्, धैवत सत्रह श्रुति पश्चात् और निषाद इक्कीस श्रुति पश्चात् है। हम तर्क के लिए इस स्थिति को मान-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

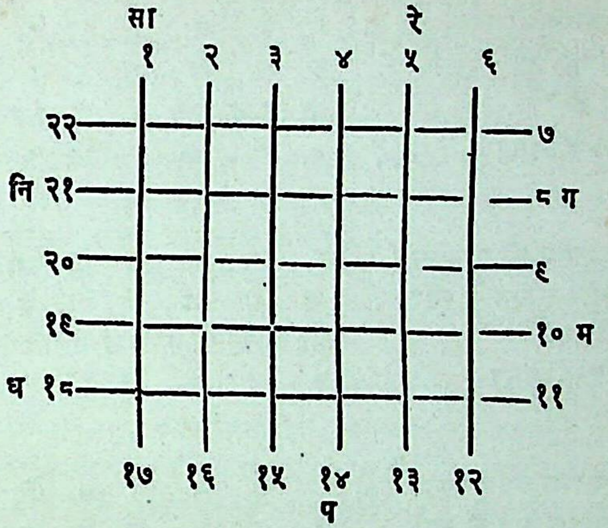

कर चलते हैं, यद्यपि इस स्थिति के दोषों का दिग्दर्शन किया जा चुका है। दूसरे रूप में यह स्थिति यों है—

स्वर-संज्ञाए—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
षड्ज के पश्चात् दूरी—	०	४	७	९	१३	१७	२०	२२

यह स्थिति श्रुति-गणना-मात्र की दृष्टि से पूर्वोक्त मूर्च्छनाओं में दूसरी मूर्च्छना जैसी है।

(अ) षड्जग्राम की मूर्च्छना (२)	नि̲	सा	रे	ग̲	म	प	ध	नि̲
बिलावल ठाठ	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
प्राप्त स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
श्रुति-परिमाण	०	४	७	९	१३	१७	२०	२२

(आ) षड्जग्राम की मूर्च्छना (३	ध	नि̲	सा	रे	ग̲	म	प	ध
बिलावल ठाठ के स्वर	नि	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
प्राप्त स्वर	सा	रे̲	ग̲	म	मं	ध̲	नि̲	सा
श्रुति-परिमाण	०	२	६	९	११	१५	१९	२२

(इ) षड्जग्राम की मूर्च्छना (४)	प	ध	नि̲	सा	रे	ग̲	म	प
बिलावल ठाठ के स्वर	ध	नि	सा	रे	ग	म	प	ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

(ई) षड्जग्राम की मूर्च्छना (५)	म	प	ध	नि	सा	रे	ग	म
बिलावल ठाठ के स्वर	प	ध	नि	सा	रे	ग	म	प
प्राप्त स्वर	सा	ती.ऋ	अं.ग	म	प	वा.ध	प्रति.नि	सा
श्रुति-परिमाण	०	४	७	९	१३	१६	१८	२२

(उ) षड्जग्राम की मूर्च्छना (६)	ग	म	प	ध	नि	सा	रे	ग
बिलावल ठाठ के स्वर	म	प	ध	नि	सा	रे	ग	म
प्राप्त स्वर	सा	ती.ऋ	ती.ग	ती.मं	प	ती.ध	का.नि	सा
श्रुति-परिमाण	०	४	८	११	१३	१७	२०	२२

(ऊ) षड्जग्राम की मूर्च्छना (७)	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	रे
बिलावल ठाठ के स्वर	ग	म	प	ध	नि	सा	रे	ग
प्राप्त स्वर	सा.	को.रे	को.ग	उ.म	प	को.ध	को.नि	सा
श्रुति-परिमाण	०	२	६	१०	१३	१५	१९	२२

(ए) षड्जग्राम की मूर्च्छना (१)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
बिलावल ठाठ के स्वर	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	रे
प्राप्त स्वर	सा	वा.ऋ	प्रति.ग	म	प	वा.ध	भ.नि	सां
श्रुति-परिमाण	०	३	५	९	१३	१६	१८	२२

यह स्थिति हमें बीस स्वर तो स्पष्टतया देती है। वे हैं, षड्ज, कोमलऋषभ, वागीश्वरीऋषभ, यमनकल्याणऋषभ, तोड़ीगांधार, मुल्तानीगांधार, विहागगांधार, यमनकल्याणगांधार, शुद्धमध्यम, उत्कृष्टमध्यम, तीव्रमध्यम, दरबारीपंचम, शुद्धपंचम, दरबारीधैवत, भैरवीधैवत, वागीश्वरीधैवत, भीमपलासीधैवत, वागीश्वरीनिषाद, भीमपलासीनिषाद, विहागनिषाद।

यह ध्यान रखना चाहिए कि इन स्वरों की प्राप्ति हमें विभिन्न मूर्च्छनाओं में हुई है। चारों सारणाओं के परिणामस्वरूप षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना के अन्तर्गत जिस क्रम से बाईस श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं, उस एक क्रम में ये बीसों स्वर मिल ही जाएँ, यह आवश्यक नहीं है।

शार्ङ्गदेव के पश्चाद्वर्ती पडिण्तों ने विभिन्न मूर्च्छनाओं में प्राप्त होनेवाले अन्तरालों को एक ही सप्तक के अन्तर्गत मानकर उनके विभिन्न नाम रख दिए हैं, इसीलिए उनके निष्कर्ष मूर्च्छना-पद्धति का परिणाम होते हुए भी, उनकी पद्धति 'सा' को ही सब सूक्ष्म स्वरों का आधार मानने वाली हो गई है।

आज के पाठक को यह पढ़कर आश्चर्य्य होता है कि दरबारी का पंचम शुद्ध

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचम की अपेक्षा एक प्रमाण-श्रुति उतरा हुआ है, परन्तु यदि तानपूरे पर 'म सा सा सा' मिलाकर दरबारी गाई जाएगी, तो उस समय दरबारी गाने में अत्यन्त सुविधा रहेगी, उसके सभी स्वर यथास्थान स्वतः लगेंगे और पंचम शुद्ध पंचम की अपेक्षा एक प्रमाण-श्रुति उतरा हुआ लगेगा। इसका कारण क्या है?

तानपूरे पर मध्यम मिलाने से ये परिणाम होंगे—

(अ) दरबारी का अतिकोमल निषाद मध्यम का संवादी अर्थात् मध्यम से नौ और षड्ज से अठारह श्रुतियों के अन्तर पर होगा।

(आ) दरबारी के अतिकोमल गांधार का संवाद अतिकोमल निषाद से होगा। यह अतिकोमल गांधार षड्ज से पाँच श्रुति पश्चात् और अतिकोमल निषाद से तेरह श्रुति पूर्व होगा।

(इ) अतिकोमल धैवत अतिकोमल गांधार का संवादी होने के कारण अतिकोमल गांधार से नौ अर्थात् षड्ज से चौदह श्रुति पश्चात् होगा।

(ई) अतिकोमल गांधार से पंचम की संगति होने के कारण पंचम अतिकोमल गांधार से सात श्रुतियों के अन्तर पर लगेगा, क्योंकि यही अन्तर सहज और प्राकृतिक है। अतिकोमल गांधार की स्थिति षड्ज से पाँच श्रुति पश्चात् है, इसीलिए अतिकोमल गांधार से सात श्रुति पश्चात् अर्थात् षड्ज से बारह श्रुति पश्चात् ही दरबारी के पंचम का अस्तित्व है। षड्ज का संवादी पंचम यदि तानपूरे पर मिला रहेगा, तो गले से दरबारी का वास्तविक पंचम कभी न लगेगा।

(उ) अतिकोमल निषाद से दरबारी के ऋषभ की संगति है। मन्द्र अतिकोमल निषाद, षड्ज से चार श्रुति पूर्व है। उस निषाद से जब मध्य सप्तक के ऋषभ पर जाया जायेगा, तो वह ऋषभ मन्द्र निषाद से सात श्रुति के अन्तर पर अर्थात् षड्ज की अपेक्षा तीन श्रुति ऊँचा लगेगा। इस ऋषभ के साथ दरबारी के पंचम का ही संवाद (३+९=१२) है, षड्ज का संवादी पंचम का नहीं।

यदि शार्ङ्गदेव की पद्धति से देखा जाए, तो दरबारी षड्जग्राम की शुद्ध मूर्च्छनाओं में से चौथी मूर्च्छना का राग है। स्थिति यों है—

मूर्च्छना के स्वर	प	ध	नि	सा	रे	ग	म	प
प्राप्त स्वर	सा	रे	ग	म	प्	ध	नि	सा
श्रुति-परिणाम	०	३	५	९	१२	१४	१८	२२

इन प्राप्त स्वरों को षड्ज, त्रिश्रुति ऋषभ, अतिकोमल गांधार, शुद्ध मध्यम, कैशिक पंचम, अतिकोमल धैवत, अतिकोमल निषाद, षड्ज कहा जा सकता है। भातखण्डेजी के बिलावल ठाठ के 'ध' को 'सा' मानने पर भी यही स्वरावलि प्राप्त होगी। यह निर्भ्रान्ति और अखण्डनीय सत्य है।

शार्ङ्गदेव को कोमल, अतिकोमल इत्यादि विश्लेषण लगाने की आवश्यकता नहीं थी, न वे मूर्च्छना के स्वरों के नाम बदलते। मूर्च्छना-पद्धति में षड्जग्राम के स्वरों का आदिम उत्पादक षड्ज माना गया है, परन्तु ग्राम का ज्ञान होने पर ग्राम की विभिन्न मूर्च्छनाओं के आधार या उत्पादक स्वर, सातों स्वर होते हैं। आज जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महत्त्व 'सा' का है, वही महत्त्व मूर्च्छना के प्रथम स्वर का मूर्च्छना-पद्धति में होता है और स्वरों के नाम जैसे-के-तैसे रहते हैं।

दोनों ग्रामों के पंचमों के सूक्ष्म अन्तर की उपेक्षा करके दोनों को एक जैसा मानकर पंचम को अचल मानने की कुप्रथा ने ग्राम-ज्ञान का लोप कर दिया और तानपूरे पर पंचम का स्थान वैष्णवों के लिए तिलक जैसा हो गया।

आज कहा जाता है कि तोड़ी में पंचम अल्प है, परन्तु गवैए के कान पर वह 'टाँय-टाँय' बोलता रहता है। यदि यह कहा जाए कि पंचम वर्जित तो नहीं है, इसीलिए तोड़ी गाते समय तानपूरे पर मिलाया जाता है, तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वागीश्वरी गाते समय तानपूरे पर पंचम क्यों नहीं मिलाया जाता ? यदि यह कहा जाए कि वागीश्वरी गाते समय तानपूरे पर मध्यम ही अच्छा मालूम होता है, तो यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दिया हुआ उत्तर नहीं। तत्त्वज्ञ व्यक्ति बता देगा कि मध्यम के साथ धैवत का सप्तश्रुति-सम्बन्ध है, निषाद के साथ नवश्रुति, ऋषभ के साथ षट्-श्रुति और गांधार के साथ चतुःश्रुति-सम्बन्ध है। ये सभी सम्बन्ध 'इष्ट' हैं, इसलिए वागीश्वरी में तानपूरे पर मध्यम की स्थापना की जाती है। तोड़ी में पंचम का इष्ट सम्बन्ध तोड़ी के अति कोमल गांधार से नहीं है, अतः तोड़ी गाते समय पंचम की स्थापना तानपूरे पर करना रूढ़ि-मात्र है।

शार्ङ्गदेव के द्वारा श्रुतियों के प्रयोग की बात का पर्याप्त साराँश तो मूर्च्छना पद्धति को विशिष्ट मूर्च्छनाओं की स्थापनाओं में है।

अति कोमल ऋषभ जैसे स्वरों की प्राप्ति स्थिर रूप में नहीं होती, अपितु वे स्वर-संगतियों का परिणाम होते हैं। षड्जग्राम के ऋषभ को 'षड्ज' मानने पर गांधार की प्रथम श्रुति अतिकोमल ऋषभ हो जाती है।

परिमाण की दृष्टि से 'म' के दो रूप होते हैं। षड्ज के धैवत की शुद्ध मूर्च्छना में धैवत को षड्ज मानने पर उस मूर्च्छना का गांधार भी तीव्र मध्यम होता है। इसे तीव्रतर मध्यम कहा जाना चाहिए। षड्जग्राम के गांधार की शुद्ध मूर्च्छना में गांधार को षड्ज मानने पर धैवत तीव्रमध्यम बनता है, परन्तु 'ग—ध' अन्तर 'ध—ग' 'अन्तर की अपेक्षा एक प्रमाण-श्रुति कम होता है; यद्यपि संख्या की दृष्टि से 'ग—ध' और 'ध—ग' में ग्यारह-ग्यारह श्रुतियों का ही अन्तर है, परन्तु सब श्रुतियाँ सम-प्रमाण न होने के कारण यह अन्तर आता है।

ठाकुर साहब की मान्यताएँ अपने-आप में भ्रान्त और निराधार हैं। ठाकुर साहब के अन्य प्रश्नों का उत्तर क्रमशः दिया जाएगा।

प्र० २—प्रचलित ठाठों में किस ठाठ को 'रत्नाकर' का मध्यमग्राम कह सकते हैं और क्यों ? (मुआरि फुन्नग़मात, मूल, पृ० २५)

प्रश्न का आधार —मेला आधुनिकाः के स्युर्मध्यमग्रामसंज्ञिताः

(लक्ष्यसंगीत, पृ० ६)

अर्थात्—आधुनिक मेलों में किन मेलों की संज्ञा 'मध्यमग्राम है।

समाधान—ठाकुर साहब की दो भ्रान्त मान्यताएँ ये हैं कि मुखारी मेल (सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रे रे म प ध ध सां) 'रत्नाकर' का षड्जग्राम है और जिनमें तीव्र मध्यम लगता है, वे राग मध्यमग्राम के हैं। इन दोनों मान्यताओं की चर्चा पहले की जा चुकी है। दाक्षिणात्य विद्वान् भी अब इस सत्य तक पहुँच गए हैं कि कनकांगी या मुखारी मेल षड्जग्राम का मूल सप्तक नहीं है। षड्जग्राम के षड्ज और मध्यम ही मूर्च्छना-विधि में मध्यमग्राम के मध्यम और निषाद बन जाते हैं, इसका अर्थ यह है कि मध्यम और निषाद का अन्तर षड्ज और शुद्ध मध्यम के अन्तर के समान है। यह लक्षण मुखारी मेल में घटित नहीं होता। षड्जग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना के 'सा—म, म—नि, नि—ग, ध—रे' में षड्ज-मध्यम-भाव, 'म—ध' में स्वाभाविक षड्ज-अन्तर गांधार-भाव और 'सा—प' में षड्ज-पंचम-भाव है। भातखण्डेजी के बिलावल के ऋषभ की मूर्च्छना के 'रे, ग, म, प, ध, नि, सा' षड्जग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना के ही बोधक हैं, अर्थात् यदि इन स्वरों को 'सा' इत्यादि कहा जाए, तो यह भरत और शार्ङ्गदेव के षड्जग्राम का आरम्भिक सप्तक है।

ठाकुर साहब यह समझे बैठे हैं कि 'तीव्र मध्यम' वाले राग 'मध्यमग्राम' के होते हैं, परन्तु यह कहा जा चुका है और विस्तारपूर्वक सिद्ध किया जा चुका है कि षड्जग्राम की गांधारादि शुद्ध मूर्च्छना के गांधार को षड्ज की संज्ञा देने पर उस मूर्च्छना का धैवत तीव्र मध्यम हो जाता है और धैवतादि मूर्च्छना के धैवत को षड्ज कहने पर उस मूर्च्छना का गांधार तीव्र मध्यम बन जाता है। ठाकुर साहब तीव्र मध्यम को मध्यमग्राम का पंचम समझे बैठे हैं, जैसाकि दक्षिण के मेलवादी समझते हैं। वास्तविकता यह है कि तीव्र मध्यम, पंचम की अपेक्षा दो श्रुति उतरा हुआ है, न कि एक श्रुति।

ठाकुर साहब की समझ में मध्यमग्राम आने का केवल एक उपाय यह है कि भातखण्डेजी के बिलावल ठाठ पर पुनः विचार करें। भातखण्डेजी का बिलावल यों है—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
१	५	८	१०	१४	१८	२१	१

यहाँ स्वरों के नीचे वे संख्याएं लिखी हैं, जिन संख्याओं की श्रुतियों पर ठाकुर साहब के गुरू भातखण्डेजी अपने शुद्ध स्वर मानते हैं। इन स्वरों में गांधार आठवीं श्रुति पर है और धैवत उससे दस श्रुति पश्चात् अठारहवीं श्रुति पर। यदि धैवत को एक श्रुति उतार दिया जाए, तो गांधार से उसका संवाद होने लगेगा और स्थिति यों होगी—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	→ धैवत एक श्रुति उतरने पर बिलावल
१	५	८	१०	१४	१७	२१	१	→ भातखण्डेजी के दृष्टिकोण से श्रुति-स्थान
०	४	३	२	४	३	४	२	→ स्वरों की परस्पर दूरी श्रुतियों में
नि	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	→ मध्यमग्राम की पांचवीं मूर्च्छना
०	४	३	२	४	३	४	२	→ स्वरों की परस्पर दूरी श्रुतियों में
०	४	७	९	१३	१६	२०	२२	→ आरम्भक स्वर से शेष स्वरों की दूरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भातखण्डे जी के धैवत को एक श्रुति उतार देने पर उनके बिलावल के 'रे, ग, म, प, ध, नि, सा' मध्यमग्राम के 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' हो जाते हैं। मध्यमग्राम के 'रे, ग, म, प, ध, नि, सा' या इस एक श्रुति उतरे भातखण्डे-बिलावल के 'ग, म, प, ध, नि, सा, रे' आधुनिक भैरवी ठाठ के 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि,' हो जाते हैं। स्थिति यों है—

मध्यमग्राम के स्वर	→ रे	ग	म	प	ध	नि	सा	रे
भातखण्डे-बिलावल के स्वर	→ ग	म	प	ध	नि	सा	रे	ग
आज का भैरवी ठाठ या दाक्षिणात्यों का हनुमत्तोड़ी मेल	→ सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
श्रुत्यन्तर पारस्परिक	→ ०	२	४	३	४	२	४	३
आरम्भिक स्वर की अपेक्षा अन्तर	→ ०	२	६	९	१३	१५	१९	२२

अर्थात् आज का भैरवी ठाठ मध्यमग्राम के ऋषभ से आरम्भ होने वाली शुद्ध मूर्च्छना के स्वरों को क्रमशः 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' कहने से मिल जाता है। भातखण्डेजी के धैवत को उतारकर यदि गांधार का संवादी बना दिया जाए, तो उस बिलावल के 'ग, म, प, ध, नि, सा, रे' की स्थिति भैरवी ठाठ के 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' के समान होगी।

मध्यमग्राम के ऋषभ की मूर्च्छना में यदि अन्तरगांधार और काकली निषाद का प्रयोग किया जाए, तो हमें ठीक भातखण्डे जी का काफी ठाठ मिलेगा।

रे	ग	म	प	ध	नि	सा	रे	मध्यमग्राम के स्वर
सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	काफ़ी ठाठ
०	४	६	९	१३	१७	१९	२२	आरम्भक स्वर से अन्तर

यदि मध्यमग्राम की इसमूर्च्छना में निषाद चतुःश्रुतिक न होकर द्विश्रुतिक हो, तो यही मूर्च्छना ठीक आसावरी ठाठ बन जाएगी।

भातखण्डे जी ने काफी ठाठ को षड्जग्राम के 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' से मिलता-जुलता कहा है, परन्तु काफी ठाठ के 'रे, ग, ध, नि' षड्जग्राम के 'रे, ग, ध, नि' की अपेक्षा एक-एक 'प्रमाण-श्रुति' चढ़े हुए हैं। निम्नलिखित रूप में यह स्थिति स्पष्ट है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्जग्राम	सा	रे	<u>ग</u>	म	प	ध	<u>नि</u>	सां
आरम्भक स्वर से श्रुत्यन्तर	०	३	५	९	१३	१६	१८	२२
काफ़ी ठाठ	सा	रे	<u>ग</u>	म	प	ध	<u>नि</u>	सां
आरम्भक स्वर से श्रुत्यन्तर	०	४	६	९	१३	१७	१९	२२

अब ठाकुर साहब को मध्यमग्राम से शिकायत करने का कोई मौक़ा नहीं है।

प्र० ३—क्या आजकल 'रत्नाकर' के मध्यमग्राम का कोई राग हमारे बरतावे में आता है ? और, क्या हमारे किसी राग को 'रत्नाकर' के किसी राग से समानता प्राप्त है ? अगर है, तो वह कौन-सा राग है और उस समानता का कारण क्या है ? (मुआरिफुन्नगमात, मूल, पृ० २५)

आधार—मध्यमग्रामगा रागाः प्रचरन्ति न वाऽधुना।
प्रचारेऽप्येकवाक्यत्वं भवेद्रत्नाकरस्य किम् ॥

(लक्ष्यसंगीत, पृ०६)

अर्थात्—आज कल मध्यमग्राम का आश्रय लेने वाले राग प्रचलित हैं या नहीं ! यदि प्रचलित हैं, तो 'रत्नाकर' के साथ क्या उनकी एकवाक्यता होगी ?

समाधान—जी हाँ, आज षड्जग्राम के राग भी प्रचलित हैं और मध्यमग्राम के भी। 'वागीश्वरी' षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना का राग है, 'भीमपलासी' मध्यम-ग्राम के ऋषभ से आरम्भ होने वाली उस मूर्च्छना का राग है, जिसमें अन्तरगांधार और काकलीनिषाद हैं और 'भैरवी' मध्यमग्राम की ऋषभादि शुद्ध मूर्च्छना का राग है। जिन्हें 'श्रुति' की चर्चा 'तकरार' प्रतीत होती है, ऐसे हारमोनियम-वादकों और उनके मित्रों को समझ में यह बात तब आएगी, जब वे उत्तर-भारतीय सरस्वती वीणा का आश्रय लें।

बड़ी शोचनीय स्थिति यह है कि ठाकुर नवाबअली खाँ जैसे गुणियों ने बगैर सोचे-समझे दूसरों की हाँ-में-हाँ मिलाई है और स्व० भातखण्डेजी ने विवेचन तो उत्तर-भारत के संगीत का किया, परन्तु अपने गुरु वज़ीर खाँ की वीणा की सर्वथा उपेक्षा कर दी और स्वर-निर्णय के लिए दाक्षिणात्य पद्धति का आश्रय लिया। यदि भातखण्डे जी ने वज़ीर खाँ और उत्तर-भारत के अन्य वीणा-वादकों की वीणा पर ध्यान भली भाँति दिया होता, तो उनके शास्त्र का रूप और ही होता। एक स्थान पर भातखण्डे जी ने लिखा है कि मुहम्मदअली के पास मैंने भी कुछ दिनों बीन सीखी थी (भा० सं० शा०, पृ० २२४)। भगवान् जाने, भातखण्डेजी ने बीन (सरस्वती-वीणा) किस प्रकार सीखी थी। यदि ध्यानपूर्वक सीखी होती, तो उनके ठाठों के रूप भी और होते, प्रमाण-श्रुति के अन्तर का ज्ञान उन्हें हो गया होता और प्रचलित राग बारह स्थूल स्वरों के शिकंजे में न जकड़े जाते।

सरस्वती वीणा में बाज के तार की मूल ध्वनि को 'म' माना जाता है। सरस्वती वीणा के—

(अ) तीव्र ऋषभ और तीव्र धैवत परस्पर संवादी नहीं हैं।

(आ) कोमल गांधार और कोमल निषाद परस्पर संवादी नहीं हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरस्वती वीणा के ऋषभ को यदि उस वीणा के धैवत से संवाद करके उतार दिया जाए और कोमल गांधार को उस वीणा के कोमल निषाद से संवाद करके उतार दिया जाए, तो वे 'सा, रे, ग॒, म, प, ध, नि॒' षड्जग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना होंगे।

भातखण्डेजी के गुरु वज़ीर खाँ की वीणा पर भातखण्डेजी के—

(अ) तीव्र ऋषभ-धैवतवाले ठाठ नहीं मिलते।

(आ) कोमल गांधार-निषादवाले ठाठ नहीं मिलते।

भातखण्डेजी ने व्यंकटमखी के मेलों में उत्तर-भारतीय रागों को 'फ़िट' करने की चेष्टा की है। व्यंकटमखी या अन्य कोई भी यदि वीणा के बाज के तार को षड्ज मानकर उत्तर-भारतीय सरस्वतीवीणा अथवा दक्षिण-भारतीय तन्जोरवीणा पर स्वर प्राप्त करेगा, तो 'रे—ध' और 'ग॒—नि॒' संवादयुक्त मिलेंगे, परन्तु बाज के तार को 'म॒' मानने पर मिलने वाले 'रे—ध' और 'ग॒—नि॒' परस्पर संवादी नहीं होंगे। इसलिए दक्षिण वालों का—

(क) शंकराभरण मेल	उत्तर-भारतीय	सरस्वती-वीणा का	बिलावल	ठाठ नहीं।
(ख) हरिकाम्भोजी मेल	,,	,,	खमाज	,, ,,
(ग) मेचकल्याणी मेल	,,	,,	कल्याण	,, ,,
(घ) हनुमत्तोड़ी मेल	,,	,,	भैरवी	,, ,,
(ङ) नटभैरवी मेल	,,	,,	आसावरी	,, ,,
(च) खरहरप्रिया मेल	,,	,,	काफ़ी	,, ,,

इसका अर्थ यह है कि उत्तर-भारतीय रागों के लिए जिन दाक्षिणात्य मेलों को भातखण्डे जी लाए हैं, वे सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उत्तर-भारतीय रागों पर प्रायः फ़िट नहीं बैठेंगे। जब तक 'प्रमाण-श्रुति' के इस सूक्ष्म अन्तर पर विचार नहीं किया जाएगा, मध्यमग्राम 'क़यामत' तक समझ में न आएगा।

प्र० ४—'रत्नाकर' में ऐसे कौन-से राग हैं, जिनमें कोमल गांधार और कोमल निषाद प्रयुक्त होते हैं और उनमें वे कौन से राग हैं, जिनमें तीव्र मध्यम लगाया जाता है?

आधार—मृदुगनियुता रागाः के स्यू रत्नाकरोदिताः।
तीव्रमध्यमयुक्ताः के किं स्यात्तेषां समर्थनम्॥

(लक्ष्यसंगीत, पृ० ७)

अर्थात्—रत्नाकरोक्त वे राग कौन से हैं, जिनमें कोमल गांधार और कोमल निषाद प्रयुक्त होते हैं और वे कौन से राग हैं, जो तीव्रमध्यम युक्त हैं।

समाधान—ठाकुर नवाब अली खाँ और स्व० भातखण्डे जी को अति कोमल गांधार और अतिकोमल निषाद की स्थिति ही स्वीकृत नहीं है, परन्तु शुद्ध मध्यम का संवादी निषाद आज की भाषा में अतिकोमल निषाद है और उसका संवादी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांधार अतिकोमल गांधार है। अतिकोमल गांधार की अपेक्षा पंचम आठ श्रुति पश्चात् है और अतिकोमल गांधार 'षड्ज' से पाँच श्रुति पश्चात्। यदि अतिकोमल गांधार को इतना चढ़ा दिया जाए कि उसे 'षड्ज' मानने पर पंचम उसका स्वयंभू अथवा अन्तरगांधार होने लगे, तो वह कोमल गांधार हो जाएगा और उसकी स्थिति षड्ज से छह श्रुति पश्चात् और पंचम से सात श्रुति पूर्व होगी। इस कोमल गांधार से संवाद करके यदि अतिकोमल निषाद को चढ़ा दिया जाए, तो वह कोमल निषाद हो जाएगा और उसका संवाद शुद्ध मध्यम के साथ न रहेगा।

भीमपलासी की मूर्च्छना में भीमपलासी के स्वरों की आधुनिक स्वर-संज्ञाएँ इस स्थिति को स्पष्ट करती हैं और वागीश्वरी की मूर्च्छना, षड्जग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना से काफ़ी ठाठ का अन्तर भी वहाँ प्रत्यक्ष है।

इतने स्पष्टीकरण के पश्चात् इतना कहना पर्याप्त है कि धैवत और ऋषभ की प्रत्येक ग्राम की मूर्च्छना में इन मूर्च्छनाओं का तृतीय स्वर कोमल गांधार हो जाता है। जैसे—

षड्जग्राम	ध	त्रि	सा	रे	ग़	म	प	ध	
आरम्भक स्वर सें दूरी	०	२	६	९	११	१५	१९	२२	
आधुनिक स्वर	सा	रे़	ग़	म	मं	ध़	त्रि	सां	(कोई मेल नहीं)
षड्जग्राम	रे	ग़	म	प	ध	त्रि	सा	रे	
आरम्भक स्वर से दूरी	०	२	६	१०	१३	१५	१९	२२	
आधुनिक स्वर	सा	रे़	ग़	म	प	ध़	त्रि	सां	(मध्यम एक श्रुति ऊँचा है)

काफी ठाठ, भैरवी ठाठ और आसावरी ठाठ की चर्चा की जा चुकी है। जिन मूर्च्छनाओं में इन ठाठों की प्राप्ति होती है, उन मूर्च्छनाओं से सम्बद्ध राग 'रत्नाकर' में अनेक हैं उन रागों की स्वर-सम्बन्धी समानता इन ठाठों के वर्तमान रागों से है।

अब रहा तीव्र मध्यम वाले रागों का प्रश्न, तो यह ध्यान रखना चाहिए कि दोनों ग्रामों की धैवत से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का पाँचवाँ स्वर, धैवत को षड्ज मानने पर तीव्र मध्यम हो जाता है और गांधार से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का धैवत, गांधार को षड्ज मानने पर तीव्र मध्यम हो जाता है।

भातखण्डेजी का कल्याण ठाठ षड्जग्राम में, निषाद से आरम्भ होने वाली उस मूर्च्छना में प्राप्त होता है, जिसमें अन्तरगांधार है। स्थिति यों है—

षड्जग्राम	त्रि	सा	रे	ग	म	प	ध	त्रि
श्रुत्यन्तर	०	४	७	११	१३	१७	२०	२२
यमन ठाठ	सा	रे	ग	मं	प	ध	नि	सां

इन मूर्च्छनाओं से सम्बद्ध रागों में ठाकुर साहब के अनुयायियों को अपना तीव्र मध्यम मिल जाएगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्र० ५—कल्लिनाथ ने 'रत्नाकर' पर एक टीका लिखी है, उसमें मूर्च्छना पर भी कुछ विचार किया गया है। क्या मूर्च्छना के सम्बन्ध में कल्लिनाथ का विचार ठीक है। अगर ठीक है, तो 'रत्नाकर' के षड्जग्राम की सातों मूर्च्छनाओं के अनुसार आजकल कौन-से ठाठ हुए ?

आधार—यथार्था मूर्च्छनाटीका कल्लिनाथकृतास्ति किम् ?
तथात्वे कीदृशा मेलाः सिद्ध्येयुरिति कथ्यताम् ।।

(लक्ष्यसंगीत, पृ० ७)

अर्थात्—क्या कल्लिनाथ-कृत मूर्च्छना-टीका ठीक है ? यदि ठीक है, तो किन मेलों की सिद्धि होगी, यह बताइए ?

समाधान—ठाकुर साहब स्वयं नहीं जानते कि कल्लिनाथ की राय मूर्च्छना के सम्बन्ध में है क्या ? न उन्हें कोई समझा ही सका।

भातखण्डे जी ने वह बीन सीखी थी, जिसमें मध्य-स्थान के अन्तर्गत बारह पर्दे थे, इसलिए कल्लिनाथ की राय को समझने में उन्हें बहुत दिन लगे। अपने जीवन के अन्तिम समय उन्हें शार्ङ्गदेव और कल्लिनाथ पर आस्था हो गई थी। 'संगीत-रत्नाकर' के रागों का स्पष्टीकरण उन्होंने सम्भव बताया था, (भा० सं० शा०, भाग ४, पृ० ७८९) और कल्लिनाथ के बताए हुए उपाय से ही उन्होंने 'संगीत-रत्नाकर' में दिए हुए सर्वप्रथम ग्राम-राग शुद्ध साधारित के स्पष्टीकरण का अस्पष्ट-सा उपाय भी बताया है। (भा० सं० शा०, भाग ४, पृ० ७२१)

भातखण्डेजी ने इस पुण्यकार्य को करने की वसीयत भी की है, परन्तु उस वसीयत की बात भी अधिकांश लोग नहीं जानते ।

जिन साजों में पर्दे अचल हों और मध्य-सप्तक में बारहों स्वर न हों, तो उनमें चिकारियाँ उसी स्वर में मिलाली जाती थीं, जिस स्वर में आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का राग प्रस्तुत करना हो, अथवा बाज के तार को वहाँ मिला लिया जाता था, जहाँ मिलाने पर मूर्च्छना के आरम्भिक पर्दे की ध्वनि चिकारियों की ध्वनि में मिल जाए।

जिन साजों में पर्दे अचल नहीं रहते थे, सरक सकते थे, उनमें मध्य-सप्तक के आरम्भिक पर्दे को ही मूर्च्छना के अनुसार सा, रे, ग॒, म, प, ध, या नि॒ मानकर अवशिष्ट पर्दे आवश्यकता के अनुसार उतार या चढ़ा लिए जाते थे।

सितार-वादक आज भी बाज के तार को वहाँ मिलाकर भैरवी बजाते हैं कि तीव्र निषाद के पर्दे की ध्वनि चिकारियों की ध्वनि में मिल जाती है और इस अवस्था में कल्याण के 'नि़, सा, रे, ग, म, प, ध, नि' भैरवी के 'सा, रे॒, ग॒, म, प, ध॒, नि॒, सां' का काम देने लगते हैं। शार्ङ्गदेव ने यही ढंग अपनाया है।

भैरवी बजाने का दूसरा ढंग षड्ज को ही 'षड्ज' मानकर ऋषभ-धैवत के पर्दों को (उतारकर) कोमल बनाना है। यह शैली उस नियम की परम्परा में है, जिसे शार्ङ्गदेव ने मूर्च्छना प्राप्त करने का 'दूसरा ढंग' कहा है।

कल्लिनाथ ने इस स्थिति को स्पष्ट किया है।

ये सातों मूर्च्छनाएँ व्यंकटमखी के ७२ मेल वाले पिंजरे में नहीं घुसेड़ी जा सकतीं। स्थिति यों है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्जग्राम की शुद्ध मूर्च्छनाएँ		सरस्वती वीणा पर उत्तर-भारतीय स्वर
सा रे ग̲ म प ध नि	=	प़ ध़ नि़̲ सा रे ग म
नि̲ सा रे ग̲ म प ध	=	म़ प़ ध़ नि़̲ सा रे ग
ध नि̲ सा रे ग̲ म प	=	ग म प ध नि̲ सा रे
प ध नि̲ सा रे ग̲ म	=	रे ग म प ध नि̲ सा
म प ध नि̲ सा रे ग̲	=	सा रे ग म प ध नि̲
ग̲ म प ध नि̲ सा रे	=	नि़̲ सा रे ग म प ध
रे ग̲ म प ध नि̲ सा	=	ध़ नि़̲ सा रे ग म प

षड्जग्राम की मूर्च्छना के स्वरों के ठीक सामने वे स्वर लिख दिए गए हैं, जो आज भी उत्तर-भारतीय सरस्वती वीणा पर बाज के तार की मुक्त ध्वनि को 'म़' मानने पर मिलते हैं। इन मूर्च्छनाओं की तुलना में मेलों के साथ इस प्रकार हैं—

षड्जग्राम की मूर्च्छना	दाक्षिणात्य मेल	भातखण्डेजी का ठाठ
१—सा रे ग̲ ग प ध नि̲ सा	कोई मेल नहीं	सा रे ग̲ म प ध नि̲ सा काफ़ी
०, ३, ५, ६, १३, १६, १८, २२		०, ४, ६, ६, १३, १७, १६, २२

मूर्च्छना के 'रे, ग̲, ध, नि̲ षड्ज की अपेक्षा क्रमशः ३, ५, १६, १८ श्रुतियों के अन्तर पर हैं। सरस्वती वीणा के 'प़, ध़ नि़̲, सा, रे, ग, म, प' में क्रमशः यही श्रुत्यन्तर हैं। दक्षिण के खरहरप्रिया या भातखण्डेजी के काफ़ी ठाठ में 'रे, ग̲, ध, नि̲' षड्ज की अपेक्षा क्रमशः ४, ६, १७, १६ श्रुतियों के अन्तर पर हैं। भातखण्डेजी की राय में त्रिश्रुतिक ऋषभ-धैवत और अतिकोमल गांधार-अतिकोमल निषाद को 'स्वर्गीय' बना दिया गया है और यह 'दुर्घटना' स्वरों को उनकी प्रथम श्रुति पर मानने के कारण हुई है। इसलिए भातखण्डेजी के साम्राज्य से षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना अपने वास्तविक रूप में तो बहिष्कृत या ग़ैरकानूनी हो गई है, परन्तु आन्दोलन-संख्या बताते हुए अपने स्वरों के जो परिमाण भातखण्डेजी ने निश्चित किए हैं, उनकी दृष्टि से भातखण्डेजी के 'रे, ग, म, प, ध, नि, सा, रे' के रूप में गुप्त-रूप से रहकर अपना निर्वाह, समय प्रतिकूल देख कर जैसे-तैसे कर रही है। अर्थात आजकल की राजनीतिक भाषा में 'अण्डरग्राउण्ड' हो गई है।

२—षड्जग्राम की मूर्च्छना	दाक्षिणात्य मेल	भातखण्डेजी का ठाठ
नि̲ सा रे ग̲ म प ध नि̲	शंकराभरण	सा रे ग म प ध नि सा
०, ४, ७, ६, १३, १७, २०, २२		०, ४, ७, ६, १३, १७, २०, २२

इस मूर्च्छना की स्थिति सरस्वती वीणा पर 'म, प, ध, नि̲, सा, रे, ग, के रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

में है। इस मूर्च्छना के स्वरों को क्रमशः 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' कहने पर दाक्षिणात्यों के शंकराभरण मेल और भातखण्डेजी के 'नकद' बिलावल ठाठ की प्राप्ति होती है। एक अन्य स्थान पर हमारे द्वारा यह तथ्य प्रतिपादित किया गया है कि अकबरी युग का मूल ठाठ यही है। उतर-भारतीय सरस्वतीवीणा, अर्थात् भातखण्डेजी के गुरु वजीर खाँ की वीणा पर, जो बिलावल ठाठ है, उसमें धैवत चतुःश्रुतिक होकर त्रिश्रुतिक है।

३—षड्जग्राम की मूर्च्छना	दाक्षिणात्य मेल	भातखण्डेजी का ठाठ
ध नि सा रे ग म प ध ०, २, ४, ९, ११, १५, १९, २२	कोई मेल नहीं	कोई ठाठ नही

इस मूर्च्छना के स्वरों को 'षड्ज' इत्यादि कहने पर 'सा, रे, ग, म, मं, ध, नि, सां' की प्राप्ति होती है। इस स्वरावलि में पंचम लुप्त है और मध्यम के दोनों प्रकार हैं, यह स्थिति मेल-सिद्धान्त की विरोधिनी है, क्योंकि मेल में पंचम का अस्तित्व अनिवार्य है ओर मध्यम का एक ही रूप ग्राह्य है। इसलिए आचार्य बृहस्पति ने इस स्वरावलि का नामकरण 'मेलदलन' या 'ठाठ-विध्वंस' किया है। सरस्वतीवीणा के 'ग, म, प, ध, नि, सां, रें, गं' और भातखण्डेजी के 'नि़, सा, रे, ग, म, प, ध, नि' के रूप में यह स्वरावलि आज भी सुरक्षित है।

मतंग और शार्ङ्गदेव के द्वारा वर्णित शुद्ध भैरव इसी मूर्च्छना का राग है, जिसे आचार्य बृहस्पतिके योग्य एवं प्रख्यात नवयुवक शिष्य श्रीगुलाम मुस्तफ़ा खाँ ने विभिन्न संगीत-सम्मेलनों में अत्यन्त सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया है और आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से भी। दिल्ली, लखनऊ, वम्बई इत्यादि आकावाणी-केन्द्रों से यह शुद्ध भैरव अनेक बार प्रसारित किया है, जिसके रेकॉर्ड भी अनेक केन्द्रों पर सुरक्षित हैं।

इस स्वरावलि में तीव्र मध्यम के स्थान पर पंचम करने से भैरवी ठाठ बन जाता है और 'स्वर-व्यत्यास' (स्वरों का उलटना) क्रिया के परिणाम-स्वरूप भैरवी ठाठ के गांधार-निषाद को तीव्र करने से आधुनिक भैरव ठाठ की सृष्टि होती है।

४—षड्जग्राम की मूर्च्छना	दाक्षिणात्य मेल	भातखण्डेजी का ठाठ
प ध नि सा रे ग म प ०, ३, ५, ९, १२, १४, १८, २२	कोई मेल नहीं	कोई ठाठ नहीं

इस मूर्च्छना के स्वरों को षड्ज इत्यादि का नाम देने पर जिस स्वरावलि की प्राति होगी, उसके ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद भातखण्डे जी के आसावरी ठाठ अथवा दाक्षिणात्यों के नटभैरवी मेल के ऋषभ, गांधार, मध्यम पंचम धैवत, निषाद की अपेक्षा एक-एक प्रमाण-श्रुति उतरे होंगे। इस मूर्च्छना के मूल रूप में धैवत और ऋषभ लुप्त करने पर जो मूर्च्छना के 'प, नि, सा, ग, म, प' बचेंगे, वे

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालकोष के ठीक 'सा, ग॒, म, ध॒, नि॒, सां' हैं। आचार्य्य बृहस्पति ने सिद्ध किया है कि दरबारी भी इसी मूर्च्छना का राग है और उसे गाते समय तानपूरे के तारों पर 'म, सा, सा,सा' की स्थापना करनी चाहिए।

५—षड्जग्राम की मूर्च्छना	दाक्षिणात्य मेल	भातखण्डेजी का ठाठ
म प ध त्रि सा रे ग॒ म ०, ४, ७, ६, १३, १६, १८, २२	कोई मेल नहीं	कोई ठाठ नहीं

इस मूर्च्छना के स्वरों को षड्ज इत्यादि कहने पर जिस स्वरावलि की प्राप्ति होगी, उसके धैवत-निषाद दाक्षिणात्यों के हरिकाम्भोजी मेल या भातखण्डे जी के खमाज ठाठ के धैवत-निषाद की अपेक्षा एक-एक प्रमाण-श्रुति उतरे होंगे, परन्तु उत्तर-भारतीय सरस्वतीवीणा का खमाज ठाठ यही है।

६—षड्जग्राम की मूर्च्छना	दाक्षिणात्य मेल	भातखण्डेजी का ठाठ
ग॒ म प ध त्रि सा रे ग॒ ०, ४, ८, ११, १३, १७, २०, २२	कोई मेल नहीं	कोई ठाठ नहीं

इस मूर्च्छना के स्वरों को षड्ज इत्यादि कहने पर जिस स्वरावलि की प्राप्ति होगी, उसका गांधार दाक्षिणात्यों के मेचकल्याणी मेल या भातखण्डेजी के कल्याण ठाठ के गांधार की अपेक्षा एक प्रमाण-श्रुति चढ़ा मिलेगा।

७—षड्जग्राम की मूर्च्छना	दाक्षिणात्य मेल	भातखण्डेजी का ठाठ
रे ग॒ म प ध त्रि सा रे ०, २, ६, १०, १३, १५, १६, २२	कोई मेल नहीं	कोई ठाठ नहीं

इस मूर्च्छना के स्वरों को षड्ज इत्यादि कहने पर जिस स्वरावलि की प्राप्ति होगी, उसका मध्यम दाक्षिणात्यों की हनुमत्तोड़ी और भातखण्डे जी के भैरवी ठाठ के मध्यम की अपेक्षा एक प्रमाण-श्रुति चढ़ा होगा।

इस प्रकार हमने देखा कि षड्जग्राम की, निषाद से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना में दाक्षिणात्यों का शंकराभरण मेल या भातखण्डेजी का बिलावल ठाठ जैसा-का-तैसा मिल जाता है, परन्तु अन्य मूर्च्छनाओं का पूर्ण अन्तर्भाव स्वीकृत मेलों या ठाठों में नहीं होता।

यथास्थान यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि भातखण्डेजी के बिलावल ठाठ से यदि मूर्च्छनाएं बनाई जाएँ, तो उन मूर्च्छनाओं में षड्जग्राम की सभी शुद्ध मूर्च्छनाएं मिल जाती हैं।

जिन ग्रन्थों में रागों का वर्गीकरण बारह स्वर-संस्थानों में किया गया है, वे 'प्रमाण-श्रुति' के अन्तर की उपेक्षा करके चले हैं। उनकी सम्मति में 'प्रमाण-श्रुति'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का सूक्ष्म अन्तर स्वर में नहीं, अपितु उसके अनुरणन में, जिसे गायक-वादक 'सुर की आस' कहते हैं, सुनाई देता है; इसलिए राग-वर्गीकरण में सुविधा (!) के लिए स्वरों की वास्तविक संख्या में काट-छाँट करके बारह स्वर-संस्थान चुने गए, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि आज का विद्यार्थी अस्तित्व ही बारह स्वरों का मानता है। वह यह मानता है कि जो बरात में नहीं बुलाए गए, वे संसार में हैं ही नहीं।

शार्ङ्गदेव से पश्चात् के ग्रन्थकारों ने बारह स्वर-संस्थानों में अन्य स्वरों का अन्तर्भाव कर लिया है। स्थिति यों है—

बारह स्वर-संस्थान	अन्तर्भूत स्वर
१. षड्ज	प्रत्येक मूर्च्छना का प्रथम स्वर
२. कोमल ऋषभ	अतिकोमल ऋषभ
३. तीव्र या शुद्ध ऋषभ	त्रिश्रुति ऋषभ
४. कोमल गांधार	अतिकोमल गांधार
५. अन्तर-गांधार	षड्जग्राम की; गांधार से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना का पंचम
६. शुद्ध मध्यम	,, ऋषभ से ,, ,, ,,
७. तीव्र मध्यम	,, धैवत से ,, ,, गांधार
८. पंचम	,, पंचम से ,, ,, ऋषभ
९. कोमल धैवत	,, ,, ,, ,, गांधार
१०. तीव्र धवत	त्रिश्रुति धैवत
११. कोमल निषाद	अतिकोमल निषाद
१२. तीव्र निषाद	यमनकल्याण का निषाद

मूर्च्छनाओं का विश्लेषण करने पर, ग्राम-भेद पर सूक्ष्म विचार करने पर और प्रयोग की दृष्टि से सूक्ष्म विचार करने पर, स्वरों की संख्या कहीं अधिक होती है और यदि आज के रागों को गाते समय बलात् पंचम को अचल मानने का हठ छोड़ दिया जाए, तो ऐसे विभिन्न रागों के चलन, जोकि एक ही ठाठ में आज ठूंस दिए हैं, सूक्ष्म स्वरों को प्रत्यक्ष करते हैं। भातखण्डेजी ने भी अनेक अवसरों पर यह सत्य स्वीकृत किया है कि विभिन्न स्वर-संगतियाँ स्वरों के सूक्ष्म उतार-चढ़ाव में कारण होती हैं; इस तथ्य को स्वीकृत करते हुए भी बारह स्वर-संस्थानों से चिपके रहना अपनी ही बात का खण्डन है।

सिंह भूपाल (१४-वीं शती) के समय में ही ग्रामों का संकर (मिश्रण) हो गया था। इस तथ्य का उल्लेख सिंह भूपाल ने किया है। आज के मारवा, तोड़ी, भैरव और पूरवी ठाठ उस ग्राम-संकर के परिणाम हैं। अन्य छह ठाठ विभिन्न मूर्च्छनाओं में इस प्रकार मिल जाते हैं —

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

षड्जग्राम की द्वितीय शुद्ध मूर्च्छना	नि॒	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒
बिलावल ठाठ (शंकराभरणं मेल)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
श्रुति-परिमाण	०	४	७	९	१३	१७	२०	२२
२—षड्जग्राम की द्वितीय सान्तरा मूर्च्छना या	नि॒	सा	रे	ग	म	प	ध	नि॒
मध्यमग्राम की द्वितीय शुद्ध मूर्च्छना	ग॒	म	प	ध	नि॒	सा	रे	ग॒
कल्याण ठाठ (मेचकल्याणी मेल)	सा	रे	ग	मं	प	ध	नि	सां
श्रुति-परिमाण	०	४	७	११	१३	१७	२०	२२
३—षड्जग्राम की पाँचवीं शुद्ध मूर्च्छना	म	प	ध	नि॒	सा	रे	ग॒	म
खमाज ठाठ (सरस्वतीवीणा)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि॒	सा
श्रुति-परिमाण	०	४	७	९	१३	१६	१८	२०
४—मध्यमग्राम की तीसरी साधारणी मूर्च्छना	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	रे
काफी ठाठ	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	सां
श्रुति-परिमाण	०	४	६	९	१३	१७	१९	२२
५—मध्यमग्राम की तीसरी शुद्ध मूर्च्छना	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	सा	रे
भैरवी ठाठ	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
श्रुति-परिमाण	०	२	६	९	१३	१५	१९	२२
६—मध्यमग्राम की तीसरी सान्तरा मूर्च्छना	रे	ग	म	प	ध	नि॒	सा	रे
षड्जग्राम की तीसरी साधारणी मूर्च्छना	ध	नि	सा	रे	ग	म	प	ध
आसावरी ठाठ (नटभैरवी मेल)	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
श्रुति-परिमाण	०	४	६	९	१३	१५	१९	२२

प्र० ६—संगीत के प्राचीन सिद्धान्तों में शुद्धतान का क्या मतलब था ?

(मुआरिफुन्नग़मात, भाग १, पृ० २५)

आधार—रहस्यं शुद्धतानानांकिमासीदित्युदीर्यताम्। (लक्ष्यसंगीत, पृ० ७)

अर्थात्—यह बताइए कि शुद्ध तानों का रहस्य क्या था ?

समाधान—'तान' शब्द का जो अर्थ आज प्रचलित है, उससे सर्वथा भिन्न अर्थ में भरत और शार्ङ्गदेव ने 'तान' शब्द का प्रयोग किया है। एक या दो स्वरों के लुप्त होने पर मूर्च्छना ही तान कहलाती थी। शुद्ध मूर्च्छनाओं के षाडव या औडुव रूप 'तान' कहलाते थे। इस सम्प्रदाय में स्वरों का आरोह-अवरोह 'मूर्च्छना' था। केवल आरोह अथवा केवल अवरोह को 'मूर्च्छना' नहीं कहा जाता था। शार्ङ्गदेव ने भरत के अनुसार स्वरों के क्रमयुक्त आरोह-अवरोह को मूर्च्छना कहा है।

एक अन्य सम्प्रदाय में स्वरों के क्रमयुक्त आरोह को मूर्च्छना और अवरोह को तान कहा है। शार्ङ्गदेव का सम्बन्ध प्रथम सम्प्रदाय से है।

षाडव और औडुव तानों के अलग-अलग नाम हैं। वीणा पर किसी भी मूर्च्छना के षाडव या औडुव रूप को स्थापित करने का नाम 'तान-क्रिया' है। आज कल की भाँति 'तानें मारने' को 'तान-क्रिया' नहीं कहा जाता।

किसी षाडव या औडुव राग में प्रयुक्त 'तान' का नाम बता देने पर उसकी मूर्च्छना बताने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मूर्च्छनाश्रित सभी तानों में से

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्येक तान का नाम अलग-अलग है। इस प्रकार तान का प्रयोजन षाडव या औडुव रागों की स्वरावलि देना है।

प्र० ७—अगर 'शुद्ध तान' भिन्न रागों की शक्ल पहचानने में मदद देती थी, तो इस आवश्यक बात को 'रत्नाकर' के लेखक ने (जो उसके लिए उपयुक्त स्थान था) क्यों न लिखा ?

(मुआरिफुन्नग़मात, भाग १, पृ० २५)

आधार—रागाध्याये किमप्येषां समुल्लेखो न लभ्यते।

(लक्ष्यसंगीत, पृ० ७)

अर्थात्—रागाध्याय में इन (शुद्ध तानों) का उल्लेख क्यों नहीं है ?

समाधान—मार्ग-संगीत में 'मध्यम' का लोप कभी नहीं होता था, 'धैवत' षड्ज ग्राम में लुप्त नहीं होता था और 'पंचम' का लोप मध्यमग्राम में नहीं होता था। इसी स्थिति के अनुसार दोनों ग्रामों की शुद्ध मूर्च्छनाओं के आधार पर चौरासी तानें बनती हैं, जिनके अलग-अलग नाम हैं।

देशी संगीत में लोप-सम्बन्धी इस नियम का उल्लंघन भी हो सकता था। यदि कोई राग ऐसा है, जिसकी स्वरावलि तो षड्जग्राम की है, परन्तु उसमें 'धैवत' का लोप है, तो यह षाडव-रूप उन चौरासी तानों से अतिरिक्त होगा और इसका नाम भी उनमें न होगा।

'रत्नाकर' में मार्ग और देशी, दोनों प्रकार के रागों का वर्णन है। औडुव या षाडव देशी रागों में उन स्वरों का लोप भी हुआ है, जिनका लोप मार्ग-रागों में नहीं होता था। इसलिए आचार्य शार्ङ्गदेव ने षाडव या औडुव रागों का लक्षण करते समय उनकी मूर्च्छना बताई है और बताया है कि उस मूर्च्छना के किस स्वर का लोप उस राग में होता है। मार्ग और देशी, दोनों प्रकार के रागों के वर्णन में आचार्य शार्ङ्गदेव ने एक ही विधि का आश्रय लिया है।

प्र० ८—कुछ शुद्ध तानों में खरज का स्वर (सा) छूट गया है, उसका क्या कारण है ? (मुआरिफुन्नग़मात, पृ० २५)

आधार—केषुचिच्छुद्धतानेषु कुतः षड्जविवर्जनम्। (लक्ष्यसंगीत, पृ० ७)

अर्थात्—कुछ शुद्ध तानों में 'षड्ज' क्यों वर्जित है ?

समाधान—यही प्रश्न यदि भातखण्डेजी द्वारा गम्भीरता-पूर्वक विचार का विषय बना होता, तो उत्तर-भारतीय संगीत का भाग्य कुछ और होता।

'मेलवादी' और 'ठाठवादी' हर 'मेल' या 'ठाठ' का उत्पादक या आधार स्वर 'सा' को मानते हैं, परन्तु मूर्च्छना-सिद्धान्त में 'षड्ज' का अर्थ षड्जग्राम के सातों स्वरों को मूल रूप में उत्पन्न करने वाला या षड्जग्राम का 'ग्रामणी' स्वर है।

'ग्रामणी' शब्द ग्राम की प्राप्ति कराने वाला स्वर होता है। षड्जग्राम का ग्रामणी स्वर 'षड्ज' और मध्यमग्राम का ग्रामणी स्वर 'मध्यम' है।

ग्रामणी स्वर की निम्नलिखित तीन विशेषताएँ हैं—

(अ) ग्रामणी स्वर चतुःश्रुतिक हो।

(आ) दो स्वर उसके संवादी हों।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(इ) आरोह की ओर ग्रामणी स्वर से अग्रिम स्वर त्रिश्रुतिक हो।

षड्जग्राम के मूल सप्तक—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
४	३	२	४	४	३	२

में षड्ज चतुःश्रुतिक है, मध्यम और पंचम के रूप में उसके दो संवादी हैं और उससे अग्रिम स्वर ऋषभ त्रिश्रुतिक है।

मध्यमग्राम के मूल सप्तक—

म	प	ध	नि	सा	रे	ग
४	३	४	२	४	३	२

में मध्यम चतुःश्रुतिक है, निषाद और षड्ज के रूप में उसके दो संवादी विद्यमान हैं और उससे अगला स्वर पंचम त्रिश्रुतिक है।

किसी भी अन्य स्वर में ग्रामणी स्वर की ये तीनों विशेषताएँ नहीं हैं; इसलिए भरत सम्प्रदाय में दो ही ग्राम हैं। ग्राम का अर्थ वह विशिष्ट स्वर-सप्तक है, जिसके जनक स्वर में ये तीनों विशेषताएँ विद्यमान हों।

'ग्राम' मूर्च्छनाओं का जनक है। मूर्च्छनाएँ हमें विभिन्न स्वर-सप्तकों की प्राप्ति कराती हैं। प्रत्येक मूर्च्छना के आरम्भक स्वर का वही महत्त्व एवं स्थान है, जो मेल-सिद्धान्त में 'सा' का है। जिस प्रकार मेल-सिद्धान्त की दृष्टि से 'सा' का लोप असम्भव है, उसी प्रकार, मूर्च्छना-सम्प्रदाय में मूर्च्छना के आरम्भक स्वर का लोप गान अथवान वादन में असम्भव है। हाँ, कुछ तानें ऐसी भी हैं, जिसमें मूर्च्छना के आरम्भक स्वर का लोप दिखाई देता है, परन्तु यह केवल गणना की दृष्टि से है, व्यवहार की दृष्टि से नहीं। 'खण्डमेरु' प्रस्तार में एक, दो, तीन और चार स्वरों के प्रस्तार भी दिखाए गए हैं, यद्यपि पांच स्वरों से कम राग नहीं होता।

यदि 'षड्ज' मूर्च्छना का आरम्भक स्वर नहीं है, तो उसका लोप सम्भव है और उसके संवादी 'प' का भी। यदि हम मूर्च्छना के आरम्भक स्वर का पूर्वोक्त महत्त्व समझें, तो हमें 'सा' और 'प' के लोप पर आश्चर्य न होगा। यदि हम मेल-सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर मूर्च्छना-सम्प्रदाय के ग्रन्थों पर अपना दृष्टिकोण लाद दें, तो 'सा-प' के लोप में हमें तंबूरे का लोप दिखाई देगा। ठाकुर साहब और उनके गुरु ठाठ-प्रेमी हैं, षड्ज के लोप पर उलझे हैं।

प्र० ९—क्या मध्यमग्राम के राग आजकल षड्जग्राम में सम्मिलित हैं? यदि सम्मिलित हैं, तो क्यों कर?

समाधान—आप जिसे षड्जग्राम समझे बैठे हैं, षड्जग्राम का रूप वह नहीं है। बिलावल ठाठ के—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
०	४	७	९	१३	१७	२०	२२

में षड्जग्राम के मूल सप्तक के लक्षण घटित नहीं होते। क्योंकि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अ) इस सप्तक का षड्ज चतुःश्रुतिक नहीं है, अर्थात् 'नि' से दो श्रुति पश्चात् है।

(आ) इस सप्तक का मध्यम, सप्तक के ठीक बीचोबीच में नहीं, अर्थात् आरम्भक स्वर से नौ श्रुति पश्चात् और 'नि' से ग्यारह श्रुति पूर्व है।

(इ) इस सप्तक के 'म—ध' में षड्जान्तर गांधार-भाव अर्थात् सात श्रुतियों का अन्तर नहीं है।

(ई) इस सप्तक का पंचम, षड्ज और ऋषभ, दोनों का संवादी है। षड्जग्राम का पंचम षड्जग्राम के ऋषभ का संवादी नहीं होता।

'लक्ष्यसंगीत' में ही यह मौलिक (!), परन्तु बेजोड़ बेतुकी बात कही गई है कि आधुनिक संगीत में स्वरों की शुद्धावस्था उनकी प्रथम श्रुति पर मानी गई, परन्तु शुद्धता की परिभाषा कोई नहीं की गई।

अस्तु, षड्जग्राम के वास्तविक तत्त्व को समझने की आवश्यकता न ठाकुर साहब ने समझी न उनके गुरुदेव ने। बेसमझे-बूझें, कह डाला कि आजकल केवल 'षड्जग्राम' रह गया है, परन्तु षड्जग्राम की कोई परिभाषा न की। इस मान्यता का आधार दक्षिण के मेलवादी हैं, षड्जग्राम और मध्यग्राम का रहस्य समझना जिनके भाग्य में न था।

षड्जग्राम और मध्यमग्राम की जिन-जिन मूर्च्छनाओं में भातखण्डेजी के कुछ ठाठ आते हैं, उनका विवेचन किया जा चुका है।

प्र० १०—आख़िर जमाने के ग्रन्थ, जो सिर्फ तीन-चार सौ वर्ष पुराने हैं, जो बराबर कहते आए हैं कि आजकल केवल एक ग्राम यानी षड्जगाम वाकी रह गया है। 'रत्नाकर' के जमाने में दो ग्राम थे, यानी षड्जग्राम और मध्यमग्राम। यहाँ प्रश्न यह है कि 'रत्नाकर' के युग में मध्यमग्राम आवश्यक क्यों था और अब अनावश्यक क्यों है?

(मुआरिफुन्नगमात, हिन्दी अनुवाद भूमिका, पृ० २६)

समाधान—'रत्नाकर' तो तेरहवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में लिखा गया है। उसकी रचना के प्रायः दो सौ वर्ष पश्चात् कड़ा (इलाहाबाद के पास) के सूबेदार मलिक सुलतान के पुत्र बहादुर मलिक ने देश भर के पण्डितों को इकट्ठा कराकर 'संगीतशिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना कराई थी, उस समय भी लोग ग्राम-तत्त्व को जानते थे। इसी समय दक्षिण के कल्लिनाथ भी ग्राम-तत्त्व के मर्मज्ञ थे। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में मेवाड़ के अधिपति महाराणा कुम्भा ने 'संगीतराज' लिखा है, उसमें स्पष्ट कहा गया है कि दोनों ग्रामों के आधार पर प्रयोग में आने वाले राग भलीभाँति प्रचलित हैं। जिन दस-पाँच रागों का प्रचलन उस युग में नहीं था, उनके लक्षण ही महाराणा कुम्भा ने नहीं दिए हैं। उनके नाम गिनाकर कह दिया है कि उनका प्रचार नहीं है।

दक्षिण के राग वर्गीकरण पर मुस्लिम-प्रभाव

अलाउद्दीन खिलजी के समय में ही भारतीय रागों का वर्गीकरण ईरानी पद्धति से किया जा चुका था। सैकड़ों सूफी धर्म-प्रचार के लिए दक्षिण पहुँच चुके थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमीर खुसरो की मृत्यु (१३२४ ई०) से बारह वर्ष पश्चात् मुहम्मद तुग़लक के राज्यकाल (१३२५-१३५१) के अन्तर्गत विद्यारण्यजी के प्रयत्नों से विजयनगर राज्य की स्थापना हुई थी। इस स्थापना से पहले (१३२६-१३२७ ई० में) मुहम्मद तुग़लक दिल्ली की सारी आबादी को दक्षिण ले गया था, जिसमें दिल्ली-दरबार के सभी संगीतज्ञ भी थे। जिस देवगिरि में बैठकर प्रायः सौ वर्ष पूर्व आचार्य शार्ङ्गदेव ने 'रत्नाकर' लिखा था, उसी देवगिरि में मुहम्मद तुग़लक के साथ भारतीय रागों का ईरानी वर्गीकरण भी पहुँच गया था। मुहम्मद तुग़लक तो दिल्ली लौट आया, परन्तु उसकी सनक से तंग आए हुए व्यक्ति सहस्रों की संख्या में वहीं बस गए।

इस आबादी के गवैये भारतीय रागों का ईरानी वर्गीकरण लेकर विजयनगर पहुँचे और ईरानी मुक़ाम-सिद्धान्त ने विद्यारण्यजी की भाषा में 'मेल-सिद्धान्त' का रूप धारण किया। इस युग से पहले 'मेल' शब्द का प्रयोग भारतीय संगीत के साहित्य में नहीं मिलता।

विजयनगर-साम्राज्य के प्रभाव से यह पद्धति दक्षिण में खूब फैली। विजयनगर-साम्राज्य के पतन के पश्चात् मेल-पद्धति को तंजोर में विशिष्ट स्थान मिला। वेंकटमखी और उनके पिता गोविन्द दीक्षित इस मेल-पद्धति के स्तम्भ हुए हैं।

उत्तर-भारत में अकबर का दरबार भारतीय और विदेशी कलाकारों का संगम-स्थल था, परन्तु ध्रुवपद-गायक कलावन्त ग्राम-सिद्धान्त को समझते थे और उन्होंने 'मेल' या 'ठाठ' को कोई सम्मान नहीं दिया था। तानसेन के ग्रन्थ 'संगीतसार' और 'रागमाला' इस सम्बन्ध में प्रमाण हैं।

ग्राम-सिद्धान्त के ज्ञान का अभाव

मेल-सिद्धान्त के आश्रित दाक्षिणात्य विचारकों को ग्राम-सिद्धान्त का ज्ञान न रहा था। दाक्षिणात्यों के सिद्धान्त से प्रभावित अथवा दाक्षिणात्य पण्डितों ने ही यह कहा है कि उनके युग में केवल षड्जग्राम रह गया है। अकबरी युग के किसी उत्तर-भारतीय कलाकार ने इस प्रकार की बात नहीं की।

अकबरी युग के दाक्षिणात्य ग्रन्थकार पुण्डरीक विट्ठल ने अपने ग्रन्थ 'रागमाला' में कहा है—

"षड्जग्रामाश्रितान् रागान् सर्वे गायन्ति गायकाः।
तस्मान्मुख्यतमः षड्जग्राम एव न चापरौ॥"

अर्थात्—"सभी गायक षड्जग्रामाश्रित राग गाते हैं, अतः षड्जग्राम ही मुख्य है, अन्य दोनों ग्राम नहीं।"

इसी युग के एक दूसरे मेलवादी ग्रन्थकार श्रीकण्ठ कहते हैं—

"षड्जमध्यमजातानां मूर्च्छनानां परस्परम्।
किंचिद्विशेषादेकत्वमुक्तवान् दन्तिलः स्फुटम्।
तस्मान्न मेनिरे ग्रामं मध्यमं गुरवो मम॥"

अर्थात्—"दन्तिल (दत्तिल) ने स्पष्ट कहा है कि षड्जग्राम और मध्यमग्राम से उत्पन्न मूर्च्छनाओं में परस्पर 'कुछ' ही अन्तर है, इसलिए मेरे गुरु ने मध्यमग्राम पथक् नहीं माना।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकण्ठ ने वीणा पर सारिका-स्थापन के प्रसंग में भी किसी ग्रन्थ का प्रमाण न देकर अपने गुरु के आदेश को ही प्रमाण-रूप में उद्धृत किया है। श्रीकण्ठ के गुरु की दृष्टि में दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं का पारस्परिक सूक्ष्म अन्तर कोई अन्तर ही न था।

मेलवादियों की दृष्टि में प्रत्येक मेल का उत्पादक या आधार स्वर 'सा' था, इसीलिए वे षड्जग्राम के वास्तविक लक्षण को भूलकर प्रत्येक मेल को निश्चिन्तता-पूर्वक 'अपना षड्जग्राम' कह डालते थे। 'सद्रागचन्द्रोदय' में पुण्डरीक विट्ठल ने कहा है—

"षड्जः स्वराणां जनको यतः स्यात् ग्रामस्ततो मुख्यतयैव एषः।
रागेषु सग्रामजानित्वमेव दृष्टं ततो ग्रामयुगं न हीष्ठम्॥"

अर्थात्—"क्योंकि षड्ज स्वरों का जनक है, इसलिए यही (षड्जग्राम) मुख्यतायुक्त है। रागों में षड्जग्राम से उत्पन्न होना ही देखा गया है, इसलिए दो ग्रामों का मानना अभीष्ट नहीं है।"

इन महाशय को भी वास्तविक षड्जग्राम का दर्शन दुर्लभ था।

मेलवादियों का 'षड्ज' शब्द का अनर्थ

ग्राम-सिद्धान्त में षड्ज स्वर केवल षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना और मध्यम-ग्राम की चौथी मूर्च्छना का जनक था, अन्य मूर्च्छनाओं में उन-उन मूर्च्छनाओं का आरम्भक स्वर उन-उन मूर्च्छनाओं का (आरम्भक या) जनक स्वर होता था। इसीलिए षड्ज को छह अन्य स्वरों को उत्पन्न करनेवाला और छह अन्य स्वरों से जन्म लेनेवाला कहा गया है। पुण्डरीक-जैसे मेलवादी षड्ज शब्द के वास्तविक अर्थ को भूल गए थे और प्रत्येक मेल के आरम्भक स्वर को 'सा' कहने के कारण प्रत्येक मेल को षड्जग्राम कहने लग गए थे, भले ही मेलों के आरम्भक स्वर में 'ग्रामणी' स्वर के तीनों लक्षण चरितार्थ हों या न हों।

ग्राम के मूल सप्तक विभिन्न स्वरों से आरम्भ होनेवाली मूर्च्छनाओं में स्वरों के नाम अपरिवर्तित रहते थे, परन्तु ईरानी मुक़ाम-सिद्धान्त में प्रत्येक मुक़ाम के आरम्भक स्वर का नाम 'रास्त' था, इस प्रवृत्ति के प्रभाव से दिल्ली में जिस नवीन 'इन्द्रप्रस्थ-मत' ने जन्म लिया, उसमें प्रत्येक मुक़ाम के स्वरों को जब भारतीय नाम दिए गए, तब ईरानी प्रवृत्ति के अनुकरण पर प्रत्येक मेल के आरम्भक स्वर को 'सा' कहा गया।

ईरानी बारह स्वरों का प्रभाव

ईरानी स्थूल स्वरों की संख्या बारह थी। उन बारहों के स्वतन्त्र नाम थे। उनमें से कोई स्वर किसी अन्य स्वर का विकार नहीं माना जाता था। इन बारह स्वरों से संगति बिठाने के लिए षड्ज और पंचम को अचल मानकर अवशिष्ट पाँच स्वरों के दो-दो प्रकार मान लिए गए।

इस नवीन नामकरण के अनुसार एक 'स्थान' (मन्द्र, मध्य, तार) में बारह स्वर-संस्थानों का उदय हुआ। इस गम्भीर परिवर्तन के कारण आगे चलकर वीणाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में 'अचल ठाठ' का उद्भव हुआ, जिसमें एक स्थान (मन्द्र, मध्य, तार) के अन्तर्गत बारह स्वतन्त्र सारिकाएँ रखी गईं।

विभिन्न मुक़ाम ठाठ या मेल को प्राप्त करने की पद्धति तो अभारतीय और स्वर-संज्ञाएँ भारतीय ! इस स्थिति ने इस ऐतिहासिक परिवर्तन से अपरिचित भावी ग्रन्थकारों, मेलवादी ग्रन्थकारों, को ग्राम-मूर्छच्ना-तत्त्व से सदा के लिए दूर फेंक दिया।

रामामात्य और अहोबल

हुमायूँ-कालीन रामामात्य (१५५० ई०), जहाँगीर-कालीन गोविन्द दीक्षित, सोमनाथ, शाहजहाँ-कालीन वेंकटमखी और औरंगजेब-कालीन अहोबल तथा तुलजा नरेश—सभी मेलवादी हैं। अकबर-कालीन पुण्डरीक और श्रीकण्ठ भी मेलोपासक हैं। ये सभी ग्रन्थकार ग्राम-मूर्च्छना-तत्त्व से अपरिचित थे। मनोरञ्जक बात यह है कि षड्जग्राम के लक्षणों को समझे विना इन लोगों की घोषणा यह थी कि आजकल केवल षड्जग्राम रह गया हैं।

श्रीनिवास कहते हैं—

"गान्धारमध्यमग्रामावप्रयोजनकौ मतौ।"

अर्थात्—"गांधारग्राम और मध्यमग्राम प्रयोजन-रहित हैं।" हुसैनी, नौरोज, जीलफ़, इराक इत्यादि अभारतीय राग सोमनाथ के ग्रन्थ में हैं। उनका मेल-सिद्धान्त अभारतीय प्रसाद है, इस वास्तविकता को भूलकर या न जानकर वे ग्रामों के पीछे पड़े हैं।

अहोबल की सुनिए—

"रागा ग्रामद्वयालभ्याः षड्जग्रामोद्भवा इति।
यथोक्तश्रुतिकाः प्रोक्ताः षड्जग्रामेऽखिलाः स्वराः।।"

अर्थात्—"राग दोनों ग्रामों में प्राप्त नहीं होते, षड्जग्राम से ही उनकी उत्पत्ति हुई है, (मैंने) सभी स्वर षड्जग्राम में यथोक्त श्रुतियों से युक्त बता दिए हैं।"

इन महाशय ने मूर्च्छना-सिद्धान्त की कपाल-क्रिया करके अनेक स्वर एक ही 'स्थान'(मन्द्र, मध्य, तार) में दाखिल कर दिए हैं। सारणा-विधि का आश्रय लेने पर जिस क्रम से श्रुतियों की प्राप्ति होती है, उस क्रम में अहोबल द्वारा बताए हुए सभी स्वर कदापि नहीं मिलेंगे। राग-वर्गीकरण के समय ये महाशय भी बारह स्वरों की बात करते हैं। ये मेलवादी हैं, परन्तु इन्होंने मूर्च्छना का विलक्षण अर्थ किया है।

गोविन्द दीक्षित और वेंकटमखी

वेंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित ने रघुनाथ नरेश के नाम से प्रचारित 'संगीत-सुधा' में कहा है कि 'संगीत-रत्नाकर' समझ में नहीं आता, इसलिए हम विद्यारण्य के मत के अनुसार राग-निरूपण कर रहे हैं।

वेंकटमखी अपने पिता के मार्ग का आश्रय नहीं लेते। उनका कहना है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"सर्वत्र लक्ष्यमार्गेऽत्र सम्प्रति प्रचरन्ति ये।
तानस्मत्परमाचार्य्यतानप्पार्यसमुद्धृतान् ।
रागान्निरूपयिष्यामि लक्ष्यलक्षणसम्मतान् ॥"

अर्थात्—"आजकल लक्ष्यमार्ग में जिन रागों का सर्वत्र प्रचार है, जो लक्ष्य-लक्षण-सम्मत हैं और जिनका समुद्धार मेरे परम गुरु तानप्पार्य ने किया है, मैं उन रागों का निरूपण करूँगा।"

इस निरूपण के पश्चात् वेंकटमखी का कथन है—

"लक्षिता पञ्चपञ्चाशदिति रागाः स्फुटं मया।
गीतठायप्रबन्धा हि तानप्पार्यैः प्रवर्तिताः।

अर्थात्—"इस प्रकार मैंने स्पष्टतापूर्वक पचपन रागों के लक्षण किए हैं। (इनमें) गीत, ठाय और प्रबन्ध का प्रवर्तन आर्य तानप्पा ने किया है।"

तानप्पा या तानभट्ट

वेंकटमखी के परमगुरु (गुरु के गुरु) कोई आर्य्य तानप्पा थे, जिन्होंने रागों का उद्धार किया था और गीत, ठाय और प्रबन्धों का प्रवर्तन किया था।

वेंकटमखी ने स्वयं को अपने बड़े भाई 'यज्ञनारायण दीक्षित' का शिष्य कहा है। गोविन्द दीक्षित और यज्ञनारायण दीक्षित—दोनों ही नाम सर्वथा उत्तर-भारतीय नाम हैं।

यह स्पष्ट है कि वेंकटमखी के पिता ने पन्द्रह मेलों में रागों का वर्गीकरण किया था, परन्तु वेंकटमखी ने राग-वर्गीकरण में अपने पिता का अनुसरण न करके अपने परमगुरु तानप्पा का अनुकरण किया है, जिनकी चर्चा तक वेंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित ने नहीं की है।

तानप्पा की चर्चा अन्य किसी दाक्षिणात्य ग्रन्थकार ने की है। कुछ लोगों ने अनुमान लगाया है कि ये 'तानप्पा' तानसेन हो सकते हैं, परन्तु यह मत भ्रान्त है, क्योंकि तानसेन मूर्च्छनावादी थे, मेलवादी नहीं।

भावभट्ट, वेंकटमखी एवं रामामात्य

'भावभट्ट' और 'वेंकटमखी'—दोनों ही मेलवादी हैं। भावभट्ट पर पुण्डरीक का प्रभाव है। भावभट्ट के दादा का नाम 'तानभट्ट' था, वेंकटमखी अपने गुरु के गुरु को 'तानप्पा' कहते हैं। इन दोनों व्यक्तियों का एक होना सम्भव है। रामामात्य के राग-वर्गीकरण का खण्डन वेंकटमखी ने किया है। रामामात्य ने जो राग विशिष्ट मेलों में रखे हैं, वेंकटमखी ने उनमें से अनेक रागों को सर्वथा विभिन्न मेलों में रखा है। इसका अर्थ यह है कि वेंकटमखी के परमगुरु तानप्पा ने जिस सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया, वह रामामात्य के सम्प्रदाय से सर्वथा भिन्न था और श्रीकण्ठ की परम्परा से सम्बद्ध अवश्य था, जिसका प्रचार गुजरात में था।

इस नवीन सम्प्रदाय के अनुयायी वेंकटमखी ने ग्रामों के विषय में कहा है—

"अयुक्तो मध्यमग्रामो लक्ष्यमार्गविरोधतः।
एक एव ततः षड्जग्रामः समवधार्य्यते ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात्—"लक्ष्यमार्ग का विरोधी होने के कारण मध्यमग्राम अनुपयुक्त है। अतः यह निश्चय किया जाता है कि षड्जग्राम एक ही है।"

वास्तविकता यह है कि मेल-दृष्टि से विचार करने पर आजकल न षड्ज-ग्राम का अस्तित्व है न मध्यमग्राम का। यदि मूर्च्छना-दृष्टि से विचार किया जाए, तो षड्जग्राम और मध्यमग्राम—दोनों का अस्तित्व है। इनके अतिरिक्त ऐसे राग भी प्रचार में हैं, जो वृद्ध काश्यप के स्वर-प्रयोग के सिद्धान्त का अनुगमन करते हैं।

षड्जग्राम और मध्यमग्राम के वास्तविक स्वरों का परिचय प्राप्त किए बिना ही मेलवादी आचार्यों ने यह घोषणा करदी कि उनके युग में केवल षड्जग्राम रह गया है। षड्जग्राम का लक्षण ये लोग षड्ज-पंचम-संवाद और प्रत्येक मेल के स्वरों का 'षड्ज' से उत्पन्न होना समझे थे। इनके मेलों में विद्यमान अन्य स्वरों की स्थिति भी षड्जग्रामीय है या नहीं, इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया।

रामामात्य से लेकर आजतक के दाक्षिणात्य ग्रन्थकार 'म-प' अन्तराल को चतुःश्रुतिक कहते हैं और इसी युग्म के संवादी युग्म 'सा-रे' अन्तराल को पंचश्रुतिक कहते हैं। इतनी बड़ी वेतुकी बात कहने वाले लोगों से ग्राम-मूर्च्छना तत्त्व की आशा करना दुराशा-मात्र है। रे-प (हिन्दुस्तानी) के अखण्डनीय नवश्रुतिक अन्तराल 'शुद्ध ग-प' अर्थात् भरत का अष्टश्रुतिक अन्तराल बताना सूर्य को राहु बताना है।

भातखण्डेजी का षड्जग्राम

आश्चर्य की बात है कि स्व० भातखण्डेजी-जैसे तर्कप्रिय व्यक्तियों का ध्यान मेलवाद की निस्सारता पर न गया और लक्ष्य-संगीत में घोषणा कर दी गई—

"हिन्दुस्थानीय पद्धत्यां श्रुतिक्रमविपर्य्यात्।
वेलावल्यभिधो मेलः शुद्धनाम्ना समादृतः॥
शुद्धमेलोहि सर्वत्र षड्जग्राम इतीर्य्यते।
वेलावल्यभिधो लक्ष्ये षड्जग्रामत्वमर्हयेत्॥"

अर्थात्—"हिन्दुस्तानी पद्धति में श्रुति-क्रम को उलटकर (स्वरों की शुद्धावस्था उनकी अन्तिम श्रुति की बजाय आदिम श्रुति पर मानकर) वेलावली मेल (बिलावल ठाठ) 'शुद्ध' नाम से समादृत है। शुद्ध सर्वत्र 'षड्जग्राम' समझा जाता है' (अतः) लक्ष्य में वेलावली मेल ही 'षड्जग्राम' कहलाने योग्य है।"

यदि कोई पूछे कि 'शुद्धता' की परिभाषा क्या है, तो भातखण्डे-साहित्य में इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। यदि यह प्रश्न किया जाए कि अन्तिम श्रुति के स्थान पर आदिम श्रुति पर स्वरों की अवस्था किन लोगों ने, कब या क्यों मानी, तो इस प्रश्न का उत्तर भी नदारद है। यदि यह कहा जाए कि स्वरों की शुद्धावस्था से युक्त सप्तक ही षड्जग्राम कहा जाता है, तो यह सरासर गलत है, क्योंकि षड्जग्राम की मूर्च्छनाओं में गांधार या निषाद अथवा गांधार और निषाद—दोनों को चतुःश्रुतिक कर दिया जाए, तब भी मूर्च्छना 'विकृत' कहलाती है, मूर्च्छना की शुद्धता में विकार आता है; पंचम की चतुःश्रुतिकता और षड्ज के साथ मध्यम और पंचम—दोनों का संवाद बना रहने के कारण ग्रामत्व में तो कोई अन्तर नहीं आता। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि शुद्ध मेल को ही सर्वत्र षड्जग्राम कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भातखण्डेजी वास्तव में स्वयं समस्त श्रुतियों को समान मानते थे। इसीलिए उन्होंने बेखटके सारे स्वरों को अन्तिम श्रुति के स्थान पर आदिम श्रुतियों को उनका शुद्ध (!) सिंहासन बना दिया। वास्तविक स्थिति क्या है, इसे तनिक समझ लिया जाए।

भरत के शुद्ध चतुःश्रुतिक स्वरों का मान (५+१८+२३+५=५१) इक्यावन घटक है, त्रिश्रुतिक स्वरों का मान (१८+२३+५=४६) छियालीस घटक है और द्विश्रुतिक स्वरों का मान (२३+५=२८) अट्ठाईस घटक है। इस स्थिति को मंडल-प्रस्तार में देख लिया जाए—

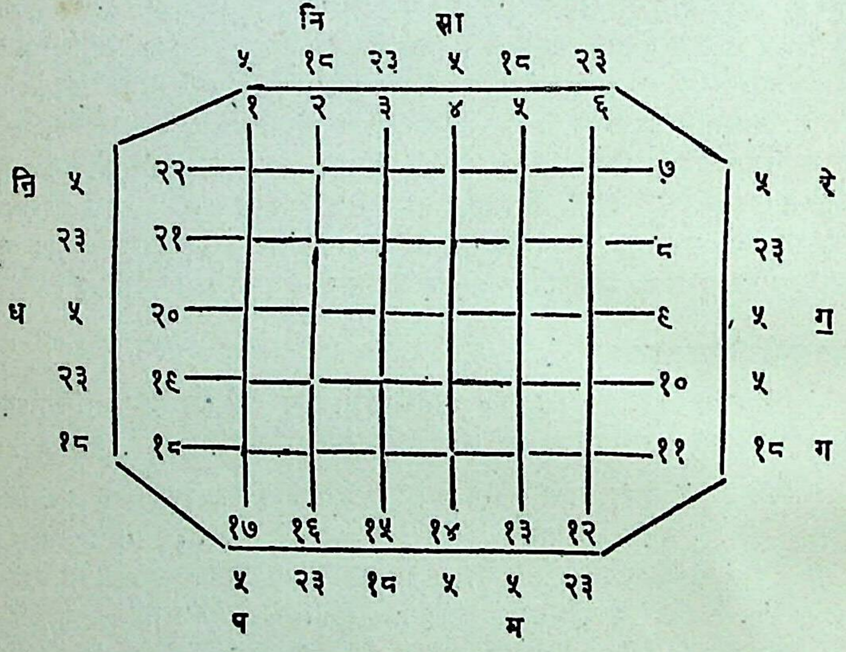

मण्डल-प्रस्तार में रेखाओं के कोणों के पास श्रुति-क्रम-बोधक संख्या और उसके पश्चात् विशिष्ट श्रुति का परिमाण घटकों में लिखा हुआ है। षड्जग्राम के नौ स्वर भी यथा-स्थान लिखे हैं। यदि भातखण्डेजी यह कहते कि हम भरत के 'षड्जग्रामीय शुद्ध' निषाद, षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत को क्रमशः बिलावल के 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि' कहते हैं, तो षड्जग्रामीय शुद्ध निषादादि मूर्च्छना में उन्हें अपना बिलावल मिल जाता, परन्तु उन्होंने स्वयं समस्त श्रुतियों को समान समझकर बिलावल के स्वरों का आवाहन आदिम श्रुतियों पर कर डाला परन्तु यह आवाहन सफल न हुआ।

पहली श्रुति पर 'सा' और पाँचवीं श्रुति पर 'रे' मानने का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि पहली श्रुति के पश्चात् पाँचवीं श्रुति (१८+२३+५+१८=६४) चौंसठ घटक के अन्तर पर है। चतुःश्रुतिक हिन्दुस्तानी शुद्ध ऋषभ का मान इक्यावन घटक है, पाँचवीं श्रुति प्रथम श्रुति के चौंसठ घटक के अन्तर पर होने के कारण उस चतुःश्रुतिक ऋषभ की प्राप्ति कदापि न होगी, जो भातखण्डेजी को अभीष्ट है। यही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवांछनीय स्थिति पंचम-धैवत के अन्तराल में होगी, इसलिए यह कहना सर्वथा भ्रामक है कि बिलावल की प्राप्ति स्वरों की शुद्धावस्था उनकी आदिम स्थिति पर मानने से हो जाती है।

श्रुति-संख्या का प्रयोजन

भरत मुनि ने पूर्ववर्ती स्वर की अपेक्षा परवर्ती स्वर की ऊँचाई बताने के लिए स्वरों की श्रुति-संख्या बताई है। षड्जग्राम के मूल सप्तक के आदिम स्वर की श्रुति-संख्या भरत ने सर्वप्रथम न बताकर ऋषभ की श्रुति-संख्या सबसे पहले वताई है, क्योंकि ऋषभ से पूर्व तो षड्ज स्वर विद्यमान है। 'ऋषभ त्रिश्रुतिक है'—इसका अर्थ यह है कि ऋषभ अपने पूर्ववर्ती स्वर षड्ज की अपेक्षा तीन श्रुति ऊंचा है। षड्ज जोकि मूल स्वर है, उसके पूर्व तो कोई स्वर ही नहीं है, जिसकी अपेक्षा षड्ज की ऊँचाई वताई जाए, इसलिए षड्ज की श्रुति-संख्या सब स्वरों की श्रुति-संख्या वताने के वाद अर्थात् षड्ज की अपेक्षा पूर्ववर्ती निषाद की स्थापना के पश्चात् वताई गई है। भरत के शब्द हैं—

"तिस्रो द्वे च चतस्रश्च चतस्रस्तिस्र एव च।
द्वे चतस्रश्च षड्जाख्ये ग्रामे श्रुतिनिदर्शनम्॥"

अर्थात्—"षड्जग्राम में श्रुति-निदर्शन तीन, दो, चार, चार, तीन, दो, चार है।" स्थिति यों है—

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
०	३	२	४	४	३	२	४

'नाट्यशास्त्र' का यह श्लोक षड्जग्राम के मूल सप्तक की स्थापना का वैज्ञानिक आधार है।

यदि षड्ज को मध्यस्थानीय षड्ज मान लिया जाए, तो उसके पूर्व मन्द्र-स्थानीय निषाद का अस्तित्व होता है, परन्तु स्वर-स्थापना के पश्चात् तीनों स्थानों—मन्द्र, मध्य और तार का प्रश्न आता है, उसके पूर्व नहीं।

ऋषभादि श्रुतिमण्डल

'नाट्यशास्त्र' के इस श्लोक में बताए हुए श्रुति-क्रम को मतङ्ग मुनि ने ऋषभादि श्रुतिमण्डल कहा है, क्योंकि इसमें ऋषभ की श्रुतियों की संख्या सबसे पूर्व बताई है। ऋषभादि स्वर-सप्तक के अन्तराल में षड्जग्राम और मध्यमग्राम के सभी स्वरों की स्थापना हो सकती है। षड्जादि शुद्ध सप्तक के अन्तराल में, अर्थात् षड्ज से द्विश्रुति निषाद तक की सीमा में, काकली निषाद की प्राप्ति नहीं होती। ऋषभादि श्रुति-मण्डल के निर्देश का यही प्रयोजन है।

यदि षड्जग्राम के मूल सप्तक में द्विश्रुतिक गांधार को दो श्रुति चढ़ाकर, अर्थात् उसे धैवत का संवादी बना दिया जाए, तो षड्जग्रामीय 'रे, ग, म, प, ध, नि'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही मध्यमग्राम के 'प, ध, नि॒, सा, रे, ग॒, म' हो जाते हैं और मध्यमग्रामीय अन्तर गांधार की प्राप्ति षड्जग्राम के काकलीनिषाद में हो जाती है। स्थिति इस प्रकार है—

षड्जग्राम के स्वर	सा	रे	ग॒	ग	म	×	प	ध	नि॒	नि	सा
मध्यमग्राम के स्वर	म	प	×	ध	नि॒	नि	सा	रे	ग॒	ग	म़
श्रुति-संख्या	०	३,	२,	२,	२,	२,	२,	३,	२,	२,	२
आदिम स्वर से दूरी घटकों में		४६,	७४,	९७,	१२५,	१४८,	१७६,	२२२,	२५०,	२७३,	३०१

इस प्रकार ऋषभादि के अन्तराल के अन्तर्गत षड्जग्राम और मध्यमग्राम के सभी स्वरों की प्राप्ति हो जाती है।

महर्षि भरत अथवा मतंग मुनि जैसे मनीषियों की इन उक्तियों के रहस्य तक किसी 'मेलवादी' की पहुंच नहीं है। उत्तर और दक्षिण के सभी मेलवादी ग्रन्थकारों का इन सव बातों से कोई सम्बन्ध नहीं।

बारह स्वर और श्रुति-चर्चा

ग्राम और मूर्च्छना के तत्त्व से जिन ग्रन्थकारों का कोई भी सम्बन्ध नहीं, उनका अनुवर्तन करने का परिणाम संगीत के लिए अच्छा नहीं हुआ है।

एक मनोरञ्जक बात यह है—

"हिन्दुस्थानीय पद्धत्यां द्वादशैव स्वरा मताः।
उद्गमस्थानभूतास्ते रागाणामिति संमतम्॥"

—लक्ष्यसंगीत

अर्थात्—"यह सम्मत है कि हिन्दुस्तानी पद्धति में बारह स्वर माने गए हैं, वे ही रागों के उद्गम स्थान हैं।"

यदि इस वक्तव्य को थोड़ी देर के लिए यथार्थ मान लिया जाए, तो प्रश्न यह उठता है कि मेलवादी ग्रन्थकार और उनके अनुवर्ती भातखण्डेजी यदि मेलों और उनके उत्पादक बारह स्वरों को राग-रचना के लिए पर्याप्त मानते थे और इन बारह स्वरों की स्थापना वीणा-दण्ड पर भी कर चुके थे, तो 'इन्हें ग्राम और श्रुतियों की चर्चा करने की क्या आवश्यकता थी ? भातखण्डेजी द्वारा की हुई ग्राम और श्रुति की चर्चा से संगीत-जगत् का भला क्या लाभ हुआ है' ?

भरत और शार्ङ्गदेव के सारणा-प्रकरण को न समझने के कारण और कुछ दाक्षिणात्य मित्रों से प्रभावित होने के कारण भातखण्डेजी को यह भ्रान्त धारणा हो गई थी कि भरत और शार्ङ्गदेव की समस्त श्रुतियाँ समान हैं और अपनी इसी धारणा के कारण ही उन्होंने स्वरों की शुद्धावस्था को उनकी आदिम श्रुति पर ला बिठाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"भातखण्डेजी ने न तो 'शुद्धता' का कोई लक्षण किया है और न 'श्रुति' अथवा उसके परिमाण का" । भरत और शार्ङ्गदेव की बात छोड़ दें । भातखण्डेजी ने अपने समस्त संगीत-साहित्य में स्पष्टतया यह कहीं नहीं कहा है कि "वे स्वयं समस्तश्रुतियों के परिमाण को परस्पर 'समान' मानते हैं या 'असमान' ? न उन्होंने श्रुतियों की सिद्धि किसी भी सारणा-विधि से की है" ।

ऐसी स्थिति में ईमानदारी की बात तो यह थी कि 'वे केवल बारह स्वरों और दस ठाठों की ही चर्चा करते। ग्राम और श्रुति के पचड़े में न पड़ते' ।

भातखण्डे-साहित्य के विद्यार्थी के मन में भरत और शार्ङ्गदेव के प्रति अश्रद्धा तो उत्पन्न हो जाती है, परन्तु 'ग्राम' और 'श्रुति' के विषय में भातखण्डेजी के किसी स्पष्ट दृष्टिकोण का लाभ नहीं होता। स्थिति शोचनीय है, परन्तु है यही। दुःखपूर्वक यह कहना पड़ता है।

'लक्ष्यसंगीत' पर हारमोनियम का प्रभाव

'लक्ष्यसंगीत' में कहा गया है—

"सरिगमपधाख्येषु शुद्धस्वरेषु केवलम् ।
प्रत्येकं षड्जभावेन कल्पितेषु यथाक्रमम् ।।
वेलावली तथा काफी भैरवी चेमनाह्वयः ।
खमाजासावरीत्येतेषण्मेलासिद्धिमाप्नुयुः ।।"

अर्थात्—"शुद्ध, अर्थात् बिलावल ठाठ के 'सा, रे, ग, म, प, ध' में से प्रत्येक स्वर को 'सा' मानने पर, क्रमशः बिलावल, काफी, भैरवी, ईमन, खमाज और आसावरी ठाठ की प्राप्ति होगी।"

'हारमोनियम' पर तो एक बच्चा भी इस कार्य को कर डालेगा, क्योंकि इसमें स्थापित सभी स्वरों के अन्तराल समान हैं, वह 'टेम्पर्ड स्केल' का वाद्य है, परन्तु भातखण्डेजी ने वीणा-दण्ड पर जो स्वर स्थापित किए हैं, वे भातखण्डेजी की, इस षड्ज-परिवर्तन से मेल प्राप्त करने की, उक्ति को अयथार्थ सिद्ध कर देंगे।

भातखण्डेजी के शुद्धगांधार (अन्तर गांधार) और तीव्र धैवत (तीव्र ऋषभ के संवादी धैवत) में दस श्रुति का अन्तर है, क्योंकि उनके कथनानुसार उनका शुद्धगांधार आठवीं श्रुति पर स्थित है और शुद्ध धैवत अठारहवीं पर, इसका अर्थ यह हुआ कि इन दोनों स्वरों में परस्पर षड्जमध्यम-भाव नहीं है। जब गांधार-धैवत में षड्ज मध्यम-भाव ही नहीं है, तब बिलावल के गांधार को 'षड्ज' मानने पर भैरवी ठाठ का शुद्ध मध्यम बिलावल के धैवत पर प्रलय-काल तक न मिलेगा और न बिलावल के 'धैवत' को 'षड्ज' मानने पर बिलावल के 'गांधार' पर आसावरी के पंचम की प्राप्ति होगी।

षड्ज-चालन के इस विधान में अनेक असंगतियाँ हैं। भातखण्डेजी के बिलावल के ऋषभ को 'षड्ज' मानने पर काफ़ी ठाठ की प्राप्ति कदापि नहीं होगी, षड्ज-ग्राम के मूल शुद्ध स्वर-सप्तक की प्राप्ति होगी, जिसे ऋषभ, गांधार, धैवत और निषाद भातखण्डेजी के काफ़ी ठाठ के 'रे, ग, ध, नि' की अपेक्षा एक-एक प्रमाण-श्रुति उतरे होंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिलावल के निषाद की मूच्छना

बिलावल के छह स्वरों से छह ठाठ बनाने की बात भातखण्डेजी ने कही है, यदि थोड़ी देर को इसे 'हारमोनियम' की दृष्टि से ठीक भी मान लें तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि बिलावल के निषाद से नाराज़ी क्यों ? उसे 'षड्ज' क्यों न माना गया ? उत्तर यह है कि बिलावल के निषाद को 'षड्ज' मानने से मेल-सिद्धान्त की 'कपाल-क्रिया हो जाती है। यह दशा यों है—

बिलावल के स्वर :—	नि	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
बिलावल के निषाद को षड्ज मानने पर :—	सा	रे	ग	म	मं	ध	नि	सां

अर्थात्—बिलावल के निषाद को 'षड्ज' मानने पर नवीन स्वरावलि में 'पंचम' स्वर्गवासी हो जाता है और मध्यम के दोनों रूप 'विराजमान' हो जाते हैं। मेल के लक्षण में पंचम का अस्तित्व अनिवार्य है और मध्यम का कोई एक रूप ही रह सकता है। यह स्थिति मेल-पद्धति की अनार्षता और अभारतीयता का प्रमाण है और इससे वेंकटमखी के बहत्तर मेलकर्त्तावाले उस सिद्धान्त का ही ध्वंस हो जाता है, जो भातखण्डे-पद्धति का आधार है। इसीलिए 'लक्ष्यसंगीत' में कुशलतापूर्वक इस चर्चा को बचाते हुए घोषणा की गई है—

"सरिगमपधनीति संगीते मेल ईरितः।
पर्य्यायो मूर्च्छनायाः स्यात् सत्कृतो लक्ष्यवर्त्मनि ॥"

अर्थात्—"सा रे ग म प ध नि को संगीत में मेल कहा गया है, यह लक्ष्यमार्ग में मूर्च्छना का पर्यायवाची है।"

मूर्च्छनाएँ तो सातों स्वरों से बनती हैं। मूर्च्छना-सिद्धान्त किसी भी दृष्टि से बारह अचल स्वरोंवाले मेल-सिद्धान्त में फ़िट बैठता ही नहीं। सातों स्वरों में से एक स्वर की मूर्च्छना को 'गायब' कर देना 'कौशल' तो है, 'सत्योपासना' नहीं।

सभी मेलवादी ग्रन्थकार मूर्च्छना-पद्धति के ग्रन्थों के रहस्य से अपरिचित रहे हैं। वेंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित, वेंकटमखी और उनके श्रद्धालु अनुवर्ती भातखण्डेजी ने मूर्च्छना-पद्धति के ग्रन्थों की दुर्बोधता स्वीकृत की है। ऐसी दशा में ग्राम, मूर्च्छना, श्रुति इत्यादि के विषय में जो निरन्तर ऊहापोह किया है, उससे सर्वथा मुक्त रहकर मूर्च्छना-पद्धति के ग्रन्थों पर विचार किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष यही है कि मूर्च्छना-पद्धति से विचार करने पर आज भी षड्जग्राम और मध्यमग्राम दृष्टिगोचर होंगे, मेल-पद्धति से विचार करने पर कदापि नहीं।

रामकृष्ण कवि की महत्वपूर्ण टिप्पणी

प्रो० रामकृष्ण कवि ने 'भरतकोष', पृ० ५१८-५१९ पर एक टिप्पणी संस्कृत भाषा में लिखी है। उसके कुछ अंशों का हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत करना लाभदायक है।

टिप्पणी इस प्रकार है—

"अर्वाचीन गायकों ने ऐसे अनेक राग सम्प्रदाय में प्रवर्तित किए हैं, जिनमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हनुमन्मत का आश्रय लिया गया है, जो नियमहीनता के कारण सुलभ हैं और जिनमें विदेशीय गान-शैली की छाया को भी आश्रय माना गया है। उनका मुख्य कारण यह है कि नारद, भरत, मतंग इत्यादि की वीणाओं में तीनों स्थानों की सभी श्रुतियों का वादन करने में समर्थ वीणा को लेकर प्रत्येक राग में प्रत्येक श्रुति-स्थान का निवेशन (स्थापन) सारिकाओं (पर्दों) द्वारा करके कोण (वादन-दण्ड) अथवा नाखूनों के द्वारा (बजाकर) विभिन्न प्रकार के ठायों और गीतों का प्रयोग होता था। भरत 'मत्त-कोकिला', स्वाति 'विपंची', नारद ,महती' और मतंग 'चित्रा' का वादन करते थे। (मत्तकोकिला और महती में इक्कीस-इक्कीस, विपंची में नौ और चित्रा में सात तार होते थे; इनमें से कोई वीणा सारिका युक्त नहीं होती थी।) मतंग इत्यादि व्यक्तियों ने सम्प्रदाय में किन्नरी वीणा का प्रवर्तन किया।(सारिकाएँ केवल किन्नरी में होती थीं।) तत्पश्चात् चिरकाल तक मुख्यतया किन्नरी ही बजाने का प्रचार रहा।

शार्ङ्गदेव की अपेक्षा अर्वाचीन (पश्चाद्वर्ती) लोगों ने 'मध्यमेला' और 'शुद्ध-मेला' इत्यादि वीणाओं का प्रचलन सम्प्रदाय में किया, जिनमें सारिकाओं (पर्दों) की स्थिति अचल या नियत थी। (ये मेलवादियों की 'सर्वैकरागमेला' वीणा और उत्तर-भारतीयों की अचल ठाठवाली 'सरस्वती' वीणा हैं। वीणा में एक स्थान के अन्तर्गत ईरानी बारह स्वर १. रास्त (सा), २. शाह्नवाज़ (रे॒), ३. दोका (रे), ४. कुर्द (ग॒), ५. सीका (ग), ६. गिरका (म), ७. हिजाज (म॑), ८. नवा (प), ९. हिसार (ध॒), १०. हुसेनी (ध), ११. अगन् (नि॒), १२. नीममाहुर (नि) की स्थापना खुसरो के प्रताप से हो चुकी थी और मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल में अमीर खुसरो की मृत्यु से कुछ ही पश्चात् यह वीणा मुहम्मद तुगलक के साथ देवगिरि और वहाँ से विद्यारण्यजी के पास विजयनगर पहुँच गई थी।)

ईसा की सोलहवीं शती के मध्यकाल में (हुमायूँ और शेरशाह के समय) हनुमन्मत का आश्रय लेकर सम्प्रदाय में प्रचलित रागों के बजाने में सुविधा उत्पन्न करने के लिए स्वरों के अनुमन्द्र, मन्द्र, मध्य, तार, तारोत्तर स्थान-निश्चित विभिन्न प्रकार की वीणाओं का प्रचलन बुद्धिमान गायकों के द्वारा किया गया। (रामामात्य का 'स्वरमेल-कलानिधि' इसी काल का है।) इस काल में अनुभवसिद्ध रागों के श्रुति-भेद का आश्रय लेकर समान स्वर श्रुति रागों का विभाजन (वर्गीकरण) एक-एक मेल में इकट्ठा करके प्रवर्तक रागों को नियत मेलों में विभाजित कर दिया गया। (यह कार्य ईसा की चौदहवीं सदी में, मुक़ाम-पद्धति का अनुसरण करके दक्षिण में विद्यारण्यजी ने आरम्भ कर दिया था।) पहले तांत के तारों का प्रयोग होता था; ईसा की दशम शती से लोहे के तारों का प्रयोग हुआ—यह भलीभाँति प्रतीत होता है। ताँत के तारों में उत्पन्न ध्वनि लोहे के तार की ध्वनि की अपेक्षा अधिक मधुर और मन्द्रगुणशालिनी होती है। लोहे की तन्त्री के प्रयोग से एक तन्त्री को छेड़ने से दूसरी और तीसरी तन्त्री में नाद स्वयमेव उत्पन्न होता है। रामामात्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और श्रीकण्ठ (अकबर-कालीन) ने उस अनुरणनात्मक ध्वनि का नामकरण 'स्वयंभू' किया। श्रुति-विभाग में रामामात्य इत्यादिकों ने काकली निषाद में एक अन्य भेद का निर्देश भी किया है। उसे न समझकर वेंकटमखीं ने रामामात्य के काम्भोजी-लक्षण में दोष निकाला होगा। रामामात्य से कुछ ही दिनों के पश्चात् सोमनाथ ने छियानवे मेलों की कल्पना की। रामामात्य ने उन्नीस मेलों की कल्पना की थी। रघुनाथ ने पंचदश (विद्यारण्योक्त पन्द्रह) मेल कहकर, रामामात्य के ग्रन्थ में जो-जो दोष वेंकटमखी ने निकाले, उन-उन दोषों से युक्त पन्द्रह मेलों में पचास रागों के लक्षण किए। (रघुनाथ का ग्रन्थ 'संगीत-सुधा' वास्तव में वेंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित का लिखा हुआ है। वेंकटमखी ने जो दोष रामामात्य के ग्रन्थ में दिखाए हैं, वे प्रायः 'संगीत-सुधा' में भी हैं। वेंकटमखी ने स्वयं को तानप्पा का अनुवर्ती कहा है, अपने पिता रघुनाथ का नहीं।) वेंकटमखी ने बहत्तर मेलों का निर्माण करके अनुभवसिद्ध पन्द्रह मेलों का ग्रहण करते हुए पचपन रागों का वर्णन किया, जो ठाय, आलाप, गीत और प्रबन्ध के लिए उपयोगी थे।

वेंकटमखी से प्रायः सौ वर्ष पश्चात् (अठारहवीं शती ई० में) आजकल के लिए उपयोगी वीणा का निर्माण हुआ।

(आधुनिक दाक्षिणात्य वीणा के निर्माण का श्रेय संग्रह चूड़ामणिकार गोविन्द को दिया जाता है। गोविन्द दीक्षित अर्थात् वेंकटमखी के पिता से यह सर्वथा विभिन्न व्यक्ति हैं। प्रो० कवि ने 'भरतकोष' की भूमिका में इन्हें ही वर्तमान दाक्षिणात्य वीणा के निर्माण का श्रेय दिया है।)

"मेलज्ञान से प्रत्येक राग-श्रुति-स्वर-स्थान का नियम सामान्य वादकों के लिए भी स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् मेल-विभाग साधारण-वादकों के लिए है, अचल सारिकायुक्त वीणा और मेल-पद्धति साधारण-वादकों के लिए उपयोगी है।) भरत इत्यादि महर्षियों के सम्प्रदाय से सिद्ध अठारह जातियों वाले प्राचीन विभाग (वर्गीकरण) में तार-मन्द्र-व्यवस्था, षाडव-औडुव-भेद, स्वर का बहुत्व और अल्पत्व ग्रह, अंश, न्यास इत्यादि का विभाग इत्यादि तत्त्व गायक के लिए स्पष्ट हो जाते हैं; मेलज्ञान में ये सभी विशेषताएँ अन्वेषणीय एवं विचारणीय ही बनी रहती हैं। जाति-विभाग में वीणा के चलसारिकायुक्त होने के कारण वादकों के लिए श्रुति-स्वर के ज्ञान का निष्कर्ष आवश्यक होता है।")

प्रो० रामकृष्ण कवि की इस लम्बी टिप्पणी में कोष्ठक के अन्तर्गत शब्द हमारे हैं। वेंकटमखी ने अपने लिए उपयोगी मेल वास्तव में उन्नीस माने हैं, पन्द्रह नहीं।

प्रो० रामकृष्ण कवि ने 'भरतकोष', पृष्ठ १८९ पर जो कहा है, उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

("वेंकटमखी का मत भी हनुमन्मत है। उसमें भरतोक्त श्रुति-संख्या का नियम नहीं है। वह नियम तो जाति-रागों में ही दिखाई देता है। आंजनेय ने एक-श्रुतिक स्वर से लेकर षट्श्रुतिक तक स्वर बताए हैं। उस (आंजनेय) के मत में, संवाद की अप्राप्ति के कारण ग्राम-विभाग नहीं है। देशी रागों में स्वरों की श्रुति-संख्या का नियम नहीं है। वेंकटमखी के वराली-मध्यम में सप्तश्रुतिकता (गांधार के पश्चात् सात श्रुतियों के अन्तर पर होना) विद्यमान है। उसी ने एक अन्य स्थल पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मर्त्य-लोक में गांधार ग्राम का प्रयुक्त होना बताया है। वीणा में बारह स्वरों की स्थापना करने से और उनके अनुसार श्रुतियाँ मिलाने से ग्राम-विभाग स्पष्ट नहीं होता।")

अपनी इस टिप्पणी में कवि महोदय ने वेंकटमखी को हनुमन्मत का अनुयायी बताया है। उनकी इस स्थापना का आधार ज्ञात नहीं, तथापि इस टिप्पणी में भी स्पष्ट कहा है कि वेंकटमखी ने वीणा के एक 'स्थान' में बारह स्वर स्थापित करके श्रुतियाँ मिलाने की जो विधि बताई है, उससे ग्राम-विभाग स्पष्ट नहीं होता। कवि महोदय का यह कथन अक्षरश: सत्य है।

वेंकटमखी की चौबीस श्रुतियाँ

यद्यपि वेंकटमखी ने 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में बाईस श्रुतियों की चर्चा की है, परन्तु अपने एक गीत में, जो कि गुण्डक्रिया राग में है, श्रुतियों की संख्या चौबीस कही है।

'संगीतसार-संग्रह' नामक तेलगू-ग्रन्थ के लेखक अकलंक ने भी चौबीस श्रुतियाँ मानी हैं। इस सम्प्रदाय का नारा है—

"पञ्चपञ्चचतुश्चैव षड्जपंचममध्यमा:।
द्वेद्वे निषादगान्धारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ॥"

अर्थात्—"षड्ज और पंचम में पाँच-पाँच, मध्यम में चार, ऋषभ और धैवत में तीन-तीन एवं निषाद और गांधार में दो-दो श्रुतियाँ होती हैं।"

इस स्थिति में श्रुति-संख्या-नियम से प्राप्त होने वाला वह संवाद अप्राप्त रहता है, जो बाईस श्रुतियों वाले ग्राम-भेद में प्राप्त होता है। स्थिति यह है—

स्वर-संज्ञाएँ—	षड्ज,	ऋषभ,	गांधार,	मध्यम,	पंचम,	धैवत,	निषाद,	षड्ज
प्रत्येक स्वर का श्रुति-परिमाण—	०	३	२	४	५	३	२	५
षड्ज से दूरी श्रुति-संख्या में—	०	३	५	९	१४	१७	१९	२४

कवि महोदय के कथन को स्पष्टतया समझने के लिए इस सारणी में इतना देखना पर्याप्त है। इस स्थिति में संवाद और श्रुति-संख्या का सामञ्जस्य नहीं रहता और असंगतियाँ हैं। इन पर विचार किया जाए—

(क) 'सा—प' में चौदह और 'प—सां' में दस श्रुतियों का अन्तर है। बाईस श्रुतियों वाले ग्राम-सिद्धान्त में यह अन्तर क्रमश: तेरह और नौ श्रुतियों का है।

(ख) 'प—सां' में 'षड्जमध्यम-भाव प्रत्यक्ष है। इन स्वरों में यह अन्तर दस श्रुतियों का है और यही 'षड्जमध्यम-भाव' षड्ज-मध्यम में है, परन्तु वहाँ नौ श्रुतियों का अन्तर है। अर्थात् चौबीस श्रुतियों वाले सिद्धान्त में 'कॉन्सोनेंस ऑव् फ़ोर्थ' का सम्बन्ध श्रुति-संख्या के आधार पर निश्चित नहीं किया जा सकता।

(ग) ग्राम-सिद्धान्त में गांधार-पंचम का अन्तर आठ श्रुतियों का है। इस सिद्धान्त में 'ग—प' अन्तर नौ श्रुतियों का है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(घ) ग्राम-सिद्धान्त में 'म—ध' अन्तर सप्तश्रुतिक है, जबकि यहाँ 'म—ध' अन्तर अष्ट-श्रुतिक दिखाई देता है।

(ङ) मध्यम की स्थिति षड्ज और निषाद के ठीक बीचोबीच में होनी चाहिए, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं है, क्योंकि 'मध्यम' षड्ज से नव श्रुतियों के अन्तर पर है, परन्तु निषाद से दस श्रुति पूर्व है। ग्राम-सिद्धान्त में 'मध्यम' षड्ज से नौ श्रुति पश्चात् और निषाद से नौ श्रुति पूर्व रहता है।

यह स्थिति स्पष्टतया बताती है कि चौबीस श्रुतियों वाले सिद्धान्त में संवाद का सम्बन्ध श्रुति-संख्या-नियम के साथ नहीं रहता।

दक्षिण के प्रसिद्ध सन्त त्यागराज ने अकलंक के मेलकर्ताओं का ही अनुगमन किया है। वे मेलकर्त्ता चौबीस श्रुतियोंवाले सिद्धान्त के ही आधार पर निर्मित हैं। 'संग्रह-चूडामणि' के कर्त्ता गोविन्द ने भी चौबीस श्रुतियाँ ही मानी हैं।

श्रीनिवास की चौबीस श्रुतियाँ

औरंगजेब-कालीन ग्रन्थकार श्रीनिवास ने भी चौबीस श्रुतियों वाले सिद्धान्त की बात यों कही है—

"चतुर्भिस्तौ सरी प्रोक्तौ गनी द्वाभ्यां व्यवस्थितौ।
चतुर्भिर्पमधा युक्ता एवं श्रुतिविनिर्णयः।।"

अर्थात्—"षड्ज और ऋषभ चार-चार श्रुतियों से गान्धार-निषाद दो-दो श्रुतियों से और पंचम, मध्यम और धैवत चार-चार श्रुतियों से व्यवस्थित हैं।"

यह स्थिति यों है—

स्वर-संज्ञाएं	षडज,	ऋषभ,	गांधार,	मध्यम,	पंचम,	धैवत,	निषाद,	षड्ज
श्रुति-परिमाण	०	४	२	४	४	४	२	४
श्रुति-संख्या में षड्ज से अन्तर	०	४	६	१०	१४	१८	२०	२४

इस विभाजन की दृष्टि से षड्जमध्यम-भाव का अर्थ दस श्रुतियों का अन्तर और षड्जपंचम-भाव का अर्थ चौदह श्रुतियों का अन्तर है। षड्ज-मध्यम, मध्यम-निषाद, यहाँ दस-दस श्रुतियों के अन्तर पर दिखाए गए हैं और पंचम तथा तारषड्ज में भी दस श्रुतियों का अन्तर है। षड्ज-पंचम, ऋषभ-धैवत, गांधार-निषाद और मध्यम-तारषड्ज में चौदह-चौदह श्रुतियों का अन्तर दिखाया गया है। यह एक स्थूल दृष्टि है, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीनिवास के द्वारा वीणा पर स्थापित निषाद-षड्ज का अन्तर चतुःश्रुतिक न होकर त्रिश्रुतिक है। इस सिद्धान्त की संगति भी ग्राम-भेद से नहीं बैठती।

मेल और मूर्च्छना का मूलभूत पार्थक्य

यहाँ हमें इतना ही कहना है कि दक्षिण-भारत के मेलवादी हों या उत्तर-भारत के ठाठवादी, इनके स्वर-स्थापन और राग-वर्गीकरण-पद्धति का कोई भी सम्बन्ध ग्राम-भेद या ग्रामाश्रित मूर्च्छनासिद्धान्त के साथ नहीं। इस वास्तविकता को प्रो० रामकृष्ण कवि और टी० आर० श्रीनिवास आयंगर जैसे दाक्षिणात्य मर्मज्ञ मुक्तकण्ठ से स्वीकृत करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठाकुर नवाबअली खाँ ही नहीं, 'भातखण्डे साहित्य का प्रत्येक श्रद्धालु विद्यार्थी उन दाक्षिणात्य मेलवादियों से व्यर्थ ही आतंकित रहता है, जिनका ज्ञान, ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त के विषय में शून्य था'। अधिकांश व्यक्तियों के मन में भातखण्डे-साहित्य के अध्ययन से यह भ्रान्त धारणा व्याप्त हो गई कि दक्षिण-भारत का स्वर-शास्त्र तो शुद्ध (!) है और उत्तर-भारत का भ्रष्ट। जबकि वास्तविकता यह है कि 'मेल' या 'ठाठ' का लक्षण, मेलों की स्थापना के सिद्धान्त, एक 'स्थान' (मन्द्र, मध्य या तार) में बाहर स्वरों की स्थापना से भरत, मतंग, शार्ङ्गदेव, कुम्भा इत्यादि की ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति से कोई सम्बन्ध नहीं है, जो बाईस श्रुतियों के सिद्धान्त पर आधृत है।

यह निर्विवाद है कि भरत की परम्परा में मूर्च्छना-परिवर्तन से विभिन्न स्वर-सप्तकों की प्राप्ति होती है।

जो लोग षड्ज को ही आधार मानकर एक 'स्थान' (मन्द्र, मध्य या तार) में कोमल, अतिकोमल, तीव्र, तीव्रतर इत्यादि स्वरों की प्राप्ति करना चाहते हैं, उन्हें ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त से चिपके रहने का मोह छोड़ देना चाहिए था। एक ही 'स्थान' के अन्तर्गत इन स्वरों की प्राप्ति भरत की सारणा-विधि में, षड्जादि मूर्च्छना को आधार मानकर तो त्रिकाल में नहीं हो सकती। वहाँ जो श्रुति-क्रम प्राप्त होगा, उसमें कोमल ऋषभ और धैवत ब्रह्मा को भी न मिलेंगे, अतिकोमल ऋषभ-धैवत की तो चर्चा ही व्यर्थ है। हाँ, भरत द्विश्रुतिक निषाद को 'षड्ज' मानने पर सारणा-प्राप्त श्रुति-क्रम में कुछ आधुनिक स्वर इस प्रकार मिल जाएँगे—

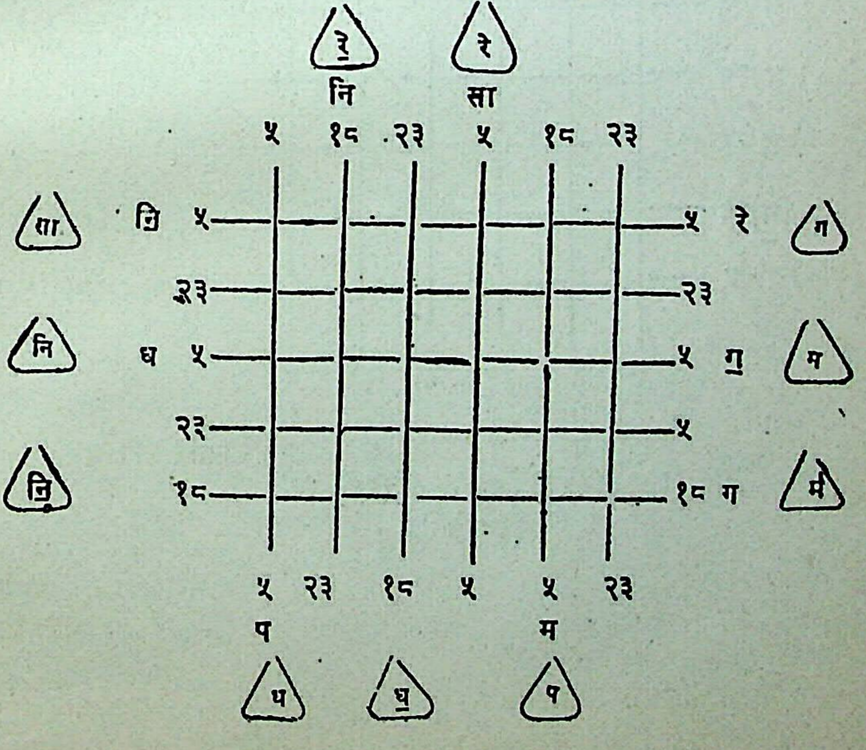

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार भरत के षड्जग्रामीय मूल सप्तक के द्विश्रुतिक निषाद को 'षड्ज' मानने पर भी षड्ज, अतिकोमल ऋषभ, तीव्र ऋषभ, (भातखण्डेजी के शुद्ध ऋषभ) अन्तर गांधार, शुद्ध मध्यम, तीव्र मध्यम, पंचम, अतिकोमल धैवत, तीव्र धैवत, कोमल निषाद, काकली निषाद की प्राप्ति होती है। 'षड्ज' माने हुए द्विश्रुतिक निषाद के पश्चात् जिनका अन्तर क्रमशः २३, ५१, ९७, १२५, १४८, १७६, १९९, २२७, २५५, २७३, घटक है। कोमल ऋषभ, कोमल गांधार, कोमल धैवत की प्राप्ति नहीं होती। वास्तव में मूर्च्छना-पद्धति का रहस्य ही यह है कि मूर्च्छना बदलकर विभिन्न स्वर-सप्तकों की प्राप्ति की जाए।

चक्रिक प्रक्रिया

यूनान की जो परम्परा षड्ज-पंचम-चक्र और षड्ज-मध्यम-चक्र के आधार पर जिन चौबीस श्रुतियों की सिद्धि करती है, उनका मान घटकों में इस प्रकार है :—

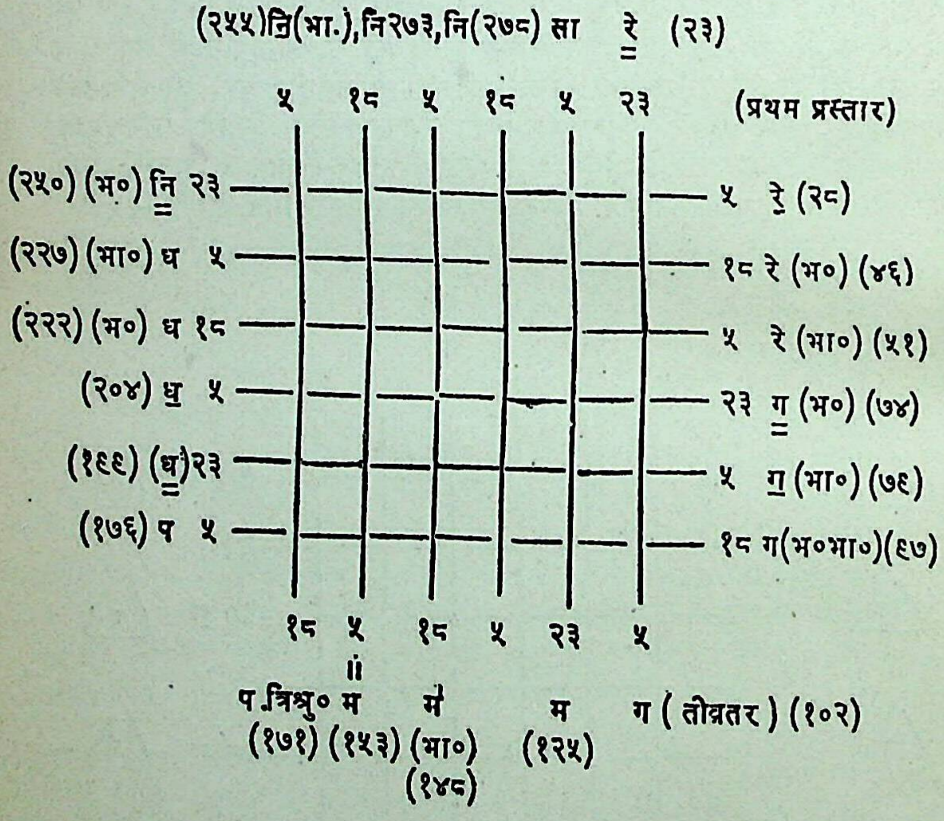

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यूनानी चक्रिक-प्रक्रिया के आधार पर प्राप्त इस मण्डल-प्रस्तार में इस दृष्टि से षड्ज और पंचम पंचश्रुतिक हैं, अर्थात् नि (२५०) और षड्ज का अन्तर और शुद्ध मध्यम तथा पंचम का अन्तर इक्यावन घटक तो है, परन्तु वह ५+१८+५+१८+५=५१ है; जब ग (७४) और शुद्ध मध्यम का अन्तर इक्यावन घटक तो है, परन्तु वह ५+१८+५+२३=५१ है। अर्थात् 'ग-म' अन्तराल चतुःश्रुतिक होने पर इक्यावन घटक है और 'नि-सा' अन्तराल और 'म-प' अन्तराल पंचश्रुतिक होने पर इक्यावन घटक है। इस प्रकार श्रुति-संख्या-नियम इस विधि में चरितार्थ नहीं होता।

उपर्युक्त मण्डल-प्रस्तार में रेखा के कोण के पास विशिष्ट श्रुति का परिमाण घटकों में लिखा गया है। उस परिमाण के पास स्वर-संज्ञा लिखी गई है। स्वर-संज्ञा के साथ कोष्ठक में लिखे हुए (भ०) का तात्पर्य 'भरत' और (भा०) का तात्पर्य भातखण्डे से है।

अतिकोमल स्वरों के नीचे दो तिर्यक् (पड़ी) रेखाएँ हैं। 'प त्रिश्रु०' का अर्थ त्रिश्रुतिक पंचम है।

इस प्रक्रिया में च्युत षड्ज की प्राप्ति होती है।

अकलंक के सिद्धान्त में भी षड्ज और पंचम को पंचश्रुतिक और मध्यम को चतुःश्रुतिक माना गया है। अकलंक का मूल ग्रन्थ हमारे समक्ष नहीं है। इस सम्बन्ध में अधिक नहीं कहा जा सकता।

यदि पूर्वोक्त मण्डल-प्रस्तार के 'नि' (२५०) को षड्ज माना जाए तो स्थिति यों है—(जैसा अगले पृष्ठ पर दर्शाया गया है)

दाक्षिणात्यों के रे-ध की त्रिश्रुतिकता, रे-ध की पंचश्रुतिकता

इस दृष्टि से दाक्षिणात्यों के शुद्ध (!) 'रे' (२८) 'ध' (२०४) तो त्रिश्रुतिक सिद्ध हो जाते हैं, परन्तु वे भरत के 'त्रिश्रुतिक' नहीं हैं, क्योंकि इन श्रुतियों की प्राप्ति चक्रिक-प्रक्रिया से हुई है, भरत की सारणा-प्रक्रिया से नहीं। इसी प्रकार 'रे' (५१) 'ध' (२२७) की पंचश्रुतिकता भारतीय न होकर 'यूनानी' होगी।

अत्यन्त विलक्षण बात यह है कि श्रीनिवास ने चौबीस श्रुतियोंवाला जो वर्गीकरण दिया है, वह इस मण्डल प्रस्तार में सच्चा बैठता है।

श्रीकण्ठ की श्रुति-व्यवस्था

श्रीकण्ठ ने षड्ज, ऋषभ, मध्यम, पञ्चम, धैवत को चतुःश्रुतिक बताया है और गांधारनिषाद को द्विश्रुतिक। यदि 'ग' (७४) को श्रीनिवास का गांधार माना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

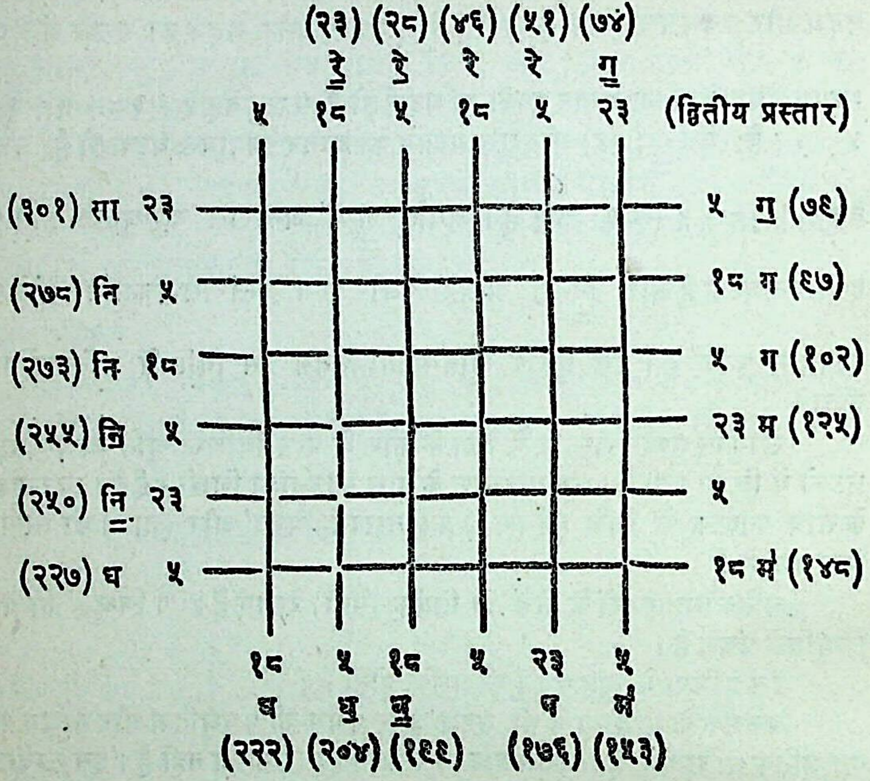

जाए, तो मध्यम (१२५), पञ्चम (१७६), धैवत (२२२) भी इस विधान के अनुसार चतुःश्रुतिक ठहरते हैं और 'नि' (२५०) को श्रीनिवास का निषाद मानने पर सा (३०१) और 'रे' (४६) भी चतुःश्रुतिक ठहरते हैं। 'ग' (७४) और 'नि' (२५०) की द्विश्रुतिकता भी सिद्ध हो जाती है।

अहोबल और श्रीनिवास का तन्त्री-विभाजन और श्रुति-संख्या नियम

अहोवल और श्रीनिवास ने तार की लम्बाई पर जो स्वर 'स्वरज्ञान-विहीनों' के लिए बताए हैं, उनका मान तो 'सा' (०) 'रे' (५१), 'ग' (७९), 'म' (१२५), 'प' (१७६), 'नि' (२५५) है, परन्तु धैवत का स्थान निश्चित नहीं है। आधुनिक विद्वानों ने इनका 'ध' (२२७) मान लिया है, परन्तु इस अवस्था में 'म' (१२५) तो त्रिश्रुतिक ही रह जाता है, चतुःश्रुतिक नहीं रहता। दूसरी बात यह है कि अहोवल के तथाकथित 'ग' (७९) और 'प' (१७६) में इस दृष्टि से सप्तश्रुतिक अन्तर रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। अहोबल तो बाईस श्रुतियों की ही बात करते हैं, अतः उनके श्रुति-संख्या-विधान और तार की लम्बाई पर निश्चित किए उनके स्वरों के परिमाण में प्रत्यक्ष विरोध है। अपने धैवत का स्थान निश्चित करने में अहोबल और श्रीनिवास—दोनों ही असफल रहे हैं।

अहोबल ने तन्त्री पर जिन 'रे' (५१) और 'प' (१७६) की स्थापना की है, उनमें परस्पर षड्जपञ्चम-भाव है; परन्तु इन दोनों स्वरों में पाए जाने वाले इस षड्जपञ्चम-भाव की चर्चा उन्होंने कहीं नहीं की है। भरत के 'रे' (४६) और 'प' (१७६) में तो दस श्रुतियों का अन्तर है। अहोबल अपनी इस त्रुटि की ओर ध्यान नहीं देते कि तन्त्री पर उनके द्वारा स्थापित 'रे' (५१) चतुःश्रुतिक है, त्रिश्रुतिक नहीं और वे यह भी नहीं देखते कि तन्त्री पर उनके द्वारा स्थापित 'ग॒' (७९) 'स' से छह श्रुतियों के अन्तर पर है, पाँच श्रुतियों के अन्तर पर नहीं।

श्रीनिवास की बात दूसरी है, वे चौबीस श्रुतियों के क़ायल हैं।

सम्भव हो सकता है कि 'स्वरज्ञान-विहीनों' के लिए जो स्वर-स्थापन का मार्ग अहोबल ने बताया है, उसे 'स्वरज्ञान-सम्पन्न' होने के कारण वे स्वयं न अपनाते हों। तार के सरल विभाजन से जो स्वर उन्होंने स्थापित किए हैं, वे तो 'स्वरज्ञान-विहीनों' के लिए हैं। सम्भव है, वे स्वयं संवाद के आधार पर स्वर स्थापित करते हों, क्योंकि उन्होंने स्वर स्थापना का सच्चा आधार स्वर-संवादिता-ज्ञान बताया है। अहोबल के तन्त्रीस्थ 'ग॒' (७९) और 'प' (१७६) में ९७ घटक का अन्तर है; यह प्राकृतिक सप्त-श्रुति अन्तर है; मतङ्ग ने इसे भी एक प्रकार का 'संवाद' कहा है। यह निश्चित है कि अहोबल इस प्राकृतिक सप्तश्रुति अन्तर से परिचित थे, जो भरत के 'म' (१२५), 'ध' (२२२) में प्राप्त है। यदि अहोबल अपने व्यवहार में इस धैवत की स्थापना करते हों, जिसका तन्त्री पर सरल मान बताया जाना कठिन है और इसके साथ संवाद करके अपने व्यवहार में ऋषभ(४६)की स्थापना करते हों, 'म' (१२५)से संवाद करके 'नि॒॒'(२५०)की स्थापना और उससे संवाद करके 'ग॒॒'(७४) की स्थापना करते रहे हों, तो उनका शुद्ध सप्तक भरत के षड्जग्रामीय मूल सप्तक से अभिन्न हो जाएगा, परन्तु यह अनुमान-मात्र है। राग-वर्गीकरण में अहोबल ने प्रमाण-श्रुति (५ घटक) अन्तर की उपेक्षा सर्वत्र की है।

अहोबल की असंगति का मूल बाईस श्रुतियों वाले सिद्धान्त से चिपके रहने में हैं। श्रीनिवास ने चौबीस श्रुतियाँ मानी हैं।

चौबीस श्रुतियों वाले द्वितीय मण्डल-प्रस्तार में श्रीनिवास का 'श्रुति-संख्या-नियम' सच्चा बैठता है। उनके चतुःश्रुतिक 'रे' (४६) और 'ध' (२२२) हैं, श्रुति-संख्या की दृष्टि से उनके 'ग॒॒' (७४) और 'नि॒॒'(२५०) द्विश्रुतिक हैं, 'म' (१२५), 'प' (१७६) और 'सा' (३०१) चतुःश्रुतिक हैं और यह स्वर-समुदाय संवाद की दृष्टि से (श्रुति-संख्या-नियम की दृष्टि से नहीं) भरत का षड्जग्रामीय आदिम शुद्ध स्वर सप्तक है। अन्तर इतना है कि जिन 'रे' (४६) 'ध' (२२२) को भरत त्रिश्रुतिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं, उन्हीं को श्रीनिवास चतुःश्रुतिक कहते हैं। यदि स्वर-ज्ञान विहीनों के लिए जो स्वर श्रीनिवास ने तन्त्री-विभाजन के सिद्धान्त से बताए थे, वे स्वयं स्वर-ज्ञानी होने के कारण सच्चे स्वरों की स्थापना उनसे भिन्न रूप में करते थे, तो श्रीनिवास पर चक्रिक-प्रकिया का प्रभाव सिद्ध है, जिसका उपयोग 'रामामात्य' श्रीनिवास से पूर्व कर चुके थे। श्रीनिवास की बुद्धिमत्ता इसमें है कि वे यह समझ गए कि चक्रिक-प्रक्रिया से चौबीस श्रुतियों की प्राप्ति होती है।

चक्रिक-प्रक्रिया में श्रुति-संख्या-नियम का अभाव

चक्रिक-प्रक्रिया का एक दोष यह है कि उसे ४६ घटक का अन्तराल त्रिश्रुतिक [ग(७६)+१८+५+२३=म (१२५)] भी होता है और चतुःश्रुतिक [सा,+५ +१८+५+१८=रे (४६)] भी।

श्रीनिवास के द्वारा स्वरज्ञान-विहीनों के लिए जिन स्वरों की स्थापना की गई है, उसमें श्रुति-संख्या-नियम और संवाद की चर्चा अत्यन्त स्थूल दृष्टि से की गई है; परन्तु यदि चक्रिक-प्रक्रिया के सिद्धान्त पर स्वर प्राप्ति करके चौबीस श्रुतियों वाले द्वितीय मण्डल-प्रस्तार के अनुसार श्रोनिवास का श्रुति-संख्या-नियम चरितार्थ किया जाए, तो वह ठीक बैठता है। बात केवल इतनी रह जाती है कि पूर्ववर्ती स्वर से ४६ घटकों के पश्चात् स्थित स्वर भी उनकी भाषा में चतुःश्रुतिक हैं और पूर्ववर्ती स्वर से ५१ घटकों के पश्चात् स्थित मध्यम (१२५), पंचम (१२५) और षड्ज (३०१) भी चतुःश्रुतिक हैं। ५१ सेवटं का अन्तर पंचश्रुतिक [सा,+५+१८+५+१८+५=रे(५१) और 'प' (१७६)+५+१८+५+१८+५=ध(२२७)] भी है और चतुःश्रुतिक [म(१२५)+५+१८+५+२३=प (१७६) और नि (२५०)+५+१८+५+२३=सा (३०१)] भी। यह दोष चक्रिक-प्रक्रिया का है, जिससे श्रुति-संख्या-नियम का कोई सम्बन्ध नहीं।

श्रुतियों का नामकरण और पश्चाद्वर्तियों द्वारा उसका दुरुपयोग

महर्षि भरत ने श्रुतियों का कोई नामकरण नहीं किया है, केवल एक श्रुति-विशेप को प्रमाण-श्रुति कहा है, जो उनकी श्रुतियों में सबसे अधिक छोटी है। भरत की सबसे बड़ी श्रुति का नवीन नामकरण आचार्य बृहस्पति ने 'महती' श्रुति, उससे छोटी का 'उपमहती' श्रुति किया है। सबसे अधिक छोटी श्रुति का प्राचीन नाम 'प्रमाण-श्रुति' है ही। महती श्रुति का घटक-परिमाण २३, उपमहती का १८ और प्रमाण-श्रुति का ५ है। ये सरल मान हैं। प्रमाण-श्रुति का ज्ञान प्रथम और चतुर्थ सारणा में, महती श्रुति का ज्ञान द्वितीय सारणा में और उपमहती श्रुति का ज्ञान तृतीय सारणा में होता है।

शार्ङ्गदेव ने और उनके अनुवर्ती महाराणा कुम्भा ने 'तीव्रा' इत्यादि जिन श्रुति संज्ञाओं का निर्देश किया है, वे विशिष्ट परिमाण से युक्त और सारणा-विधि के परिणाम-स्वरूप विशिष्ट क्रम से प्राप्त श्रुतियाँ हैं। यदि किसी विधि से, जैसे चक्रिक-प्रक्रिया से यदि श्रुतियों की प्राप्ति की जाए, तो षड्ज की अपेक्षा प्रत्येक श्रुति की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूरी में अन्तर पड़ेगा और श्रुतियों के पारस्परिक अन्तराल में भी अन्तर आएगा। अत: भरत की अथवा मतंग, शार्ङ्गदेव, कुम्भा के द्वारा निर्दिष्ट सारणा-विधि के परिणामरूप विशिष्ट क्रम से प्राप्त श्रुतियों के नाम ही तीव्रा इत्यादि हैं, परन्तु मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकार एक ही 'स्थान' (मन्द्र, मध्य या तार) में कोमल, अतिकोमल, तीव्र, तीव्रतर इत्यादि स्वर गिनाकर उन सबको 'तीव्रा' इत्यादि के हिसाब से फ़िट करना चाहते हैं; यह असंगत और व्यर्थ प्रयत्न है।

निष्कर्ष

(१) वह कोई सप्तक किसी ग्राम का मूल सप्तक नहीं कहला सकता, जिसमें 'ग्रामीण' स्वर की विशेषताएँ न हों। (२) अमीर खुसरो ने भारतीय रागों का वर्गीकरण ईरानी दृष्टिकोण से किया था और यह वर्गीकरण अमीर खुसरो की मृत्यु से कुछ ही समय पश्चात् मुहम्मद तुगलक के साथ देवगिरि और तुग़लक के राज्यकाल में ही विद्यारण्यजी के पास निजयनगर पहुँच गया था। (३) पुण्डरीक, श्रीकण्ठ, अहोवल, रामामात्य, गोविन्द दीक्षित, वेंकटमखी इत्यादि ग्रन्थकारों ने ग्राम-मूर्च्छना तत्त्व नहीं समझा था। (४) भातखण्डेजी के बिलावल में, स्वरों की शुद्ध अवस्था आदिम श्रुति पर मानने के कारण तीव्र ऋषभ (भातखण्डेजी के शुद्ध ऋषभ) तक की प्राप्ति नहीं होती। (५) भातखण्डे साहित्य में 'शुद्धता' की कोई परिभाषा नहीं और न 'श्रुति' का ही कोई संगत लक्षण है। (६) बिलावल में षड्ज-चालन करने से भातखण्डेजी के अन्य ठाठों की सिद्धि नहीं होती। (७) रामकृष्ण कवि भी यह सत्य स्वीकृत करते हैं कि मूर्च्छना-पद्धति और मेल-पद्धति सर्वथा विभिन्न पद्धतियाँ हैं और अचल सारिकावाले वाद्य शार्ङ्गदेव की अपेक्षा अर्वाचीन हैं। (८) अकलंक चौबीस श्रुतियाँ मानते हैं। उनके प्रभाव से 'रागलक्षण' में वेंकटमखी भी चौबीस श्रुतियाँ मानने लगे थे। त्यागराज भी इस सिद्धान्त से प्रभावित थे। (९) चौबीस श्रुतियोंवाले सिद्धान्त में श्रुति-संख्या-नियम चरितार्थ नहीं होता। (१०) श्रीनिवास भी चौबीस श्रुतियाँ मानते थे। (११) भरत की एक मूर्च्छना के अन्तर्गत स्थापित श्रुतियों में समस्त स्वरों की प्राप्ति नहीं होती। (१२) चक्रिक-प्रक्रिया के आधार पर प्राप्त चौबीस श्रुतियों के मानों की, सारणा-प्राप्त श्रुति-मानों से भिन्नता है।(१३) अहोबल ने तार की लम्बाई के आधार पर जो स्वर-स्थान निश्चित किए हैं, वे श्रुति-संख्या-नियम पर खरे नहीं उतरते। (१४) श्रीनिवास स्थूलतया अहोबल के अनुयायी प्रतीत होते हैं, परन्तु चक्रिक-प्रक्रिया में प्राप्त निषाद (२५०) को षड्ज मानने तथा उन्हें स्वरज्ञ मानने पर चक्रिक-प्रक्रिया में प्राप्त चौबीस श्रुतियों से उनकी श्रुति-संख्या की संगति बैठ जाती है। (१५) मुआरिफुन्नग़मात में शंकाएँ ग्राम-मूर्च्छना-तत्त्व से अपरिचित होने का परिणाम है। •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक शोध-यात्रा

'सुरसिंगार-संसद् शोध-केन्द्र' के तत्त्वावधान में यह शोध-यात्रा मेरे द्वारा नवम्बर, १९६४ ई० में की गई थी। इस यात्रा का उद्देश्य एक ओर जहाँ रामपुर (उत्तर-प्रदेश) के विश्वविख्यात पुस्तकालय में संगीत से सम्वद्ध सामग्री की खोज था, वहाँ रामपुर के वयोवृद्ध गुणियों से परिचय प्राप्त करना और उनसे अनेक ऐसी आवश्यक वातें जानना भी था, जिनका लेख-बद्ध हो जाना आवश्यक था।

जिन सज्जनों ने इस वार्तालाप में योगदान दिया, वे हैं - सर्वश्री आचार्य बृहस्पति, सैयद इब्नेअली, उस्ताद सलामत हुसेन खाँ और उस्ताद वजीरहुसेन खाँ।

आचार्य बृहस्पति संगीत-जगत् के लिए सुपरिचित हैं, अवशिष्ट सज्जनों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

सैयद इब्नेअली 'इब्बन मियाँ'

खानदानी सैयद, अवस्था प्राय: ८५ वर्ष; भातखण्डेजी, हाफिजअली खाँ और अलाउद्दीन मेहर वालों के गुरुवन्धु। वासत खाँ के पुत्र मुहम्मदअली खाँ, उस्ताद वजीर खाँ, उस्ताद मुन्नन खाँ इत्यादि प्रसिद्ध गुणियों के शिष्य। रामपुर के स्व० नवाब हामिदअली खाँ और वर्तमान नवाब रजाअली खाँ के दरवारी। गुनीजनखाने के अफसर। गाते और हारमोनियम बजाते हैं।

उस्ताद सलामत हुसेन खाँ

उस्ताद अलाउद्दीन मैहरवालों की गुरु-पम्परा के वंशधर। शिक्षित गुणी। वीणा में साहबजादा छम्मन साहब, मृदंग में रामपुर-दरबार के स्व० गयाप्रसाद पखावजी तथा गाने और सितार में अपने पूर्वजों के शिष्य। बंगाल में विशेषतया सम्मानित। मैहर के 'राजकीय संगीत-विद्यालय' में शिक्षक भी रहे। आजकल रामपुर में हैं। रागों की समझ-बूझ और याददाश्त बहुत ही अच्छी है। रेडियों के विभिन्न स्टेशनों से गाते रहे हैं। आयु ६० वर्ष। रामपुर-दरवार में भी वर्षों रहे।

उस्ताद वजीर हुसेन खाँ

अपने चचा बुनियादहुसेन खाँ, पिता हवीबुर्रहमान खाँ और काले नजीर खाँ के शिष्य। खयाल, ठुमरी, दादरा, टप्पा, चैती, कजरी—सब कुछ बहुत अच्छा गाते हैं। पूरब-अंग और पंजाब-अंग—दोनों पर समान अधिकार है।

सारंगी और तबला बजाने का शौक है; दोनों वाद्यों पर समान अधिकार है। महफिल में नहीं बजाते। बंगाल में बहुत बहुत रहे। रामपुर-दरबार ने वर्षों आश्रय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया। आयु प्राय: ६० वर्ष। विभिन्न रेडियो-स्टेशनों से गाते रहे हैं।

(आचार्य बृहस्पति, श्री इब्नेअली, श्री सलामत हुसैन खाँ और लेखिका)

सु०—बड़े दिनों से रामपुर के बारे में बहुत कुछ सुना है। सैयद साहब, आप बुज़ुर्ग हैं, उम्मीद है कि आप बड़े-बूढ़ों के कुछ हालात हमें बताएंगे। आप तो वज़ीर खाँ साहब के भी शागिर्द हैं?

इ०—जी हाँ! वज़ीरखाँ साहब एक बार 'इमाम बाड़े' में थे। मैंने कहा कि आप इस अलग रखे हुए 'अलम' (ध्वजा) का पर्दा पकड़कर क़सम खाइए कि इल्म नहीं छिपाएँगे। उन्होंने वह क़सम खाई थी। फिर तो वज़ीर खाँ साहब ने मुझे होरियों और ध्रुवपदों की तालीम दी। मैंने वह तालीम नोट की। उन्होंने कहा कि यह तालीम मेरी औलाद के और तुम्हारे लिए है। अगर इनमें से कोई भी न करे, तो तुम इसे जला देना। वज़ीर खाँ साहब की यह तालीम मैंने उनकी औलादों को दी। देहरादून में छः-छः महीने तक मैंने उन लोगों के कन्धे से बीन नहीं उतरने दी है। इस बात के गवाह फिदाअली खाँ और सैख दूल्हा थे, जो अब ज़िन्दा नहीं हैं। रात के तीन-तीन बजे तक मैंने इन लोगों के साथ मिहनत की है। किताब सामने रखकर राग की, सिलसिलेवार, तानें बताता था। रामपुर में भी महीनों इनको अपनी कोठरी में रियाज कराया है। जब वज़ीर खाँ मर गए, तब नवाब साहब तीजे के दिन उनके मकान पर गए, मैं भी वहीं था। नवाब साहब ने उनके बच्चों को बुलाकर मुझसे कहा—"इब्नेअली, इन बच्चों को तालीम पहुँचना चाहिए।"

बृ०—"आपने उन्हें रागों का आरोह-अवरोह, चलन वगैरः समझाया होगा, चीज़ें याद कराई होंगी। मिज़राब का काम उन्हें कैसे आया?

इ०—इतनी तालीम उन लोगों को थी।

स०—उन बच्चों के वालिद प्यारे मियाँ को मुहम्मद अली खाँ साहब ने तालीम दी।

बृ०—क्या उन लोगों में अपने खानदान की पूरी छवि है?

इ०—वह कैसे हो सकती है।

स०—वह बात किताब से कैसे आ सकती है।

इ०—नवाब साहब ने उन बच्चों से कहा था—"इब्नेअली से सीखो, अब्दुर्रहीम से सीखो, मुझसे सीखो।"

सु०—ये अब्दुर्रहीम कौन थे।

स०—ये एक नाई थे, लेकिन वज़ीरखाँ साहब के साथ तँबूरा छेड़ते थे।

सु०—रामपुर में नाई भी ऐसे हुए हैं, जो उस्तादज़ादों को तालीम दें?

इ०—जी हाँ! उन बच्चों ने नवाब हामिद अली खाँ साहब से भी बहुत कुछ याद किया। फिर बंगाल से इन्हें बुलावा आया।

स०—गौरीपुर के महाराज वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी ने बुलाया था।

इ०—एक बार नवाब रज़ाअली खाँ साहब के साथ मैं कलकत्ते गया था, तो महाराज ने मुझे भी बुलाया था। उन्होंने कहा—"आप इन बच्चों के उस्ताद हैं?" मैंने कहा—"नहीं, इनके घर का बच्चा-बच्चा मेरा उस्ताद है, यह मेरे बाप-दादा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का काम नहीं, इनका खानदानी काम है। मुझे तो इन्हीं के बड़े-बूढ़ों से मिला है।

बृ०—मुझे एक बात याद आ गई। नवाब हैदरअली खाँ साहब भी तो बहादुर हुसेन खाँ के शागिर्द थे ?

इ०—जी हाँ और अमीर खाँ के भी शागिर्द थे। अमीर खाँ के मरने पर वज़ीर खाँ को हैदरअली खाँ साहब ने तालीम दी। वह थोड़ा-सा काम करते हुए थे।

स०—नहीं, अमीर खाँ साहब का इन्तक़ाल तो बहादुर हुसेन खाँ साहब के इन्तक़ाल से पहले हो चुका था, जब बहादुर हुसेन खाँ का आखिरी वक्त आया, तब उन्होंने हैदरअली खाँ साहब से कहा वज़ीर बच्चा है, उसकी तालीम पूरी होनी चाहिए।

बृ०—सैयद साहब, मुहम्मद अली खाँ साहब भी तो आपके उस्ताद थे ?

इ०—वह भी वज़ीर खाँ साहब के नाना होते थे।

बृ०—मुहम्मद खाँ साहब तो छम्मन साहब के भी उस्ताद थे ?

इ०—जी हाँ, मुहम्मद अली खाँ साहब के वालिद बासत खाँ थे, जो छम्मन साहब के वालिद हैदरअली खाँ साहब के उस्ताद थे।

बृ०—मुहम्मद अली खाँ साहब ठाकुर नवाब अली खाँ साहब के भी उस्ताद थे ?

इ० -जी हाँ। मुहम्मद अली खाँ साहब ने सैकड़ों होरी ध्रुपद डॉ० नातू को भी बताए। डॉ० नातू को ध्रुपद सुनाने का रोग था। कोई बैठा हो, कहते थे कि एक ध्रुपद सुन लो।

बृ०—सुना यह जाता है कि डॉ० नातू जब किसी ऐसे मरीज़ को देखने जाते, जिसके बचने की उम्मीद नहीं होती थी, तब वहीं ध्रुपद गाकर उसे राम का नाम सुनाने लगते थे और ध्रुपद के सुनते ही मरीज के घर वाले रोना शुरू कर देते थे।

इ०—यह ठीक है।

बृ०—सुना है कि मुहम्मद अली खाँ और वज़ीर खाँ के आपसी ताल्लुक़ात अच्छे नहीं थे।

इ०—छम्मन साहब की वजह से। छम्मन साहब और वज़ीर खाँ साहब के ताल्लुक़ात आपस में अच्छे नहीं थे। छम्मन साहब ने नवाब साहब से कहा था कि वज़ीर खाँ ने आपको लड्डू खिला दिया है।

बृ०—जादू का लड्डू ?

इ०—वही पूजा-पाठ वाला। वज़ीर खां साहब ने तो ज़िन्दगी भर बकरा मारना वग़ैरह नहीं छोड़ा।

बृ०—तो छम्मन साहब पहले से ही वज़ीर खाँ से नाराज़ थे। सुना यह जाता है कि जब वज़ीर खाँ हैदरअली खाँ से तालीम लेकर कलकत्ते चले गए, तब काफ़ी दिनों बाद नवाब हैदरअली खाँ ने वजीर खाँ को बुलाया, लेकिन वे न आए। छम्मन साहब तब खुद कलकत्ते गए, उन्होंने वहाँ बहुत-से जलसों में लाजवाब 'सुरसिंगार' बजाया और वज़ीर खाँ को हैदरअली खाँ साहब के साथ आना पड़ा।

इ०—यह दुरुस्त है। इन दोनों के दिल में फ़र्क़ आख़िर तक रहा।

बृ०—वजह।

स०—गाने-बजाने के मामले में इन दोनों की न बनी। वजह यह थी कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वज़ीर खाँ साहब ने यह कहना छोड़ दिया था कि उन्हें हैदरअली खाँ साहब ने तालीम दी है, वे यह कहने लगे थे कि उन्होंने सिर्फ़ अपने वालिद से सीखा है। वज़ीर खाँ ने हैदरअली खाँ साहब के जीते जी ही यह अमल शुरू कर दिया था। हैदरअली खाँ साहब ने छम्मन साहब से कह दिया था कि ज़रा वज़ीर खाँ से होशियार रहना। तभी से यह तौर चल रहा था।

बृ०—हैदरअली खाँ साहब ने ही तो नवाब हामिदअली खाँ साहब को वज़ीर खाँ का शागिर्द कराया था?

इ०—बम्बई में। पहले नवाब हामिदअली खाँ इनायत खाँ ध्रुपदिये के शागिर्द थे। इनायत खाँ बहुत गुणी और पण्डित थे।

बृ०—सुना है, उन्होंने बंदिशें बहुत अच्छी कीं।

इ०—आ हा हा। ऐसा 'कवीश्वर' मैंने नहीं देखा। सब खुदा की तारीफ़ में कहा।

स०—मैं सुनाऊँगा उनकी चीज़ें।

बृ०—हैदरअली खाँ साहब ने हामिदअली खाँ साहब को वज़ीर खाँ का शागिर्द कराया, इतनी इज़्ज़त दिलाई, तब भी वज़ीर खाँ साहब ने···खैर, वह तो जो कुछ भी था, हुआ। उसमें भला मैं और आप क्या करेंगे।

स०—छम्मन साहब की वजह से मुहम्मदअली खाँ और वज़ीर खाँ में कुछ ऐसी बातें हो गईं कि मुहम्मदअली खाँ को रामपुर छोड़ना पड़ा।

इ०—वह किस्सा मैं आपको सुनाऊँ। नवाब हामिदअली खाँ मुहम्मदअली खाँ के भी शागिर्द हो गए थे। हैदरअली खाँ साहब ने नवाब हामिदअली खाँ को वज़ीर खाँ का शागिर्द कराया था और छम्मन साहब ने मुहम्मदअली खाँ का। नवाब साहब ने मुहम्मदअली खाँ से अपने बायें हाथ में गंडा बँधवाया और कहा कि दाहिने हाथ में तो वज़ीर खाँ का गंडा बँध चुका है।

बृ०—यह भी दिलचस्प बात है यानी नवाब साहब के दोनों हाथ अलग-अलग उस्तादों के शागिर्द हुए थे। खुद नवाब साहब भला किसके शागिर्द थे? अच्छा, बायें हाथ में ही सही। वज़ीर खाँ को तो यह बुरा मालूम हुआ होगा—कि नवाब उनके शागिर्द होने के बाद किसी भी और के शागिर्द हों।

इ०—छम्मन साहब ने वज़ीर खाँ को चिढ़ाने के लिए ही तो नवाब साहब को मुहम्मदअली खाँ साहब का शागिर्द कराया था।

बृ०—अच्छा, तो नवाब साहब ने मुहम्मदअली खाँ के शागिर्द होकर तो छम्मन साहब की बात रखी और गंडा बायें हाथ में बँधवाकर वज़ीर खाँ की इज़्ज़त रखी।

इ०—एक दिन वज़ीर खाँ मुलतानी बजा रहे थे। जब बजा चुके, तब नवाब साहब ने मुहम्मदअली खाँ से पूछा—"मुलतानी कैसी बजी।" मुहम्मदअली खाँ ने जवाब दिया—"ये मुलतानी या बीन क्या जानें।" वज़ीर खाँ को यह सुनकर गुस्सा आया और बोले—"मैं आदमी के हलक में हाथ घुसेड़ देता हूँ। यह गाने-बजाने वालों का मुहाविरा है, 'हलक़ में घुसेड़ना' यानी गवैये की संगत हू ब हू वैसी करना। मुहम्मदअली खाँ बोले—"मैं आदमी की नाक काट लेता हूँ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृ०—"नवाब हामिदअली खाँ साहब के दरबार की बात है ?"

इ०—जी हाँ ! मैं भी उस वक्त मौजूद था। मुहम्मदअली खाँ कर्नल और अज़मतुल्लाह जैसे पठान भी मौजूद थे। वज़ीर खाँ ने बीन रख दी और नवाब साहब से कहा—"मैं वहाँ नहीं रहना चाहता, जिस दरबार में मेरी नाक कटे।" नवाब साहब ने एक दरबारी शेख दूल्हा से कहा—"मुहम्मदअली खाँ से कहो कि यहाँ से निकल जायें।" मुहम्मदअली खाँ रौशनबाग में छम्मन साहब की कोठी पर चले गये।

सु०—अच्छा आप फर्मा रहे थे कि वज़ीर खाँ साहब ने फर्माया कि अगर उनकी या आपकी औलाद में से कोई न गाये-बजाये तो यह तालीम जलादी जाए।

बृ०—देखिए, आप फर्माते थे कि हैदरअली खाँ साहब ने बहादुर हुसेन खाँ साहब से सीखकर उनकी औलाद को भी बताया और दुनिया को भी। देखिये, ये सलामत हुसेन खाँ साहब बैठे हुए हैं, इनसे जो कुछ मैंने पूछा, इन्होंने छिपाव रखे बिना मुझे बताया। रामपुर का एक तरीका यह भी रहा है कि कोई भी आए, अगर वह सीख सकता है, तो उसे जरूर बताया जाये। १९१८ ई० में भातखण्डे जी की कोशिशों से दिल्ली में ऑल इण्डिया म्यूजिक-कॉन्फ्रेंस हुई थी। रामपुर के नवाब हामिदअली खाँ साहब उसके प्रेसीडेण्ट थे, उस कॉन्फ्रेंस में छम्मन साहब ने अपने छपे हुए लेक्चर में यह कहा था कि उन्हें रबाब और बीन की जो तालीम अपने बड़े-बूढ़ों से और उस्तादों से मिली है, वह हर अहल (योग्य) आदमी को वह तालीम देने के लिए तैयार हैं।

इ०—ठीक है।

सु०—तो छम्मन भी आपके उस्ताद थे, जो हर एक को बताने के लिए तैयार थे और आपके दूसरे उस्ताद वज़ीर खाँ तालीम जलवा देना चाहते थे, तो ये दो रास्ते हुए। दुनिया जानती है कि भातखण्डे जी को रागों की बारीकियाँ छम्मन साहब ने खुले दिल से बताईं, यह खुद भातखण्डे ने लिखा है और छम्मन साहब को सिर्फ अपना दोस्त नहीं, उस्ताद भी कहा है। तो आप यह मुनासिब समझते हैं या नहीं कि जिन्होंने आपको तालीम दी है, उनका नाम रौशन करने के लिए, दुनिया के फ़ायदे के लिए उस खजाने को सबके सामने रखा जाए ?

इ०—ठीक है। कोई नुकसान नहीं।

बृ०—तो आपको राय में उस तालीम को दुनिया के सामने आना चाहिए ?

ई०—जी हाँ, वर्ना तो उसे दीमक ही लग रही है।

सु०—अगर यह नेक काम किया जाये, तो हम लोग आपकी क्या ख़िदमत कर सकते हैं और आपका आशीर्वाद हमारे सामने कहाँ तक रहेगा ?

इ०—उसमें मैं जो कुछ कर सकूँगा, करूँगा।

सु०—उसमें बन्दिशों के साथ उन बुज़ुर्गों का नाम होना चाहिए, जिनसे आपको बन्दिशें मिली हैं। अगर इस नेक काम के लिए कोई इन्तजाम किया जाए, तो आप उसे पसन्द करेंगे ?

बृ०—अगर हम अपने बुज़ुर्गों की इज्जत नहीं करेंगे या उनके नाम को भुला देंगे, तो हमारी औलादें हमारे साथ यही करेंगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इ०—दुरुस्त है।

बृ०—आपने अल्लाहबन्दे खाँ साहब को सुना ?

इ०—जी हाँ, अलवर में। मैं नवाब हामिदअली खाँ साहब के साथ गया था। वहाँ उस जमाने में हाफिजअली खाँ और परवतसिंह भी थे, वे भी बुलाये गये, अल्लाहबन्दे खाँ भी बुलाये गये। हामिदअली खाँ साहब गाना सुनते वक्त मुझे पीछे बिठा लिया करते थे। पहले अल्लाहबन्दे खाँ साहब ने आलाप किया। उनसे होरी गाने के लिए कहा गया। परवतसिंह ने मुझसे यह कह दिया था (मैं किसी की बुराई नहीं कर रहा हूँ) कि मुझे बुलवा लेना। मैंने परवतसिंह को इशारा किया, वे उठे। नसीरुद्दीन खाँ ने हाथ से इशारा करके मना किया। नवाब साहब ने परवतसिंह को आने का हुक्म दिया। जितनी तानें गाई गईं, उनके बारे में कुछ न कहना ही अच्छा है। खैर नसीरुद्दीन खाँ को गुस्सा आया। बोले—"हम किताबियों को नहीं मानते, किताब से देखा और याद कर लिया।

बृ०—यह ऐतराज किस पर था।

इ०—नवाब हामिदअली खाँ पर। जब गाना-बजाना खत्म हो गया, तब हामिदअली खाँ ने मुझसे धीरे से कहा कि इन लोगों को ऊपर मेरे पास ले आओ। ये सब भी खुश-खुश चले गये। मैंने बाजे पर स्वर छेड़ना शुरू किया। हामिदअली खाँ साहब एक-एक करके चार ध्रुपद गा गये। इतना अच्छा गाये कि दरवाजे पर बैठे हुए हाफिजअली खाँ जैसे मुल्ला आदमी भी आँसू बहाने लगे। अल्लाहबन्दे खाँ साहब बोले—"हुजूर, इसका अन्तरा ?" नवाब साहब ने कहा—"अन्तरा किसी ध्रुपद का नहीं गाऊँगा, 'स्थायी' सुने जाओ। अन्तरा तुम लोगों के सामने नहीं गाऊँगा, तुम लोग किसके शागिर्द हो ?" जवाब मिला—'अपने बाप-दादा के।' नवाब साहब ने फिर पूछा—'वह किसके शागिर्द थे ?' जवाब था—'फीरोज खाँ के।" फिर सवाल हुआ—"फीरोज खाँ, वजीर खाँ के कौन थे ?" कहा गया—"मालूम नहीं।" नवाब साहब ने कहा—"फीरोज खाँ वजीर खाँ के बुजुर्ग थे, तुम लोग इसी घराने का गाना गा रहे हो।"

बृ०—ये लोग इस घराने का नाम भी नहीं लेते, अपने आपको डागर कहते हैं।

स०—अल्लाहबन्दे खाँ साहब या नसीरुद्दीन खाँ साहब ने कभी नहीं कहा।

बृ०—वे कौन डागर थे, जिनकी कब्र रामपुर में है। आपने फर्माया था कि वह आखिरी डागर थे।

इ०—रौशन खाँ, ये यूसुफअली खाँ साहब के दरबार में थे।

बृ०—अच्छा, अल्लाहबन्दे खाँ साहब की औलादों में सबसे अच्छा कौन गाया ?

स०—नसीरुद्दीन खाँ साहब।

इ०—हामिदअली खाँ साहब जब मौज में आते थे, तो खूब गाते थे।

बृ०—मुहम्मद हुसेन दतिया वाले भी तो हामिदअली खाँ साहब के दरबार में थे ?

इ०—जी हाँ, कसबी आदमी थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स०—उन्हें नाच की भी बहुत अच्छी याददाश्त थी। उनके लड़के हफ़ीज घण्टों नाचेंगे, पखावज या तबले का एक बोल भी नहीं आने पायेगा।

सु०—रामपुर में कौन-कौन गुणी अच्छे शिष्य तैयार कर रहे हैं ?

इ०—खुदा ने बचाया है।

(सब हँसते हैं)

सु०—तो क्या आप रामपुर की इस बेल को बढ़ने नहीं देना चाहते ?

इ०—शागिर्द ही कहाँ हैं ?

सु०—सुना तो यह है कि आप लोग बताते नहीं।

स०—शागिर्द ऐसे मिलते हैं कि तीन महीने सीखकर रेडियो-आर्टिस्ट बनना चाहते हैं।

इ०—हमारे पास कुछ लोग आते हैं और चार पल्टों से घबराकर भाग जाते हैं। चाहते हैं कि पहले चीजें बताई जाएँ।

स०—डाक्टर साबूदाना देता है, वह पकवान खाना चाहते हैं।

बृ०—लोगों में सीखने के लिए धीरज नहीं। आप जरा बाबू अलाउद्दीन का किस्सा बता दीजिए। रामपुर में पहले किसके यहाँ आए ?

इ०—इन सलामत हुसेन खाँ के मामू अहमदअली खाँ के साथ आए।

सु०—अहमदअली खाँ साहब क्या करते थे ?

इ०—सरोद बहुत अच्छा बजाते थे।

स०—अलाउद्दीन साहब का जेहन बहुत अच्छा था। एक बार सुनकर ही समझ लेते थें। ऐसे आदमी को चार-पाँच साल बताना मामूली बात नहीं। अहमद-अली खाँ साहब ने अलाउद्दीन साहब को अपने वालिद आबिदअली खाँ साहब के सुपुर्द कर दिया। एक आदमी को सब कुछ तो नहीं आता और कुछ चीजें औलाद को बताने की होती हैं, शागिर्दों को नहीं बताई जातीं। रियाज़ (अभ्यास) के कुछ खास तरीके होते हैं, जो सबको नहीं बताए जाते। एक दिन आबिदअली खाँ साहब ने बाबू अलाउद्दीन से कह दिया कि अगर तुमको मुझसे सन्तोष नहीं होता तो किसी और से सीखो।

इ०—आबिदअली खाँ ने ही बाबू अलाउद्दीन को वज़ीर खाँ साहब के पास पहुँचाया।

सु०—वज़ीर खाँ साहब से उन्हें कितने दिनों तालीम मिली।

इ०—कई साल। रामपुर में वे चौदह-पन्द्रह साल रहे।

बृ०—हाफ़िजअली खाँ को किसने तैयार किया ?

स०—पीले तालाब वाले मुन्नन खाँ ने।

इ०—मुन्नन खाँ लय का काम भी बहुत अच्छा करते थे।

स०—मुन्नन खाँ नबीबख्श के शागिर्द थे। नबीबख्श बीनकार बहादुरहुसेन खाँ के शागिर्द थे।

इ०—मुन्नन खाँ ने मुझे भी बताया।

बृ०—मुन्नन खाँ खुद क्या बजाते थे ?

इ०—सारंगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृ०—नवाब मिर्जा मरहूम (स्वर्गीय) ने मुझ से कहा था कि हाफिजअली खाँ को तैयार तो मुन्नन खाँ ने ही किया। वे बेचारे नामी आदमी थे नहीं, सारंगी बजाते थे, इसीलिए हाफ़िजअली खाँ वजीर खाँ के पास गए। अच्छा, आजकल बेहतरीन सरोदिया कौन है ?

इ०—हाफ़िजअली।

स०—लय में अलाउद्दीन साहब अच्छे हैं।

इ०—यह दुरुस्त है।

(वजीरहुसेन खाँ आते हैं)

स०—रामपुर में जो राग अच्छे बजाए गए, अलाउद्दीन साहब उन्हें बहुत अच्छा बजाते और उनमें बहुतायत के साथ बढ़ते हैं।

सु०—अच्छा 'माँझ' क्या चीज़ है ?

स०—'माँझ' के मानी मध्य या दर्मियान है। दो रागों के दर्मियान की चीज माँझ है। यह ठुमरी अंग के लिए है।

सु०—'जिला' क्या चीज है ?

स०—किसी एक राग को ज्यादा उभारते हुए उससे मिलते-जुलते रागों की झलक दिखाते रहना 'जिला' है।

बृ०—जिला या डिस्ट्रिक्ट में एक शहर तो खास होता है, इधर-उधर के कुछ क़स्बे उस खास शहर के नाम से मशहूर जिले में होते हैं।

इ०—यही बात है।

बृ०—मेरे पास हिन्दुस्तान भर से सवाल आते हैं, मुझे उन पर गौर करके उनका जवाब देना पड़ता है। कुछ बातें ऐसी हैं, जो ठीक तो है, लेकिन कहीं लिखी नहीं हैं। ऐसी बातें आप लोगों से ही मालूम होती हैं। छम्मन साहब का इन्तकाल १९२२ ई० में यानी आज से बयालीस साल पहले हुआ, तब मैं सिर्फ चार साल का था। अब अगर छम्मन साहब के या उनके जमाने के और गुणियों के बारे में मुझे जानना हो, तो मेरे पास यही तरीका है कि जो मौजूद हैं, छम्मन साहब के साथ खूब रहे हैं और जिन्हें छम्मन साहब की जिन्दगी में खूब होश था और गाना-बजाना समझते ही नहीं, जो लोग करते भी हों। आप लोग ही ऐसे हैं।

किस्सा यह है कि सन् १९०८ में भातखण्डे साहब के पास काले नजीर खाँ बम्बई पहुँच गये थे। ठाकुर नवाबअली ने उन्हें भेजा था।

इ०—उन्होंने ही भेजा था।

बृ०—उस जमाने में 'लक्ष्य संगीत' लिखा जा रहा था और यह एक राज था। नजीर खाँ साहब से रामपुर के गुर काफी हद तक भातखण्डेजी ने बातचीत में और गाना सुनकर समझे। १९१० ई० में ठाकुर नवाब अली खाँ बम्बई गये। भातखण्डे-जी से खतो-किताबत पहले से थी, बम्बई में मुलाक़ात भी हुई। वहाँ 'गायनोत्तेजक समाज' में जब ठाकुर नवाबअली खाँ का धुआँधार हारमोनियम बजा, तब लोगों के कान खड़े हुए। भातखण्डेजी ने दोस्ती कर ली। सन् १९१३ ई० में ठाकुर नवाबअली खाँ की मशहूर किताब मुआरिफुन्नग़मात का पहला हिस्सा छपा और सन् १९१४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक भातखण्डेजी की मराठी किताब हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के तीन हिस्से छपे। इससे पहले भातखण्डेजी की पहुँच बम्बई में नवाब हामिदअली खाँ तक हो गई थी और भातखण्डे नवाव साहब से गण्डा बँधवा चुके थे। वजीर खां से भी मुलाकात हो चुकी थी। भातखण्डेजी ने अपनी किताबों में यह जाहिर किया था कि 'लक्ष्यसंगीत' किसी 'चतुर पण्डित' ने लिखा है, जो न जाने कौन और कब हुआ है। रामपुर-दरबार अच्छी चीजों की तलाश में रहता ही था। भातखण्डेजी की रसाई (प्रवेश) इसीलिए रामपुर-दरबार में हुई। १९१५ ई० में छम्मन साहब भी रामपुर आचुके थे। भातखण्डेजी ने सन् १९१६ में आल इण्डिया म्यूजिक-कान्फ्रेंस बड़ौदे में की, प्रेसीडेण्ट ठाकुर नवाबअली खाँ को बनाया। १९१८ ई० में कान्फ्रेंस दिल्ली में हुई और नवाबअली खाँ साहब प्रेसीडेण्ट बनाए गए। उस कान्फ्रेंस में हिन्दुस्तान के चुने हुए गुणी आए थे। उस कान्फ्रेंस में भातखण्डेजी ने कहा कि लक्ष्य-संगीत की तसनीफ़ (रचना) उनकी मिहनत का नतीजा है। संस्कृत जुबान (भाषा) पर अकीदत (श्रद्धा) दोनों की थीं। संस्कृत जुबान में जो कुछ भी लिखा हो, वह ठीक ही हो, यह तो जरूरी नहीं। गालियां भी सारी जुबानों में होती हैं। कुरान शरीफ अरबी मैं है, लेकिन अरबी जुबान तो अरब में सभी किस्म के लोग बोलते हैं। लोग यह न समझ कर संस्कृत के रोब में आ गए। १९२२ ई० में जब छम्मन साहब न रहे, तब भातखण्डेजी ने सब लोगों से मिली बन्दिशें छापना शुरू कीं।

ई०—हाँ तभी से छपी हैं।

वृ०—उस 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' में सैकड़ों बन्दिशें रामपुर से मिली हुई हैं, छम्मन साहब की अपनी बन्दिशें भी उन किताबों में हैं, लेकिन कहीं किसी का नाम नहीं। बम्बई की तरफ कुछ गाने-बजाने वाले पहुँचे थे, जिन्हें जयपुर, उदयपुर, रामपुर, जैसे राग के कद्रदान दरबारों में मौका नहीं मिल सकता था, उनके शागिर्दों ने जब राग की बारीकियों को न समझ कर भातखण्डेजी पर कुछ एतराज किए, तब भातखण्डेजी को रामपुर के गुणियों का और रागों के बारे में यहां के लोगों की राय का जिक्र अपनी जिन्दगी के आखिरी वक्त में करना पड़ा। यह जिक्र हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति चौथे हिस्से में है। इम्तिहान देने और लेने वाले लोग उस किताब को भला कब पढ़ते हैं, उनके लिए तो एक राग में एक विलम्बित और एक द्रुत खयाल काफी है, बस हो गई बात। खैर, तो जिक्र यह हो रहा था कि भातखण्डेजी ने किसी भी बन्दिश के साथ उस गुणी का नाम न लिखा, जिससे उन्हें वह बन्दिश मिली थी। नतीजा यह हुआ कि 'दाता' लोगों का नाम ग़ायब। भातखण्डेजी ने लिखा है कि रागों की शुद्धता के बारे में मैं बहादुरहुसेन खाँ घराने को सुबूत मानता हूँ, हामिद अली खाँ, छम्मन साहब मेरे गुरु हैं। इतना होने पर भी 'लक्ष्यसंगीत' के दूसरे एडीशन में, जो कि १९३४ ई० में छपा है, रामपुर का कोई जिक्र नहीं। यह सब कुछ भी मराठी में लिखा। नतीजा यह हुआ कि जो लोग मराठी नहीं जानते थे, वे दौड़ में पिछड़ गए।

भातखण्डेजी ने नक़द २८ बरस, यानी १९०८ ई० से अपने मरने के वक्त १९३६ ई० तक रामपुर के हकीमों के दिए हुए नुस्ख़े घोट छानकर पिये, वे नुस्खे यानी रागों के चलन और बन्दिशों के साथ उन हकीमों या गुणियों का नाम भी नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन्होंने वे बताए थे। यह कहाँ का इन्साफ है? (वजीर हुसेन खाँ से) आप ही बताइए खाँ साहब, नजीर खाँ साहब आपके तो उस्ताद थे, भला वे काहे के लिए भातखण्डेजी के पास गए थे? गाना सीखने के लिए?

व०—गाना तो वे सिखाते थे, 'लच्छन-गीतों' के चक्कर में तशरीफ ले गए थे। मुझे नजीरखाँ साहब ने जब लच्छन-गीत रटाना शुरू किए, तब मेरे वालिद ने उनसे कहा---"ये बच्चे आपके पास गाते बजाते हुए आए हैं। लच्छन-गीतों का ये क्या करेंगे?" नजीर खाँ साहब इस पर नाराज हुए। मुझसे पूछने लगे —"क्या सीखना चाहते हो?" मैंने कहा कि मैं तो आपसे वह वन्दिशें सीखना चाहता हूँ, जिनके जानने वाले लोग अब इस दुनियाँ में नहीं हैं। ये 'लच्छन-गीत' और 'शास्तर-परमान' वगैरह मेरी समझ में नहीं आ सकता, मैं बेपढ़ा-लिखा आदमी हूँ। नजीर खाँ साहब सारे गिरंथ मेरे पेट में जुबानी उतार देना चाहते थे।

बृ०—यह आपको मंजूर नहीं था।

व०—जी हाँ।

बृ०—आपकी मुलाकात भातखण्डेजी से हुई?

व०—नहीं।

बृ०—रातांजनकर जी तो नवाब रजाअली खाँ के गण्डाबन्द शागिर्द हैं।

इ०—जी हाँ।

व०—एक ज़माना ऐसा था कि जब रामपुर के दो गाने-बजाने वाले किसी दङ्गल (महफिल) में जाकर बैठ जाते थे, तो लोग कहते थे कि खुदा ख़ैर करे, ये रामपुर के दो गुनी आ गए हैं। ऐसे बहुत वाक़यात (घटनाएँ) हुए हैं। हमारे लिए तो महफ़िल ही दङ्गल है। सवा गज़ का मैदान है, उसी में दाँव-पेंच दिखाना है।

बृ०—बुन्दा खाँ या बुनियाद हुसेन खाँ साहब तो आपके उस्ताद थे?

व०—उस्ताद भी थे चाचा भी थे। मैं उनका गंडाबन्द शागिर्द हूँ, मेरा गला उन्होंने ही निकलवाया। एक खाँ साहब ने मुझसे दिल्ली में दो-चार टप्पे सुने और बोले कि भाई, गाना तो तुम्हें बुनियादहुसेन खाँ बता गए।

सु०—आपने नसीरुद्दीन खाँ साहब को सुना है?

व०—जी हाँ, और उनके वालिद अल्लाहबन्दे खाँ साहब को भी। क़ैसरबाग लखनऊ की कॉन्फ्रेंस में। अल्लाहबन्दे खाँ साहब के साथ लाला झल्ली पखावज बजा रहे थे। हिंडोल का अलाप करने के बाद खाँ साहब 'नादवेद अपरम्पार' शुरू हुए।

सु०—उनकी गायकी में क्या-क्या खूबियाँ थीं?

व०—सुरीले थे, गमक थी, लयदार थे। नसीरुद्दीन खाँ साहब को भी साथ में सुना था। वह तो दूसरे अल्लाहबन्दे खाँ थे।

बृ० उन लोगों की छब अब उनके किस खानदानी में है।

व०—वह तो उन्हीं लोगों के साथ गई। वह ख़याल भी आला दर्जे का गाते थे, जवाब और मिस्ल नहीं। रागियत भी अच्छी, लय भी अच्छी और हलक़-तालू भी अच्छा।

सु०—आपको 'पंजाब-अंग' का शौक कैसे हुआ?

व०—जब से ठुमरी का शौक़ हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सु०—पूरब और पंजाब की ठुमरी में आपकी पसन्द क्या है ?

व०—पूरब की। लेकिन आप फ़र्माएँ कि 'पंजाब-अंग' गाओ, तो फिर पूरब नहीं आएगा, पूरब गाने के लिए फ़र्माएंगे, तो इंशाअल्लाह पंजाब नहीं आएगा। क्या मजाल है, जो आ जाए। पंजाब की ठुमरी बोल-बाँट की ठुमरी है। जैसे 'छब दिखलाजा बाँके साँवरिया ध्यान लगो मोहे तोरा।' पूरब की ठुमरी में बोल बनाव है, बोल के एक बनाव पर, सौ तानें कुरबान हैं। पंजाब की ठुमरी टप्पे के अंग से गाई जाती है।

सु०—आप अपने खानदान के बारे में कुछ फ़र्माएँ, सलामत हुसेन खाँ साहब।

स०—मेरे परदादा मशहूर, अहमद खाँ साहब थे। नाना मशहूर सरोदनवाज़ असद खाँ साहब थे, वे गाते भी अच्छा थे, मैंने छोटी उम्र से उन्हीं से गाना सीखा। ये महाराज दीनाजपुर के यहाँ रहे। असदखाँ साहब के पिता ख़याल-गायकी में बड़े मुहम्मद खाँ के शागिर्द थे। वे अपने ज़माने में अच्छा गाते थे। उनके ज़माने में और भी कई गुणी अच्छे थे।

बृ०—असद खाँ साहब सरोद क्यों बजाने लगे ?

स०—उनको किसी दुश्मन ने धोखे से कुछ खिला दिया था, जिससे उनका गला खराब हो गया। मजबूरन उन्हें सरोद बजाना पड़ा। वे बहादुरहुसेन खाँ के साथ बारह साल तानपूरा छेड़ते रहे, यही तालीम थी।

बृ०—सुनते-सुनते तो सब कुछ दिमाग़ में जज्ब हो जाता है।

स०—जी हाँ ज़ेहन तो यों ही बनता है। वे रामपुर में मुलाज़िम भी थे, इसलिए खाने-पीने की कोई दिक्कत न थी। बहादुरहुसेन खाँ से उन्होंने खूब सीखा और उन्होंने मुझे तालीम दी। सन् १९२२ तक वह जिन्दा रहे और मुझे तालीम देते रहे।

बृ०—छम्मन साहब का इन्तकाल (स्वर्गवास) भी तो उसी सन् में हुआ।

स०—जी हाँ। यहाँ राजदरबार के एक पण्डित नन्दराम जी थे। मेरे नाना ने उनके पास मुझे संस्कृत पढ़ने भी भेजा था। प्रसिद्ध पखावजी गयाप्रसाद जी के पास मैंने चार साल तक पखावज भी सीखा।

बृ०—अलाउद्दीन मैहर वालों ने भी तो आपके बुजुर्गों से कुछ सीखा है ?

स०—जी हाँ।

बृ०—क्या ये आपकी बिरादरी के हैं ?

स०—नहीं। इन लोगों में शहनाई वगैरह बजाने का काम होता है। आजकल तो गाने-बजाने का पेशा करने वाला हर मुसलमान 'खानदानी' खाँ साहब समझ लिया जाता है। खैर तो महाराज अगरतला ने अलाउद्दीन साहब को अहमदअली खाँ साहब के साथ भेजा। अहमदअली खाँ साहब ने इन्हें अपने वालिद साहब के पास भेज दिया। अलाउद्दीन खाँ साहब ने हमारे मुहल्ले में ही सादेकारों की मस्जिद के सामने मकान लिया और लगभग चार साल वहाँ रहे।

बृ०—रामपुर के लोग तो इन्हें 'बाबू' अलाउद्दीन कहते हैं।

स०—बंगाली होने की वजह से। इन्होंने उस ज़माने के और लोगों से, मुहम्मद हुसेन खाँ साहब, हैदर खाँ साहब वगैरह से, भी सीखा। मुश्ताकहुसेन खाँ साहब, असद खाँ साहब से भी इन्हें तालीम मिली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृ०—आपके घर से इन्होंने कितने दिनों सीखा ?

स०—चार साल ।

बृ०—उसके बाद ?

स०—और लोगों से सीखा।

बृ०—वज़ीर खाँ साहब तक ये कैसे पहुंचे ?

स०—यह तो मैं नहीं कह सकता। अलाउद्दीन साहब का कहना है कि वह नवाब साहब के मोटर के सामने खड़े हो गए, मोटर रुक गया। नवाब साहब ने इनका संगीत-प्रेम देखकर वज़ीर खाँ साहब के सुपुर्द कर दिया।

बृ०—अलाउद्दीन साहब जिस मकान में रहे थे, क्या अभी वह है ?

स०—जी हाँ।

बृ०—वहाँ उनकी यादगार का पत्थर लगा दिया जाना चाहिए। खैर, वजीर खाँ साहब ने इन्हें कितने दिनों तालीम दी ?

स०—वज़ीर खाँ साहब को इतनी फुर्सत कहाँ थी कि बैठकर किसी को तालीम दें। फिर भी अपने बड़े लड़के से या अब्दुर्रहीम से कह देते थे कि उस शागिर्द को वह चीज़ बता दो।

बृ०—'सरगम' करने के बारे में आपके बुजुर्गों की राय क्या रही ?

स०—पहले जमाने में सरगम करना ऐब समझा जाता था।

बृ०—क्यों ?

स०—यह बच्चों का काम समझा जाता था।

बृ०—जहाँ तक मैं समझा हूँ, वह यह है कि रागों में स्वर तो वही होते हैं, लेकिन किसी भी स्वर से पहले और पीछे लगने वाले स्वर उस स्वर पर असर डालते हैं, इस वजह से उस स्वर के 'शेड' बदलते रहते हैं और स्वर का तरंग-रूप रहता है, सरगम करने से स्वरों की तरंग ज़ेहन में नहीं आती, बल्कि उनकी खड़ी-खड़ी शक्ल सामने आती है। यों कहना चाहिए कि दिमाग में हारमोनियम बनता है, तन्त के सुरों की शक्ल नहीं बनती, इसीलिए सरगम करना ऐब माना गया। मुश्ताकहुसेन खाँ मुझसे फ़र्माते थे कि सरगम करने वाला 'कूढ़' होता है।

स०—पहले बुजुर्ग लोग सरगम करना इसीलिए ऐब मानते थे।

बृ०—जिस ज़माने में अलाउद्दीन साहब आपके बुजुर्गों से तालीम लेते थे, उस वक्त आपकी तालीम भी चलती होगी ?

स०—मेरे मामू के वालिद से अलाउद्दीन साहब सरोद सीखते थे और मैं सितार सीखता था।

बृ०—छम्मन साहब के साथ आपका ताल्लुक़ कैसे हुआ ?

स०—छम्मन साहब को तालीम देने का शौक़ था। वह चाहते थे कि उन्हें कुछ ऐसे बच्चे मिलें, जिन्हें तालीम दी जा सके। डा० गंगाधर नातू मुझे छम्मन साहब के पास ले गए। छम्मन साहब मुझसे खुश हुए और उन्होंने मेरी तालीम शुरू कर दी।

बृ०—आपके बुजुर्गों को ऐतराज तो नहीं हुआ कि आप एक खानदानी बच्चे होकर एक शौकीन के शागिर्द हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स०—इल्म तो कहीं भी लिया जा सकता है।

बृ०—पंडित लोग तो अपने बच्चों को भेजते ही दूसरों के पास थे। यह मर्ज गाने-बजाने वालों में ही है कि अपना बच्चा या शागिर्द किसी और से न सीखे।

स०—मेरे बुजुर्गों ने मुझे निहायत खुशी से छम्मन साहब की खिदमत में भेजा था। छम्मन साहब के बारे में उन लोगों की राय बहुत अच्छी थी और मेरी राय यह है कि छम्मन साहब उस्ताद ही नहीं 'उस्तादगर' थे, जो उनकी सुहबत में बैठे, वह उस्ताद हो जाए। वह बहादुरहुसेन खाँ साहब की मुकम्मल तालीम के मालिक थे। अमीर खाँ साहब की बीन की तालीम के भी वह मालिक थे। दोनों तालीमें अलग-अलग दिखलाते थे।

बृ०—छम्मन साहब और वजीर खाँ में क्या फर्क था ? तालीम तो वजीर खाँ साहब को भी पहुँची थी।

स०—वज़ीर खाँ साहब का किस्सा यह है कि वजीर खाँ के वालिद अमीर खाँ साहब साहबजादा हैदरअली खाँ साहब के यहाँ रहते थे। हैदरअली खाँ साहब को गाने-बजाने का बड़ा शौक़ था।

बृ०—हैदरअली खाँ तो नवाब कल्बेअली खाँ के छोटे भाई थे।

स०—जी हाँ, बहादुरहुसेन खाँ को सुनकर उन्हें सुरसिंगार सीखने का शौक हुआ। किस्सा तो लम्बा है, मुख्तसर यह कि बहादुरहुसेन खाँ साहब ने हैदरअली खाँ साहब को ऐसी तालीम दी कि जो खाँ साहब को सुनना चाहे, तो हैदरअली खाँ साहब को सुनले हैदरअली खाँ ने अपने साहबजादे छम्मन साहब को वही तालीम दी। छम्मन साहब भी लाजवाब सुरीले थे। एक बार वह खमाज बजा रहे थे और असर यह था कि मेरे आँसू निकलने ही वाले थे।

बृ०—छम्मन साहब की ऐसी ही तारीफ सुनी जाती है। खैर, तो भातखण्डेजी ने भी लिखा है कि वजीर खाँ के वालिद अमीर खाँ वजीर खाँ को छोटा छोड़कर मर गए थे।

स०—हैदरअली खाँ साहब ने जो बीन की तालीम अमीर खाँ से ली थी, वह वजीर खाँ को दी और कहा कि जो कुछ मैंने तुम्हारे वालिद से लिया था, तुम्हें दे दिया।

बृ०—फिर वजीर खाँ को हैदरअली खाँ ने नाम करने के लिए बाहर भेज दिया।

स०—वजीर खाँ कलकत्ते पहुँचे। वहाँ उनकी बड़ी क़द्र हुई। उन्होंने अच्छे-अच्छे शागिर्द तैयार किये।

बृ०—वजीर खाँ नवाब हामिद अली खाँ के दरबार में कैसे आए ?

स०—जब नवाब हामिदअली खाँ को गाना-बजाना सीखने का शौक़ हुआ, तब उन्होंने हैदरअली खाँ साहब से मशविरा किया। उन्होंने होरी-धुरपद सीखने के लिए वजीर खाँ, खयाल सीखने के लिए अलीरजा खाँ खयालिए और संगत के लिए बुन्दा खाँ सारंगिये के नामों की सिफारिश की। बुन्दा खाँ को ही बुनियादहुसेन खाँ भी कहा जाता है। हामिद अली खाँ साहब वजीर खाँ साहब के तो शागिर्द हुए और बाकी दोनों गुणी मुलाजिम रख लिए गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृ०—खैर, अच्छा यह तो बताइए कि छम्मन साहब ने आपको क्या शुरू कराया।

स०—वीणा शुरू कराई। वह तालीम साल भर हुई थी कि छम्मन साहब का इन्तकाल हो गया।

सु०—तो यह लोग सुरसिंगार, वीणा, सरोद, सितार, ध्रुपद, होरी सब कुछ बता सकते थे? यह कैसे होता था? आजकल ऐसे लोग क्यों नहीं होते?

बृ०--चूंकि आजकल पहले जैसे उस्ताद नहीं होते, चूंकि आज के लोग जानना नहीं चाहते। पहले जमाने के लोग कहते थे कि गाना-बजाना एक बात है। जिक्र छम्मन साहब और वजीर खाँ के फर्क का हो रहा था। मेरा खयाल यह है कि छम्मन साहब पढ़े-लिखे रईस थे, कई जुबानें जानते थे, उनमें सोचने-समझने की आदत होगी, इसलिए जिस ढंग से वह बात को समझते-समझाते होंगे, वज़ीर खाँ नहीं। छम्मन साहब के पास तो आलिम और पंडित भी बैठते थे। मेरे परदादा दत्तराम जो के शागिर्द पं० चन्द्रसेन सभापति, पं० रामचन्द्र जी वगैरः बुजुर्ग भी छम्मन साहब के साथ उठने-बैठने वालों में थे। कवि और शाइर भी वहाँ बैठते थे। छम्मन साहब ने जो गाने-बजाने की किताबें लिखी हैं, उनसे छम्मन साहब की खोज-बीन और समझदारी का पता चलता है।

स०—काले नजीर खाँ, मुश्ताकहुसेन खाँ, करीम खाँ सितारनवाज 'सेनिये' वहीद खाँ जैसे लोग छम्मन साहब के पास रोजाना उठते-बैठते थे।

बृ०—मैंने सुना है कि छम्मन साहब के पास एक 'गण्डा बँधवाने की मैशीन' थी यानी डॉ० नातू। छम्मन साहब को अगर किसी बाहर के गुणी के पास कोई 'चीज' अच्छी लगती, तो डाक्टर गंडा बंधवाकर सीख लेते थे।

सु०—तो नातू साहब को किसी से भी गंडा बंधवाने में कोई ऐतराज न था।

(सब हँसते हैं)

स०—नातू साहब को चीजें बहुत याद थीं, लेकिन उनका आवाज अच्छा नहीं था।

बृ०—भातखण्डे जी मतलब के तो थे। उनकी गाई हुई चीज का नोटेशन आसानी से किया जा सकता होगा।

(सब हंसते हैं)

स०—उनकी आवाज गाने के लायक न थी, लेकिन उन्हें गाने का बहुत शौक था।

बृ—गाते तो सुर में होंगे, भले ही वह सुर कानों को न लुभाता हो।

स०—बेसुरे नहीं थे।

सु०—जब छम्मन साहब तन्त के साज इतने अच्छे जानते थे, तब उन्होंने हारमोनियम बजाना क्यों शुरू किया?

स०—छम्मन साहब 'सुर-सिंगार' बहुत अच्छा बजाते थे। हारमोनियम का शौक भैया साहब की वजह से, भैया गनपतराव की वजह से, लगा।

सु०—मतलब यह है कि तंतकारी और आलाप-अंग में डूबे हुए छम्मन साहब को हारमोनियम अच्छा कैसे लगा?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृ०—क्या वह दरबारी या मियाँ की मलार हारमोनियम में बजाते थे ?

स०—नहीं।

बृ०—तो इसके मानी यह है कि ठुमरी अंग का शोख़ और चलता हुआ काम करने के लिए वे हारमोनियम बजाते थे, जिसके लिए सुरसिंगार या बीन मौज़ूँ न थे। भैया गनपतराव हारमोनियम में क्या बजाते थे ?

स०—ठुमरी, दादरा बजाते थे। सुरों का लगाव, लय का रखाव, मुरकियाँ, हरकतें उनके हारमोनियम में कुछ ऐसे थे, जो और जगह न थे।

बृ०—कौन से ठुमरी-दादरे बजाते थे ?

स०—ठुमरियाँ और दादरे तो यही थे, लेकिन चलन अजीब और बेजोड़ था।

सु०—क्या बात थी उसमें ?

बृ०—बोल का बनाव वह ऐसा करते थे कि···

सु०—तो जैसा माहौल (वातावरण) दरबार का था, वही काम भैया गनपतराव करते होंगे।

बृ०—दरबार का माहौल तो बीन और ध्रुपद का था। खासतौर पर रामपुर दरबार का। ठुमरी गाने वालों की तो यहाँ पूछ ही न हुई। हामिदअली खाँ साहब तो खयाल तक से नफरत करते थे। भातखण्डे जी ने तो लिखा है कि रामपुर-दरबार में ध्रुपद और बीन का बोलबाला है। यह तो भैया गनपतराव का जादू था, 'षड्ज-चालन' का जादू था, जो छम्मन साहब के सिर पर चढ़कर बोला।

सु०—इसके मानी यह थे कि वह 'षड्ज-चालन' के काम से लोगों को चक्कर में डाल देते थे।

बृ०—वह विचित्रता कोई नई न थी, पुरानी थी। 'षड्ज-चालन' जितनी द्रुतलय में हारमोनियम में सम्भव है, उतना और किसी साज में नहीं। मैं आपको एक मिसाल दूँ। अगर आप भैरवी बजाते या गाते समय तीव्र गान्धार पर रुकें, तो वह बुरा मालूम होगा, लेकिन आप भैरवी ठाठ के उस स्वर को थोड़ी देर के लिए 'सा' मानकर उस राग को बजाएँ, जिसमें भैरवी ठाठ का गान्धार किसी और स्वर के नाम से आता हो, तो वह विचित्र और अच्छा ही मालूम होगा। इस तरह ठुमरी बजाते-बजाते वे सभी स्वरों का प्रयोग 'षड्ज' बदल-बदलकर कर जाते थे।

सु०—उस जमाने में रिकॉर्डिंग नहीं होती थी! भैया साहब के रेकॉर्ड नहीं हैं ?

बृ०—अच्छन भैया से 'ततकार' के रेकॉर्डिंग के लिए कहा गया था। वह बोले—"अच्छा! बिन्दादीन कालकादीन का काम ढाई-ढाई रुपए में गली-गली बिकेगा !!"

सु०—(हँसकर) ठीक है।

बृ०—उनका मतलब यह था कि रेकॉर्ड सुनने वालों को काम तो आएगा नहीं। लोग उल्टी-सीधी नकल करेंगे, काम बदनाम होगा। अच्छा, तो भैया गनपतराव बाजे में वह काम करते थे, जो गुणियों को भी लुभाता और चक्कर में डालता था और आसान था कि यों ही उड़ा लिया जाये। क्या वह आजकल का लाइट म्यूज़िक था ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स०—नहीं। मैंने उनका हारमोनियम दो साल तक सुना। वे नवाब साहब के मेहमान थे।

बृ०—उनका एक शागिर्द 'अंगी' था अख्तरजान को भी उन्होंने हारमोनियम बताया था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कई लोगों के हाथ में बाजा होता था।

स०—ऐसा भी होता था।

बृ०—सब लोग हारमोनियम में अलग-अलग रास्ते निकलकर जाते थे।

स०—जब भैया साहब कोई रास्ता निकलकर जाते, तब सभी मुँह देखते रह जाते थे।

सु०—भैया साहब ने वह गुर किसी को बताया ?

स०—वह तो उनकी 'उपज' या 'सूझ' होती थी।

बृ०—'उपजत अंग स्वभाव।' यह नहीं कि जो कुछ वे करते थे, उसका कोई उसूल न हो।

सु०—यह माना कि 'उपज' होती थी, लेकिन वह रास्ता तो बता ही सकते थे। उन्होंने बताया ही नहीं।

बृ०—अच्छा, तो क्यों बताते ? सत्रह लाख रुपया गाने-बजाने पर फूँका था। सर पर कोई कोयलों की बोरी लदी थी, जो कहीं पटक देते। शराब बहुत पीते थे, वह उनकी दुनिया थी। राजकुमार थे, ट्यूशन तो करते नहीं थे। जितना भी बता दिया, उनकी मिहरबानी थी।

स०—मैंने भैया साहब के कई शागिर्द बहुत अच्छे बजाते हुए सुने हैं, लेकिन उस्ताद तो उस्ताद ही रहता है।

बृ०—मुईजुद्दीन खाँ जैसे मशहूर ठुमरी-गायक भी भैया गनपतराव के शिष्य थे। भैया गनपतराव के गले में कोयल बोलती थी।

सु०—भैया गनपतराव को किसने सिखाया था ?

बृ०—यह पूछिए कि कितने गुणी उनके मुलाज़िम रहे थे, जिन्हें वे घोटकर पी गए। वे संगीत की परीक्षा नहीं पास करना चाहते थे, न यह पूछते थे कि कितने दिनों में आजाएगा। उन्होंने हारमोनियम जैसे सड़ियल साज़ को चार चाँद लगा दिए थे। भला वह कितना तैयार बजाते थे ?

स०—उनका वह अंग ही नहीं था। वह तो हारमोनियम से दिल नोच लेते थे।

बृ०—मामूली नटनियाँ और कंजरियाँ जो कुछ गाती हैं, स्वर तो उसमें भी बारह ही रहते हैं, भैया साहब उन चीज़ों में ही बाग लगा देते थे।

सु०—कोई गम्भीरता तो रहती न होगी उसमें ?

बृ०—हर जगह, हर मौके पर गम्भीरता किसने बताई है ?

सु०—कुछ गतकारी का काम करते होंगे।

बृ०—वे कभी नहीं करते थे।

स०—गतकारी वे कभी नहीं करते थे।

सु०—तो उस काम में हल्कापन जरूर रहता होगा।

बृ०—जी नहीं, हल्कापन या सस्तापन उस बात में मुम्किन ही नहीं था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सु०—आप यह कह रहे हैं कि नटनियों और कंजरियों की चीजें वजाते थे, उसमें चंचलता तो होगी ही।

बृ०—नटनियाँ और कंजरियाँ भी तो चौबीस घण्टे चंचल नहीं रहतीं।

सु०—मेरा मतलब यह है कि आलाप और बीन का गम्भीर काम सुनते-सुनते जब लोगों का मन ऊब जाता होगा, तब ठुमरी वाला चंचल काम लोगों को उसी तरह अच्छा लगता होगा, जैसे मीठे से मन भर जाने पर आदमी चटपटी चीज़ खाना चाहता है। आजकल फ़िल्म-म्यूज़िक सबको पसन्द आता है, क्योंकि वह चंचल और पुरानी परम्पराओं से उल्टा है। इसी तरह भैया साहब के बाजे को पसन्द किया जाता होगा।

बृ०—नहीं, हारमोनियम में 'टेम्पर्ड स्केल' है, स्वर कायम है, बेसुरे होने का खतरा नहीं। षड्ज-चालन का काम जितनी तेज़ी और आसानी से हारमोनियम में मुम्किन है, तार के बाजों में नहीं। हारमोनियम के किसी भी पर्दे को 'स' मानकर बजाने का जो अभ्यास हारमोनियम बजाने वाले करते थे, वह अभ्यास तंतकारों को न होता है, न हो सकता है। किसी भी पर्दे को 'स' मानने पर अगला स्वर हारमोनियम में कोमल ऋषभ है, तार के साजों में यह बात मुम्किन नहीं। सितार या बीन में जितने भी तार चढ़े होते हैं, वे 'स' के पर्दे को 'स' मानने पर ही अच्छे बोलते हैं, अगर सितार के किसी भी पर्दे को 'स' मानकर बाकी तार मिलाए जाएँ, तो वे तार अच्छे नहीं बोलेंगे, इसीलिए इन साजों के हर एक पर्दे को 'स' मानकर अभ्यास किया जाना मुम्किन नहीं। फ़िल्म-म्यूजिक तो आसन है, उसे तो बच्चा-बच्चा गुनगुनाता है। भैया साहब की थिरकती हुई अँगुलियाँ तो जानकारों की अक्ल को चक्कर में डालदेती थीं।

लोगों का ख्याल है कि ठुमरी तुच्छ या क्षुद्र है, बेसुरा या भयानक ख़याल गाकर रागों को उधेड़ फेंकना अच्छी बात है, लेकिन ठुमरी ज़लील चीज़ है। ख़ैर कुछ लोगों की राय ठुमरी के बारे में यह हो गई है। मैं आपसे अब सनदपिया के बारे में जिक्र कर रहा हूँ। वे तो यहाँ रामपुर-दरबार में मुलाज़िम थे?

स०—जी हाँ, मुलाज़िम थे।

बृ०—क्या नाम था उनका?

स०—तवक्कल हुसेम खाँ। यह रहने वाले बरेली के थे और मेरे खानदान से इनका कुछ ताल्लुक था।

बृ०—मैंने कई बुजुर्गों से, नवाब मिर्ज़ा, मुश्ताक़हुसेन वग़ैरा से, और आपसे 'सनद' की जो ठुमरियाँ सुनी हैं, उनके सुनने से ऐसा लगता है कि 'तन्त' बज रहा है या जैसे किसी तराने पर बोल रख दिए गए हों। आला दर्जे का राग, अच्छा अंग और अच्छी लय उनमें है। इन्हें हम बन्धान या 'बन्दिश' की ठुमरियाँ कहते हैं।

स०—आपका खयाल दुरुस्त है, इसीलिए आजकल इस क़िस्म की बहुत सी ठुमरियाँ 'छोटा ख़याल' कहलाने लगी हैं।

बृ०—कहाँ?

स०—किताबों मे?

बृ०—किन किताबों में?

स०—पण्डितजी की किताबें लिखी हुई हैं।

बृ०—पण्डितजी की? यानी नेहरूजी की?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स०—(हँसकर) नहीं। पं० भातखण्डेजी की किताबों में, और भी बहुत सी कोर्स की किताबों में…

बृ०—यानी क्रमिक-पुस्तक-मालिका में ?

स०—जी हाँ, 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' में।

बृ०—आपका मतलब यह है कि जिनके बोल और बन्दिश में बन्दिश की ठुमरियों वाली बातें हैं, ऐसी खयाल कहलाने वाली बहुत सी चीजें दरअसल ठुमरियाँ हैं।

सु०—जिन्हें आप 'छोटा ख़याल' कहते हैं, उनमें और बन्दिश की ठुमरियों में क्या फ़र्क़ है ?

स०—हमारे यहाँ 'छोटा' या 'बड़ा' ख़याल नहीं होता, ख़याल की एक ज़ात है द्रुतलय का या मध्यलय का…

स०—सवाल यह है कि हम उन्हें बन्दिश की ठुमरियों से अलग कैसे करें ?

स०—छोटे खयाल की बन्दिशें कुछ अलग क़िस्म की हैं।

सु०—वही क़िस्म तो हमें समझना है। क्रमिक पुस्तक मालिका में, आपके कहने के मुताबिक़, जो ठुमरियाँ है, उन्हें हम, उनकी बन्दिश देखकर ख़यालों से अलग कैसे करें।

बृ०—मैं ज़रा सवाल को वाज़े कर दूँ, कौन सी हरकतें या स्वरों के लगाव ऐसे हैं, जो ख़याल को बन्दिश को ठुमरी से अलग करते हैं ?

सु०—आप द्रुतलय का कोई ख़याल गाने की तकलीफ़ फ़र्मायें।

स०—बहुत खूब। (गाते हैं) कौन घर तू जागे बलमा, रुत में गमन कीनो…' इत्यादि।

बृ०—ताल देकर फ़रमाते जाइए और इसमें ख़याल की ख़ास हरकतों की जानिब इशारा कीजिए। अच्छा तो यह हो कि बन्दिश 'आकार' में कहिए।

स०—बहुत बेहतर। (आकार में बन्दिश कहते हैं।)

बृ०—यह सुनने से ऐसा मालूम होता है कि कोई लम्बी तान लय में कही जा रही है।

सु०—इसी ढंग से 'सनद' की भी ठुमरी सुनी जाए, फर्क दिखाई दे।

बृ०—माक़ूल बात है।

स०—('देखिबे को जिया ललचाए' गाकर आकार में सुनाते हैं।)

सु०—होना यह चाहिए कि क्रमिक पुस्तक-मालिका में बन्दिश की जिन ठुमरियों को 'छोटा खयाल' कहा गया है, उनकी एक लिस्ट बना दी जाए और उन बन्दिशों में 'स्वर-लिपि' के उन हिस्सों पर निशान लगा दिया जाएँ, जो ठुमरी-अंग के हैं।

बृ०—आपका सुझाव अच्छा है। कल सैयद इब्नेअली साहब फ़र्माते थे कि एक बार……जो को उन्होंने बन्दिश की एक ठुमरी 'तिताले का ध्रुवपद' कहकर लिखा दी, ऐसी बात पहले नहीं हुई होगी ? जो लोग महाराष्ट्र के रहने वाले थे और तलाश में थे। उन्हें मसखरे लोगों ने 'छोटे ख़याल' के नाम से अगर बन्दिश की ठुमरियाँ सिखा दीं, तो तलाश करने वाला तो कुसूरवार नहीं। रामपुर में 'छोटे खाँ' तो होते थे 'छोटे ख़याल' नहीं होते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स० —छोटे गुलामअली खाँ और बड़े गुलामअली खाँ को तो सभी जानते हैं। छोटे और बड़े ख़याल हमारे लिए नई चीज़ हैं।

सु०—तो फिर हम लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि ठुमरी और ख़याल के लय सम्बन्धी बर्ताव और स्वर-प्रयोग के तरीके में फ़र्क होगा।

स०—दुरुस्त है।

बृ० —ख़याल की बन्दिश में ही ख़याल-अंग की तानें आ जाती हैं, ठुमरी की बन्दिश में छोटी-छोटी मुरकियाँ आती हैं, जिनसे 'बोलों में बनाव' पैदा होता हो। लय एक जैसी होने पर भी यह फ़र्क रहता ही है। भेड़िये और शेर के बच्चों का साइज़ और वज़न एक जैसा होने पर भी उनकी शक्ल और आदत का फ़र्क उनकी क़ौमों को अलग-अलग साबित कर देता है। जिन बन्दिशों में बनाने वाले के नाम के बाद 'पिया' लगा हो, वे ठुमरियाँ होती हैं। सदारंग की बन्दिशों में 'सदारंग पिया' कभी नहीं होगा, लेकिन यह एक मोटी पहचान है।

सु०—अच्छा, ठुमरी का जिक्र तो हो चुका। यह बताइए कि गूजरी और तोड़ी में क्या इतना ही फ़र्क है कि गूजरी में पंचम नहीं लगता और तोड़ी में लगता है या इन दोनों के चलन में कोई बुनियादी फ़र्क है? कुछ लोग कहते हैं कि तोड़ी नीचे को देखती है और गूजरी ऊपर को देखती है, यह क्या बात है?

स०—आपका मतलब शायद मियाँ की तोड़ी से है। यह गम्भीर प्रकृति का राग है, इसका झुकाव मन्द्र सप्तक की जानिब है, गूजरी में यह बात नहीं।

सु०—क्या बग़ैर पंचम लगाए तोड़ी गाई जा सकती है?

बृ०—मन्द्र सप्तक के धैवत से मध्य सप्तक के धैवत का विस्तार करते वक्त जबकि मध्य सप्तक के गांधार पर मुक़ाम किया जा रहा हो, तब पंचम को छोड़कर तोड़ी गाई ही जाएगी।

स०—बिलकुल बजा है।

बृ०—एक बार एक ध्रुपदिये गुणी का लड़का एक इम्तिहान में इसी ढंग से गा रहा था, इम्तिहान लेने वाले बुजुर्ग किताबें घोटने वालों में से थे। उस लड़के की किस्मत ही फूट गई।

सु०—आप भला 'गूजरी' और 'तोड़ी' में गाकर फर्क कैसे करेंगे?

स०—तोड़ी में हम मध्य गांधार को खूब चमकाएँगे और गूजरी में धैवत को।

सु०—खाँ साहब, दरबारी तोड़ी के बारे में आपने बुजुर्गों से क्या सुना है?

स०—मियाँ की तोड़ी ही दरबारी तोड़ी है।

बृ०—मैंने एक जगह यह पढ़ा है कि 'दरबारी तोड़ी' के मन्द्र सप्तक में दरबारी कानड़े के ही स्वर और चलन रहते हैं, मध्य सप्तक में ऋषभ कोमल हो जाता है और तोड़ी के अंग से ही कोमल ऋषभ और कोमल गांधार का प्रयोग होता है। मन्द्र-कोमल धैवत तथा मध्यकोमल गांधार की संगति दरबारी और तोड़ी दोनों में होती है, इसलिए यह संगति 'दरबारी तोड़ी' में भी खुलती है। मध्यसप्तक में कोमल गांधार से आरोह करते समय तोड़ी के समान ही तोड़ी ठाठ के स्वर और चलन को जोड़ा जाता है। तार और मध्यसप्तक के अवरोह में तोड़ी ठाठ के स्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी रहते हैं और चलन भी। मन्द्र और मध्य सप्तक में इस राग का रूप खिलता है।

स०—दुरुस्त है। इस ढँग से दरबारो और तोड़ी राग का मेल किया जा सकता है। ऐसे राग और भी हैं। जैसे 'हिंडोल-बहार'। आपने 'दरबारी तोड़ी' के बारे में कहाँ पढ़ा ?

बृ०—मुआरिफुन्नग़मात के पहले एडीशन में। वहाँ विलासखानी की भी कई किस्में बयान की गई हैं।

स०—बजा फ़र्माते हैं। विलासखानी में वहाँ तीव्र मध्यम भी है।

सु०—आप जब विलासखानी का आलाप कर रहे थे, तब आपने मध्यम, पंचम और धैवत भी सिलसिलेवार कभी-कभी लगाए थे, आजकल आमतौर पर कहा जाता है कि विलासखानी में गांधार से पंचम पर जाने के बाद धैवत लगाना चाहिए।

स०—अगर 'म प ध़' लगाया जाए और राग की शक्ल न विगड़े, तो क्या ऐतराज़ है।

सु०—यही तो मुश्किल है। आप लोगों के पास बैठने से कुछ और सुनने में आता है, कोर्स की किताबें कुछ और कहती हैं।

स०—देखिए, इस क़िस्म के राग रामपुर में बहुत अच्छे बरते गए हैं।

बृ०—भातखण्डेजी भी इस हक़ीक़त को मानते हैं।

स०—तोड़ी, आसावरी और भैरवी के मिश्रण से विलासखानी वनी है।

बृ०—आसावरी में रामपुर के गुणी कोमल ऋषभ का वर्ताव करते हैं। यह याद रखिएगा।

किताबें पढ़ने वाले भलेमानस जब इम्तिहान पास करके प्रोफ़ेसर हो जाते है, तब कॉलेजों के समझदार बच्चे इन प्रोफ़ेसरों से तरह-तरह के सवाल करते हैं। ये लोग इतमीनान बख्श जवाब नहीं दे पाते, क्योंकि इम्तिहान पास करने के लिए तो सब सवालों का जवाव जानना जरूरी नहीं है।

व०—आपको ऑडिशन का ज़िक्र सुनाऊँ। ऑडिशन में मुझसे……साहब ने कहा—"आपका ऑडिशन है।" मैंने कहा कि मेरा कण्ठ खराब है, हुक्म मिला, तो हाज़िर हो गया हूँ। नहीं आता, तो आप लोग फ़र्माते कि ऑडिशन से घबराता है, अब आप जानें और आपका काम जाने। बोले—"हमें आवाज़ की जरूरत नहीं, आवाज़ तो चौकीदारों का बहुत बड़ा होता है, हमें तो गुण देखना है।" जब ऑडिशन हुआ तो मैंने पूछा—"क्या गाऊँ ?" कहने लगे—"जो राग आपने लिस्ट में लिखे हैं उनमें से कोई भी गाइए।" मैंने मुलतानी का ख़याल "ढोला जालम ठगी वे।" शुरू किया। जब 'आस्ताई' मैंने कही, तो मुझसे कहने लगे—"ठहर जाइए।" एक आवाज़ आ रही थी, खुदा जाने कहाँ से।

बृ०—आप समझे, या अल्लाह ! यह गैब की आवाज़ कहाँ से आई ! आप खाँ साहब ठहरे मुसलमान आदमी।

(सब हंसते हैं)

व०—फिर बोले—"आप इसके मानी बता सकते हैं ?" मैंने फौरन कहा कि मानी आप खुद समझिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स०—(हंसकर) खूब जवाब दिया। कहना चाहिए था—मैं गाने में मशगूल हूँ, मानी आप तलाश कीजिए।

(सब हंसते हैं)

व०—मैंने कहा—मैंने तानें सीखी हैं, मानी नहीं, ख़याल सीखा है, मानी आप खुद समझते रहें।

स०—बात माक़ूल है।

व०—जब मैंने अन्तरा गाया, तब फिर वही सवाल हुआ। मैंने कहा—जैसे 'आस्ताई' के मानी मैं नहीं जानता, वैसे ही अन्तरे के मानी भी नहीं जानता।

बृ०—जानते तो भी न बताते।

व०—(मुलतानी का वही खयाल गाकर) मुझसे फिर बोले, "पूरिया में द्रुत का ख़याल शुरू हो जाइए।" मैंने इकताले में 'झनन झनन पग पायल' शुरू कर दिया, जो नज़ीर खाँ साहब ने मुझे सिखाया था।

बृ०—मुलतानी के बाद फौरन द्रुत में पूरिया शुरू करा दी!

व०—बोले—"विलम्बित की जरूरत नहीं।" मैंने कहा—बहुत बेहतर। मैं गाया, तो तालियाँ बजीं। हमारे ज़माने में जिसका मज़ाक उड़ाना या जिसे भगाना होता था, उसके पीछे तालियाँ बजाई जाती थीं।

(सब हंसते हैं)

बृ०—(हंसकर) आज तालियों के मानी बदल गये हैं। तारीफ में तालियाँ बजती हैं।

सु०—पूरिया का वह ख़याल तो सुनाइये।

व०—(गाते हैं)

सु०—अच्छा, सूहा और सुघराई में आप क्या फर्क करेंगे?

स०—सूहा और सुघराई में फर्क यह है कि सूहे में धैवत नहीं लगती। अंग का भी फर्क है। दोनों की चीजें सुनाये देता हूँ। सूहे चीज़ 'सुन्दर नार' गाता हूँ।

(गाते हैं।)

और सुघराई यों है।

('चलो री सुन' गाते हैं)

सु०—और नायकी?

स०—('मध मण्डल निरतत कान्ह' गाते हैं)

बृ०—आप तो सूर मलार और सूरदासी मलार में भी फर्क बताते हैं।

स०—सूर मलार की 'आए गरजत मेघ' चीज तो आप लोगों की सुनी हुई है। सूरदासी यों है—('साबिर के द्वार' गाते हैं)

सु०—चाँदनी केदार और केदार में क्या फर्क है?

स०—केदार में कोमल निषाद लगी, तो चाँदनी केदार हुआ।

बृ०—कुछ लोगों का कहना यह है कि तीव्र मध्यम और कोमल निषाद दोनों से रहित केदार होता है। ये दोनों स्वर लगने पर 'चाँदनी केदार' हो जाता है। आज कल जो लोग केदार में तीव्र मध्यम और निषाद बरत कर गाते हैं, वही चाँदनो केदार है। ('प्यारी के गलहार' गाते हैं)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व०—हमें यह चाँदनी केदार कह कर बताया गया है। (वहुत गई थोरो रही' गाकर) यह केदार है।

सु०—विहाग और विहागड़े की बन्दिशें…?

स०—विहाग में तीव्र मध्यम नहीं है। तीव्र मध्यम ही विहाग को विहागड़ा बना देता है।

सु०—आजकल लोग विहागड़े में कोमल निषाद लगाते हैं।

बृ०—लोग तो न जाने क्या-क्या करते हैं। तीव्र मध्यम तो विहाग में जरूरी नहीं।

स०—हम आपको तीव्र मध्यम अलग करके गौडसारंग सुनाते हैं। आला दर्जे का गौडसारंग होगा।"

बृ०—औडुव विहाग को आप क्या कहेंगे ?

स०—विहाग तो औडुव ही है। एक चीज सुनिये—

('राधे जू' गाते हैं)

व०—('सब निस जागी' गाते हैं।)

स०—पहले 'ख़याल' की हालत ऐसी नहीं थी। चारों तुकें न होने की वजह से वह मुंडा या लंगड़ा ध्रुवपद कहलाता था। उसकी गायकी और बढ़त भी एक हद के अन्दर होती थी। यह बात नहीं थी कि राग की जानिब से आँखें बन्द करलीं और कलाबाजियाँ लगाने लगे, चौथी सप्तक में पहुँज गए और कूद कर मन्द्र में आ गए। यह गायकी नहीं थी ख़याल की।

व०—अब तो 'सादरे' में भी द्रुत की तानें मार रहे हैं।

स०—अब तो सब कुछ माफ है।

बृ०—बारहों सुरों के बारह खून माफ हैं।

सु०—अच्छा आप लोग पूरिया या मारवा गाते वक्त तानपूरे में पंचम वाला तार किस स्वर में मिलायेंगे ?

व०—निषाद में।

सु०—इन दोनों रागों के निषाद में कुछ फर्क है ?

स०—पूरिया का निषाद मारवे के निषाद की बनिस्बत प्रबल और चढा हुआ है।

(दूसरी बैठक)

सु०—एक ज़माने से आपकी बहुत तारीफ सुनी है खाँ साहब, खुशकिस्मती से वह मौक़ा आया है कि आपसे कुछ सुनाने की दरख्वास्त की जाए।

व०—मैं तो पण्डितजी के हुक्म का बन्दा हूँ। इनके हुक्म से हाजिर हो गया। ये कहदें धूप में खड़े रहो, तो खड़ा रहूँगा।

बृ०—मेरे दोस्त हैं, इनकी यह मुहब्बत है।

सु०—खाँ साहब, यह 'विडार-अंग' क्या चीज़ है ?

व०—बिगाड़-बिगाड़ कर बनाना 'विडार' है, बिगड़ते-बिगड़ते सँवर जाना 'विडार' है। उसके कुछ कोमल-तीव्र स्वर हैं, कभी कोई छोड़ दिया, कभी कुछ छोड़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया। यों है—

(भैरवी की ठुमरी 'मैं तो तोरे दामनवा लागी महाराज' गाते हैं)

सु०—क्या कुछ ख़ास चीजों में विडार का स्तेमाल होता है ?

व०—भैरवी, पीलू, तिलंग जैसी चीज़ों में विडार की फिरत हो सकती है, हर मौक़े पर नहीं। विडार में कभी एक सुर छोड़ दिया जाता है, कभी दो, तीन या चार। देखिए मैं भैरवी में विडार घूमता हूँ।

(भैरवी के मन्द्र धैवत को 'सा' मानकर भोपाली की फिरत फिरने लगते हैं और मन्द्र धैवत तक लौटकर सीधे षड्ज से मिलते और भैरवी का आविर्भाव करते रहते हैं)

सु०—इसका उसूल क्या है ?

ब०—इसकी कोई खास या पलटा नहीं है, गवैये की नज़र है, जहाँ से जो शुरू हो जाए। जब तक साज़िन्दे को समझ न होगी कि कहाँ से क्या कर गया वह साथ नहीं कर सकता, गवैया मन में क्या सोचकर किधर से कैसे निकल गया, कितने बल किस जगह से बनकर गया, जब तक यह नहीं समझेगा, संगत करने वाला बँधा बैठा रहेगा।

सु०—आप तो षड्ज-चालन कर रहे हैं।

व०—जी, जो कुछ भी कर रहे हैं यही विडार है। अब 'सुर-वर्जित' सुनिए।

बृ०—आपका मतलब 'वर्जित स्वरों का प्रयोग' है।

व०—इसका नोटेशन नहीं हो सकता।

सु०—नोटेशन तो हो सकता है, आखिर आप कोई न कोई स्वर तो लगा ही रहे हैं।

बृ०—राग-नियम के अनुसार कोई स्वर-लिपि नहीं हो सकती, आपका कहना यह है।

सु०—अगर आप अपने बच्चों को विडार सिखाएँ तो कैसे तालीम देंगे ?

व०—इसकी कोई तालीम नहीं है। यही कहेंगे, फलाँ जगह से चले जाओ, फलाँ जगह से लौट आओ।

सु०—सरगम करना आपकी समझ में कैसी बात है।

व०—मैं तो, बुजुर्ग जैसा गाते थे, वैसा गाने की कोशिश करता हूँ। वह कहते थे कि गाते वक्त सरगम करना ठीक नहीं।

सु०—यह तो नहीं कहा जा सकता कि विडार करते वक्त आपके दिमाग़ में कोई सरगम नहीं रहती।

बृ०—नहीं रहती। आरोह-अवरोह करने के बाद इनके दिमाग़ में राग की छाया रहती है। फिर इनके गले से वह बल और पेंच अपने आप लगते रहते हैं, जो इनकी गायकी की जान हैं, राग के स्वर तो अपने आप उन बलों में ढलते जाते हैं।

सु०—अच्छा खाँ साहब, यह छोटा और बड़ा ख़याल क्या चीज़ है ?

व०—मैं तो इसके खिलाफ़ हूँ। जो बड़ा ख़याल कहलाता है, हम उसकी दून भी कर सकते हैं, जो छोटा कहलाता है, हम उसकी लय आधी भी कर सकते हैं।

सु०—यह जो आजकल बहुत बड़ा 'इकताला' गाया जा रहा है, उसके बारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में आपकी क्या राय है ?

व०—वह बड़े गवैयों के 'ट्रन' के लिए है।

सु०—'ट्रन' क्या ?

व०—टुरकना। मंजे से टुरकर हे हैं, मनमाने घूम रहे हैं, लय से कोई वास्ता नहीं, 'सम' से पहले मुँह पकड़ा और 'सम' पर पटक दिया।

वृ०—तो आप उस इकताले के कायल नहीं हैं ?

व०—हम तो उस इकताले के तब कायल हों, जब कोई उसकी नपी-तुली बन्दिश हो और लय में उसके दर्जे हो जाएँ। ऊपर के दर्जों के लिए जरूरत है, तनैती की। गला हर्राटे भरता हो।

बृ०—और ताल ? तबलिया न हो, तो।

व०—न हो। अपना ताल कायम होना चाहिए।

सु०—अगर तबलावादक शैतान हो, तो ?

व०—जब अपना ताल सच्चा है, मात्रा प्रस्तार ज़हन में है तो उसकी शैतानी क्या करेगी; जब अपनी तराजू, अपना काँटा अपने हाथ में है तो कोई बेईमानी कैसे करेगा। भई, तोल लो, तुलवा लो। लय का धर्म रखते हो तो कुछ भी बजाओ, हमें कोई ऐतराज नहीं।

सु०—आप बेसुरे आदमी को सुरीला बनाने के लिए क्या करेंगे ?

व०—वह तरकीब करेंगे, जिससे सुर में आ जाए।

सु०—वही तरकीब तो हम जानना चाहते हैं।

व०—साल, डेढ साल, दो साल, उससे सुर भरवाएंगे।

सु०—अगर किसी के स्वर अवरोह में ओछे लगते हैं तो आप उसे कैसे ठीक करेंगे ?

व०—ज़ब शुरू का 'सुर' अपनी जगह से गिर जाता है, तो उसके बाद वाले सारे स्वर भी अपनी-अपनी जगह से हट जाते हैं। इसीलिए हम लोग ज़िन्दगी भर 'सा' भरते हैं।

बृ०—तार सप्तक के 'स' पर ठहरने की आदत डलवाने से अवरोह के स्वरों का ओछापन दूर हो जाता है।

सु०—कुछ लोगों का कहना है कि औरतों को मन्द्र सप्तक का अभ्यास नहीं करना चाहिए। खाँ साहब, इस बारे में आपकी क्या राय है ?

व०—अब मैं क्या अर्ज करूँ। आजकल औरतें बाजे के चौथे या पाँचवें काले पर्दे को 'स' मानकर गाती हैं। तानपूरे पर पतले तार चिनचिनाते हैं। हम तो उन औरतों का गला भी पहले या दूसरे काले पर ले आए, जो पाँचवें काले से गाती थीं। ऐसा करने से गले का फैलाव बढ़ता चला गया।

सु०—काफ़ी लोग कहते हैं कि औरतों को मन्द्र सप्तक में अभ्यास नहीं करना चाहिए।

व०—वह लोग गलत कहते हैं। वे लोग बताना नहीं जानते।

सु०—वह लोग कहते हैं कि मन्द्र स्थान का अभ्यास औरतें करें, तो उनका गला फट जाएगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृ०—मन्द्र स्थान के स्वर तो हृदय से उत्पन्न होते हैं, फटेगा तो वह फटेगा। मध्य सप्तक के स्वरों का स्थान कण्ठ है, कण्ठ को अगर फटना ही है, तो मध्य स्थान के अभ्यास से फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाना चाहिए।

सु०—ऐसा तो नहीं देखा। अच्छा खाँ साहब आपके सामने जो बुजुर्ग औरतें गा चुकी हैं, वे मन्द्र सप्तक में अभ्यास करती थीं या नहीं?

व०—जरूर करती थीं।

बृ०—भई कण्ठ का एक अपना धर्म्म भी होता है। हर औरत के लिए चौथे काले को 'अमृतधारा' बना डालना ठीक नहीं।

व०—कुछ औरतों के गले होरी-ध्रुवपद के लिए मौजू होते हैं। हम स्कूली गाने-बजाने को नहीं मानते। वहाँ असली काम नहीं आता। इन भले मानसों को यह मालूम नहीं कि किस राग में किस सुर की लाग से किस सुर का स्तेमाल होगा। जव तक यह न होगा, 'रीत' और 'धरम' नहीं रहेंगे। जिस वक्त स्कूल के लोगों को यह तमीज़ हो जाएगी, दुनिया को हम लोगों की जरूरत नहीं रहेगी। इनकी समझ में यह नहीं आया है और न आएगा ही कि हर राग की खास छाया उसके सुरों की लाग से ही बनती है, ये लोग तो सुरों के नाम जानते हैं। कोमल ऋषभ तो पचासों रागों में लगता है, लेकिन किस राग में किस करवट से लगता है, यह 'नोटेशन' कैसे बोलेगा?

सु०—अगर शागिर्द के गले में दाना पैदा करना है, तो आप क्या करेंगे?

व०—उसको लय में पल्टा कहलवाया जायेगा, सीधा पल्टा कराया जायेगा। ठेका साथ में बजवाया जायेगा। कितनी जगह में लय के हिसाब से, कितना काम हो, यह वताया जाएगा। जब ठाह लय में दाने सच्चे हो जाएँ, तो उनकी दुगुन भी की जा सकती है। दून में भी दाने की शान वही रहना चाहिए। दाना पिचे नहीं, अलहदा-अलहदा रहे। पहले हर सुर पर ताल दिया जाए, हर दाने पर वरावर वज़न रहे, फिर दो सुरों पर ताल दिया जाए, दोनों सुरों के दाने चमकदार और साफ रहें जब यह होने लगे, तो चार-चार सुरों पर ताल दिया जाए।

सु०—अभ्यास ठेके के साथ करना चाहिए?

व० —अगर आपके दिल में लय की जाँच है, तो आपको ठेके की कोई जरूरत नहीं। अगर लय का अन्दाज दिल में नहीं, तो ठेके के साथ रियाज़ करने से ही वह पैदा होगा।

बृ०—स्कूलों के वच्चे तो वेहिसाब और बेतरतीब गला चलाते रहते हैं और तवले की तरफ देखते रहते हैं, कब मतलब का बोल आए और मुँह पकड़ें।

व०—दाने की सच्चाई और सुरीलेपन के लिए दिल में लय का वजन रहना जरूरी है, लय में 'झोल' पड़ने से 'तान' बेसुरी होती है, 'लय' ताकत देती है और सुरों को ओछा नहीं होने देती। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठुमरी और स्व० भातखण्डे

(देश के प्रसिद्ध मासिक पत्र संगीत में प्रकाशित विदुषी लेखिका के लेखों ने समस्त जगत का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। बंगाल की विख्यात मासिक पत्रिका 'सुरछन्दा' इन लेखों के बंगला-अनुवाद का प्रकाशन करके स्वयं को कृत-कृत्य समझती है। श्रीमती सुमित्रा जी की लेखमाला 'रामपुर-परम्परा और स्व० भातखण्डे' ने जिज्ञासुओं को स्व० भातखण्डेजी के विषय में एक नयी दृष्टि दी है। हमें विश्वास है कि प्रस्तुत लेख भी पाठकों के लिए विचारोत्तेजक सिद्ध होगा।)

ध्रुवपद, खयाल, ठुमरी, दादरा, गजल, चैती, कजरी, सावन, होली, कुछ भी क्यों न हो, उसमें स्वर, भाषा, ताल और मार्ग ये चार तत्व अवश्य होते हैं। 'स्वर' से तात्पर्य 'रागपक्ष', 'भाषा' से तात्पर्य 'शब्द' और 'अर्थ' (विषय भी इसमें ही अन्तर्भूत है), ताल से तात्पर्य विशिष्ट 'गति' और 'यति' से युक्तता और मार्ग से तात्पर्य अन्दाज या चलन है।

'वस्तु' या 'चीज' पर विचार करने के लिए इन चारो तत्वों पर विचार करना अनिवार्य है।

ठुमरी का आविष्कार कब, क्यों और किसने किया ? इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत पंक्तियों का विषय नहीं। यहाँ तो 'ठुमरी और स्व० भातखण्डेजी का विचार का विषय है।

भातखण्डेजी का कथन है—"ठुमरी भी एक क्षुद्र गीत ही माना जाता है।··· उच्चकोटि के गायक ठुमरी गान को निम्नकोटि का गान कहते हैं।"[१] ?

इस क्षुद्रता पर विचार किया जाए।

ठुमरी के दो मोटे-मोटे भेद किए जा सकते हैं। 'बोल-बाँट' की ठुमरी और 'बोल बनाव' की ठुमरी; पश्चिमी उत्तर प्रदेश, रामपुर, बरेली इत्यादि स्थानों में रचित बन्दिश की ठुमरियों में बोलों का बाँट लय में गुँथा हुआ होता है, स्वर पक्ष में बनाव भी लय की बाँट के अधीन होता है। लखनऊ के कथक कलाकार इसी अंग की ठुमरियों में भाव बताते थे।

भातखण्डेजी कहते हैं—"ठुमरी में राग की शुद्धता रखने की ओर विशेषतया ध्यान नहीं दिया जाता।"[२] भातखण्डेजी का यह कथन ठीक नहीं है।

---

१. क्रमिक-पुस्तक-मालिका, भाग ४ पृष्ठ ५०।

२. वही,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सनद' पिया ठुमरियों के प्रसिद्ध रचयिता हुए हैं। इनका वास्तविक नाम तवक्कुल हुसेन खाँ था और ये बरेली निवासी थे। 'सनद' शब्द का अर्थ प्रमाण है। 'सनद' पिया रामपुर में रहकर उन बहादुर हुसेन खाँ सुर सिंगार वादक से शिक्षा प्राप्त करते थे, जो स्व० भातखण्डेजी के रामपुरनिवासी गुरु स्व० वजीर खाँ के नाना थे। 'सनद' पिया अपनी गुरु-परम्परा में प्रचलित चलन के अनुसार 'तन्त के लयबद्ध बाज' पर 'बोल' कह दिया करते थे। इस प्रकार रागरूप अक्षुण्ण रहता था और 'सनद' पिया की ये ठुमरियाँ रागों के चलन के विषय में 'सनद' थीं।

स्व० भातखण्डेजी ने क्रमिक-पुस्तक-मालिका के विभिन्न भागों में सनद की ठुमरियाँ दी हैं, परन्तु वे साधारणतया छोटा खयाल समझी जाती हैं।

क्रमिक-पुस्तक-मालिका, भाग चतुर्थ, पृष्ठ ४२१ पर 'सनदपिया की ठुमरी राग परज त्रिताल (मध्यलय) में यों दी हुई हैं—

स्थायी—का करूँ, न माने री, सखी री, मोर मुकुट वारी ढीठ लंगर डगर चलत पनिया भरत ठठोरी करत।

अन्तरा—'सनद पिया' मोरी मानात नाहीं, बार बार मोसे बरजोरि करत !

इस ठुमरी की स्वर लिपि पाठक देख लें कि उसमें राग शुद्ध है या नहीं। इसी राग और इसी ताल में पृष्ठ ४२५ पर एक और ठुमरी यों है—

स्थायी—पवन चलत आली कियो चन्द्र खेल, चलो मितवा बालम बगवा
हम तुम मधवा पियें, करें रंगरलियाँ।

अन्तरा—पकर बैयाँ, परत पैयाँ, बलि जैयाँ, 'सनद-पिया, तोरी फुलवारी
चटक रहीं कलियाँ।

क्रमिक-पुस्तक-मालिका, भाग तृतीय पृष्ठ ४२३, पर सोहनी में त्रिताल(मध्य लय) की ठुमरी यों है—

स्थायी—देखिबे को जिया ललचाये पिया के दरसवा री ननदी, जिया न माने
मोरा।

अन्तरा—रात 'सनद पिया' सपने में देखो, भोर भये नजर न आयो पिया।

परज और सोहनी की इन तीनों ठुमरियों में राग भलीभांति उभरा है। भातखण्डे जी का कथन है—"जिन रागों में टप्पे होते हैं, उन्हीं में ठुमरियाँ भी होती हैं।"[3] टप्पे के लिए वे काफ़ी, झंझोटी, वरवा, पीलू, माँझ, भैरवी और खमाज गिनाते हैं।[4] परज और सोहनी जैसे रागों की चर्चा वे ठुमरी के सन्दर्भ में नहीं करते, परन्तु 'सनद' की रचनाएँ सत्यकी घोषणा कर रही हैं। अब यदि कोई प्रस्ताव पास करके इन्हें 'छोटा खयाल' घोषित करा दे, तो बात दूसरी है, परन्तु भातखण्डे जी के रामपुर-निवासी एक अन्य गुरु साहबजादा छम्मन साहब ने अपने उर्दू ग्रन्थ 'रहनुमाए-हारमोनियम' में तो इन रचनाओं को ठुमरी ही कहा है। उक्त ग्रंथ का प्रकाशन क्रमिक पुस्तक-मालिका से कहीं पूर्व हुआ है, जो वर्तमान स्वर लिपि के पूर्व रूप का प्रवर्तक भी छम्मन साहब को सिद्ध करता है। अस्तु राग की दृष्टि से

---

३. वही, पृ० ५०
४. वही, पृ० ४६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन ठुमरियों को क्षुद्र कहने का साहस भला किस माई के लाल में है।

अब यदि विषय को देखा जाये, तो उसमें शृंगार-सम्वद्ध भावनाओं का चित्रण है। शृंगार को भला कौन सहृदय क्षुद्र कहेगा। संयोग और वियोग दोनों ही चित्रण ठुमरियों में है। कृष्णलीला-सम्बन्धी उक्तियों को 'क्षुद्र' कहना तो वैष्णवों के एक सम्प्रदाय विशेष का अपमान है। दाम्पत्य-भावनाओं को क्षुद्र कहना अपने माँ-वाप और विश्वभर के कवियों का अपमान है।

भातखण्डे जी कहते हैं—"वह (ठुमरी) जिस ताल में प्रायः गायी जाती है, उसे 'पंजाबी' कहते हैं। 'पंजाबी' त्रिताल का ही एक प्रकार है। ठुमरी की गति अति चपल नहीं होती।"[५]

जब ठुमरी की गति अति चपल नहीं होती, तो 'गति' के आधार पर भी उसे 'क्षुद्र' नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त तीनों ठुमरियों की लय भी भातखंडेजी ने 'मध्य' वतायी है। शृंगार सम्बन्धी उदात्त भावनाओं के प्रदर्शन के लिए मध्य लय की उपयुक्तता का निर्देश भरत जैसे 'मुनि' भी करते हैं।

राग, विषय और लय की दृष्टि से तो ठुमरी में 'क्षुद्रता सिद्ध की नहीं जा सकती, तो फिर क्षुद्रता कहाँ है ? नारी सुलभ हेलाओं को मूर्त करने वाला नृत्य 'लास्य' भगवती पार्वती द्वारा आविष्कृत होकर जब क्षुद्र नहीं कहलाया, तब नारी के अन्तर को चित्रित करने वाली वाणी भला क्यों क्षुद्र कहलाने लगी ?

भातखंडेजी 'होरी'(धमार-ताल में गेय)गाने के लिए उच्चकोटि का स्वर-ज्ञान एवं राग-ज्ञान आवश्यक मानते हैं। उसके लिए आवाज का बुलन्द' होना भी आवश्यक कहते हैं और ध्रुवपद गाने वाले कलावन्तों के द्वारा होरी को भी आवश्यक कहते हैं। और ध्रुवपद गाने वाले कलावन्तों के द्वारा होरी को गेय मानते हैं।[६] होरियों का विषय भी नारी की उक्ति होता है, परन्तु भातखण्डे जी के मत में होरियां क्षुद्र नहीं हैं इसका अर्थ यह है कि नारी की उक्ति होने के कारण ठुमरी को क्षुद्र नहीं कहा जा सकता।

भातखण्डे जी फरमाते हैं—"उत्तर भारत की ओर संगीत व्यवसायिनी स्त्रियाँ ही प्रायः ठुमरी गाती हैं।"[७] यदि गणिकाओं के द्वारा गेय होने के कारण ही ठुमरी गान क्षुद्र है, तो ध्रुवपद भी क्षुद्र है और खयाल भी, क्योंकि ढारी जाति की दफजन (ढप बजाकर नृत्य करने वाली नारियाँ), अबुलफजल के अनुसार ध्रुवपद ही गाती थीं और वाजिदअली शाह के युग की रहीमन बाई का खयाल सुनकर, (मुहम्मद करम इमाम के अनुसार) बड़े-बड़े गायकों को पसीना छूटता था। दूर क्यों जाइए, महाराष्ट्र की गणिकाएँ आज भी खयाल ही गाती हैं। जैसा भी गाती हैं, इसका निष्कर्ष यह है कि गणिकाओं द्वारा गेय होने के कारण भी ठुमरी क्षुद्र नहीं ठहरायी जा सकती।

भातखण्डेजी रंजन के लिए वर्जित स्वर के प्रयोग का 'लायसेंस' खयालियों

---

५. वही, पृ० ५०

६. वही, पृ० ५१

७. वही, पृ० ५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को देते हैं। यहाँ तक कि गौड सारंग और 'केदार' में कोमल निषाद 'जायज' ठहराते हैं। 'कलावन्तों' की दृष्टि में तो यह 'आवारगी' है। अस्तु भैरवी में दोनों ऋषभ, काफी में दोनों गांधार, विहाग में दोनों मध्यम, देश और खमाज में दोनों निषाद राग को अशुद्ध नहीं करते। इन रागों में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग एक विशिष्ट सिद्धांत के अनुसार होता है। भातखण्डेजी की दृष्टि में 'अत्यन्त उच्च' होरियों में ये प्रयोग खूब मिलेंगे। भैरवी के दोनों ऋषभों पर नाक-भौंह सिकोड़ने वाले प्राणी अवश्य मिलेंगे। पन्तु वाह रे 'सनद' ठुमरी को क्षुद्र कहने वाले भातखण्डेजी के भाण्डार में तेरी रचनाएँ जगमगा रही हैं।

क्रमिक-पुस्तक-मालिका द्वितीय भाग पृ० ३२७ पर काफी में त्रिताल मध्य लय की वह ठुमरी विद्यमान है—

स्थायी—आज मन वस गई साँवरे की सुरतिया प्यारी, प्यारी सखी री कहा
कहुं तोसे अपने जिया की बात आली री, बाहू के बिन देखे कल न
परत मोको।

अन्तरा—हा हा करत तोरे पैयाँ परत हूँ जो पिया आन मिले मोरी सजनी,
मैं तो चेरी 'सनद' भई तेरी आज मन वस गई।

इस ठुमरी में उत्तराँग के अन्तर्गत देश के अंग से दोनों निषाद प्रयुक्त हैं। निषाद का यह प्रयोग क्रमिक-पुस्तक मालिका के इसी भाग में दिए हुए ध्रुवपदों में भी मिलेगा।

क्रमिक-पुस्तक-मालिका, द्वितीय भाग पृ० ३९५ पर 'सनद' की यह प्रसिद्ध ठुमरी है—

स्थायी—कैसी ये भलाई रे कन्हाई, पनिया भरत मोरी गगरी गिराई करके
लराई।

अन्तरा—'सनद' कहे ऐसो ढीठ भयो कन्हाई, का करूं माई, नहीं मानत
कन्हाई करत लराई।

इस ठुमरी में कोमल ऋषभ ही प्रयुक्त है। पृ० ४०१ पर यह ठुमरो है—

स्थायी—अब तोरी बाँकी लो अनियारे अब तोरी बाँकी चितवन मेरो मन
बस कीनो प्यारी-प्यारी बतियाँ करके।

अन्तरा—'सनद' कहे मोरा जीयरा नहीं माने डार दीनों मोपै जादू सा कछु
करके।

इस ठुमरी में भी तीव्र ऋषभ प्रयुक्त नहीं है। राग की दृष्टि से इन टकसाली बन्दिशों को 'क्षुद्र' कहने वाला व्यक्ति कोई भी हो, दया का पात्र है।

भातखण्डेजी का कथन है कि "महाराष्ट्र में राग एवं उसके शास्त्र की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है, शायद इसीलिए ठुमरी का महत्त्व वहाँ उतना नहीं है।"[८]

इस कथन पर अपना मत प्रकट करने की अपेक्षा भातखण्डेजी के ये शब्द ही उद्धृत करना श्रेयस्कर है। वे कहते हैं—

---

८. वही, पृ० ५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मेरे गुरू नवाब साहब रामपुर (स्व० हामिद अली खाँ साहब) खयाल तो प्रायः सुनते ही नहीं—उनकी कहना है कि खयालियों की तानबाजी में राग का धर्म भली-भाँति नहीं रहता।"[९]

खटका, जमजमा, तान इत्यादि खयाल गायकी के आधार हैं, खयालिए इनके लिए राग शुद्धि का बलिदान कर देते हैं। क्रमिक-पुस्तक-मालिका में राग का जो लक्षण किया है और जो स्वर विस्तार दिए हैं उनका विरोध विलम्बित खयालों की बन्दिशों में सर्वत्र मिलेगा। खानदानी खयालिए इन विरोधों के आधार पर तानों के हर्राटे मारते हैं। अतः रामपुर नरेश स्व० हामिद अली खाँ का खयाल सम्बन्धी मत सर्वथा सत्य है। इसीलिए शास्त्र (!) कही जाने वाली क्रमिक-पुस्तक-मालिका में लक्ष्य लक्षण विरोध सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। ऐसी अवस्था में राग शुद्धि का दावा यदि खयालियों की ओर से किया जाए, तो उपहासास्पद है। अतः महाराष्ट्र को राग शुद्धिभक्त कह कर ठुमरी को उसकी दृष्टि में राग की अशुद्धता (!) के कारण उपेक्षणीय कहना सत्य का गला घोटना है।

थोड़ी सी बात 'शास्त्र' की भी कर ली जाए ?

राग शुद्धि के विषय में आज भी खानदानी खयालिए बहादुर हुसेन खाँ जैसे सिद्ध कलाकारों की रचनाओं और टकसाली ध्रुवपदों को प्रमाण मानते हैं, खयालों को नहीं :

भातखण्डेजो कहते हैं—"मुहम्मद खाँ के गान-प्रकार को देखकर ही ग्वालियर के गायकों ने अपनी शैली बदल दी, तब से खयाल में भयंकर तानबाजी करने की परिपाटी सी पड़ गयी।"[१०] मुहम्मद खाँ की तानों से प्रसन्न होकर महाराज ने हद्दू हस्सू खाँ को भी इसी प्रकार की तानें तैयार करने को कहा। तब इन दोनों युवकों ने दो चार महीने मुहम्मद खाँ का गाना रोज सुना तथा छिप छिपकर भी वे उनकी गान-शैली का अध्ययन करते रहे—इन्होंने हू-ब-हू मुहम्मद अली खाँ की नकल कर दिखाई"[११] ग्वालियर में अभी कुल चालीस-पचास राग ही गाए जाते हैं—ग्वालियर के हद्दू-हस्सू खाँ पहले लखनऊ में थे और वहाँ उन्होंने तानसेन के घराने से कई राग सुने होंगे। बड़े 'तनैत' होने के कारण अपने खयाल गान के काम में आने वाले इतने राग उन्होंने पसन्द किए।"[१२] बम्बई के इलाके में गायक-वादकों की परम्परा साठ-सत्तर वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। अलीबाग के पास नागाँव के वासुदेवराव जोशी ग्वालियर जाकर हद्दू खाँ के शिष्य बने और इनसे ही महाराष्ट्र के प्रसिद्ध बालकृष्ण बुआ खयाल गान में तैयार हुए।"[१३]

भातखण्डेजी के इन कथनों के निष्कर्ष हैं :—

---

९. भातखण्डे-संगीत शास्त्र, भाग ४, पृ० ६५६।
१०. भा: सं० शा०, भाग ४, पृ० २२७।
११. वही पृ० २२५-२२६।
१२. वही, पृ० ४५१-४५२।
१३. वही, पृ० २३२।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(क) ग्वालियर के महाराज बड़े मुहम्मद खाँ की तानों की तैयारी से चकित हुए, वहाँ राग शुद्ध का प्रश्न नहीं था।

(ख) महाराज को प्रसन्न करने के लिए हद्दू खाँ, हस्सू खाँ ने अपने पूर्वज नत्थन पीर बख्श की शैली छोड़कर मुहम्मद खाँ की नकल की और खयाल गायकी में भयानक तानें आ घुसीं।

(ग) हद्दू खाँ, हस्सू खाँ ने कुछ ऐसे-रागों को चुन लिया जिनमें तानें मारने की सुविधा उत्पन्न की जा सकती थी और अवशिष्ट रागों को तिलान्जलि दे दी।

(घ) वासुदेव राव जोशी ने यही 'माल' बम्बई के इलाके में बालकृष्ण बवा को 'सप्लाई' कर दिया।

ऐसी स्थिति में राग शुद्धि भला कहाँ और उसका शास्त्र भला कौन-सा? सत्य को स्वयं ही अनावृत्त करके उसे असत्य का आवरण पहराना और महाराष्ट्र को राग और शास्त्र का प्रेमी भी कहना और उसकी दृष्टि में ठुमरी को क्षुद्र ठहराना वह चमत्कार है, जो सच्चे शास्त्रकारों और रागानुरागियों के द्वारा सम्भव नहीं।

अतः खयाल भक्त राग शुद्धि के प्रश्न पर उस 'ठुमरी' को क्षुद्र कहने के अधिकारी कदापि नहीं हैं, 'सनद' जैसा प्रामाणिक व्यक्ति जिसका पृष्ठपोषण कर रहा है।

भातखण्डेजी कहते हैं—"किन्तु वह (ठुमरी) अत्यन्त लोकप्रिय है, इसमें कोई सन्देह नहीं। ठुमरी उत्तम प्रकार से गाना सरल नहीं है। उत्तर प्रदेश में ठुमरी अत्युत्तम प्रकार से गाई जाती है। महाराष्ट्र में ठुमरी अच्छे प्रकार से गाई हुई शायद ही सुनाई देगी।"[१४]

असली 'दुखती रग' यही है। महाराष्ट्र का जीवन संघर्ष, तपस्या और कठोरता का है, ठुमरी की आत्मा महाराष्ट्र की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। उत्तर प्रदेश की ब्रजभूमि कृष्णलीलाओं का क्षेत्र है। उत्तर प्रदेश के चैती, कजरी, सावन जैसे लोक-गीत के प्रकार उत्तर प्रदेश के निजी है। ये सब गीतियाँ नारी की उक्तियों और भावनाओं का भंडार हैं, ठुमरी इसी बिरादरी की चीज है।

किसी राग का आरोह-अवरोह घोटकर उसमें मनमानी तानें मारना अत्यन्त सरल है, परन्तु एक-एक स्वर-तरंग एक-एक हूक से, विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करना सर्वथा पृथक और नाजुक बात है और नजाकत भला कहीं क्षुद्र होती है?

जो काम लोग कर नहीं सकते, उसकी निन्दा आरम्भ कर देते हैं।

क्रमिक पुस्तक मालिका के विभिन्न भागों में अनेक ठुमरियाँ हैं। 'कदर पिया' की कुछ ठुमरियों की सूची इस प्रकार है—

बोल	राग	ताल	क्र० पु० मा० भाग	पृष्ठ
१. अबकब	खमाज	त्रिताल	२	१३५
२. धुन सों	,,	,,	२	१३७
३. अरे मोरे	,,	,,	२	१३८
४. अंचरा छोड़ो	,,	दीपचन्दी	२	१५६

१४. क्र० पु० मा०, भा० ४, पृ० ५०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. जाओ कदर	,,	,,	२	१५७
६. कदरपिया	काफी	त्रिताल	२	३२५
७. सखी अब	,,	,,	२	३२८
८. जोर जोर	,,	,,	२	३३०
९. मुर्का के	,,	,,	२	३३१
१०. रहिहैं कैसे	,,	,,	२	३३२
११. जाने दो	काफी-सिन्दूरा	,,	२	३३३
१२. मैं वारी	काफी	,,	२	३३४
१३. पिया झूम	,,	,,	२	३३५
१४. हमरा उन	देश	पंजाबी	३	२८९
१५. कदर आगे	तिलक कामोद	त्रिताल	३	३०५
१६. उन बिन	,,	,,	३	३०७
१७. मैं कदर पिया	,,	,,	३	३११
१८. कदर प्यारे	पीलू	त्रिताल	३	६२५
१९. मोरी अंखियों	,,	पंजाबी	३	६२९
२०. मोरी अंखियाँ	,,	,,	३	६३०

अजम, उमर, हररंग (मुहम्मद अली खाँ ध्रुवपद गायक) दरस, (महबूब अली खाँ अतरौली वाले), प्रेमदास, हैदर चाँद, आलम, सुघर, अख्तर (वाजिद अली शाह) सबरस, अचपल (तानरस खाँ के उस्ताद) इत्यादि की ठुमरियाँ तो क्रमिक-पुस्तक-मालिका के विभिन्न भागों में हैं ही। 'पी की बोली न बोल' 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' 'नीर भरन कैसे जाऊँ,' जैसी अनेक प्रसिद्ध ठुमरियाँ भी हैं।

इन सभी के राग पक्ष पर भातखण्डेजी ने कोई आपत्ति नहीं की है और इन्हें विशिष्ट रागों के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है, अतः किसी भी दृष्टि से ये क्षुद्र नहीं हैं।

वास्तव में भातखण्डेजी ने बोल-बाँट की ठुमरियों पर विचार ही नहीं किया है। भातखण्डेजी के ध्रुवपद गायक गुरु मुहम्मद अली खाँ 'हररंग' नाम से रचनाएँ करते थे। इन्होंने ध्रुवपदों की रचना भी की है और ठुमरियों की भी। प्रत्येक रंग में रचनाएँ करते थे, इसीलिए 'हररंग' उपनाम था। 'हररंग' की एक चौतुकी ठुमरी क्रमिक-पुस्तक-मालिका, द्वितीय भाग, पृष्ठ ३२३ पर दी हुई है, जो त्रिताल में है और 'काफी' की कही गई है। बोल इस प्रकार हैं—

स्थायी—जिन डारो रंग, मानो गिरधारी मोरी बात, जिन डारो रंग मानो गिरधारी, अब सास सुनेगी देगी गारी।

अन्तरा—गिरि कैलास को बास हम छांडयो, हम अबला अति भारी भीजी सारी।

संचारी—डमक डमक डमरू गत बाजत, मत संगीत विचारि ततकारी।

आभोग—'हररंग' कहा कहूं अब मैं तोसों, अनगन देऊं मैं गारी।

इस ठुमरी में खमाज अंग का प्रयोग खुल कर किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भैया गनपतराव—

ठुमरी के प्रसंग में भैया गनपतराव की चर्चा न करना इस युग पुरुष के प्रति कृतघ्नता होगी। दिलीपचन्द्र वेदी के शब्दों में—"भैया गनपतराव ने ठुमरी गाने में ऐसी तराश पैदा की कि तमाम गायक उनकी तकलीद(अनुकरण)करने लगे। ये बड़े जज्बाती (भावुक) और रंगीन तबा (रसिक) थे। इन्हें ठुमरियों से बेहद रकबत (रुचि) थी। हारमोनियम इस आसानी और होशियारी से बजाते थे कि बीनकार सितारनवाज, सारंगीनवाज भी बहुत हैरत (चकित) हो जाते थे। भैया गनपतराव ने एक बार फिर गायकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराया कि गाने के द्वारा भावनाओं की अभिव्यक्ति कैसे की जा सकती है। जिस तरह सदारंग की बदौलत खयाल गायकी का जन्म हुआ, उसी तरह भैया साहब की बदौलत ठुमरी गाना हरदिल अजीज हुआ। भैया साहब ग्वालियर के राजकुमार थे। रामपुर नवाब (स्व० हामिद अली खां), महाराज दतिया, कलकत्ता के करोड़पति सेठ दुनीचन्द्र सदा भैया साहब का आतिथ्य अत्यन्त आदरपूर्वक करते थे। भैया साहब ने अनेक ठुमरियाँ खुद भी बाँधी। मशहूर और मारूफ, मौजूदुद्दीन खां साहब भैया गनपत राव के ही शिष्य थे, गौहरजान, बशीर खां, गफूर खां, बाबू श्यामलाल, सोनी बाबू, मीर साहब भी भैया साहब के ही शिष्य थे।"[१५]

नव्वाब हैदरअली खां के पुत्र साहबजादा सआदत अली खां उर्फ छम्मन साहब की ही कृपा से भातखंडेजी को राग-संबंधी सूक्ष्मताओं का ज्ञान हुआ था। भातखंडे जी ने छम्मन साहब की तुलना बहादुर हुसेन खां और बासत खां जैसे संगीतावतारों से करते हुए कहा है कि सुर-सिंगार वादन संसार से छम्मन साहब के साथ ही गया[१६] छम्मन साहब को भातखण्डे जी ने अपना आदरणीय गुरु कहा है।[१७]

ये छम्मन साहब भी भैया गनपतराव के शिष्य हुए थे। काहे में? ठुमरी में। किस ठुमरी में? जो भातखण्डेजी के द्वारा 'क्षुद्र' कही जाती है।

प्रसिद्ध राग-मर्मज्ञ राजा नवाब अली खाँ भैया गनपत राव के शिष्य थे।

भैया गनपतराव के प्रसिद्ध शिष्य मौजूदद्दीन खाँ (मौजद्दीन खाँ) के जादू से बड़े-बड़े तीसमार खाँ घबराते थे। बनारस की बड़ी मोतीबाई ठुमरी में इन्हीं की शिष्या हैं।

भातखण्डेजी कहते हैं: "लखनऊ व बनारस ठुमरी के लिए प्रसिद्ध है।[१८] लखनऊ में ठाकुर नवाब अली खाँ और बनारस में बड़ी मोतीबाई को भैया गनपत राव की परम्परा का प्रतीक कहा जाना चाहिए। श्री दिलीपचन्द्र वेदी ने कहा है, भारत भर को अपनी शैली से भैया गनपतराव ने प्रभावित किया। दिलीपचन्द्र वेदी कहते हैं—"ठुमरी गाने वालों के सरताज भैया गनपतराव और उनके शगिर्द रशीद

१५. उर्दू 'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, अगस्त, १९५६, पृ० ३८
१६. भातखण्डे-संगीत शास्त्र, भाग ४, पृ० ३८७
१७. ,, , ,, पृ० ६०५
१८. क्र० पु० मा०, भा० ४, पृ० ५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौजूदुद्दीन खाँ साहब ने जब अमृतसर में आकर गाया, तब हर शख्स झूम उठा।"[१९]

शब्दों में कला की व्याख्या करने की चेष्टा हवा में गाँठ लगाने का प्रयत्न मात्र है, इसलिए भैया साहब की कला की व्याख्या वाणी द्वारा नहीं की जा सकती। भैरवी गायी जा रही हो, उसमें बारहों स्वरों का प्रयोग हो रहा हो और पंजाब अंग की गंध तक न आये, गवैये चक्कर में आ जाएं कि ऐं; क्या हो गया!! ठुमरी को यह विशेषता भैया साहब की देन है। इस काम को यदि उड़ाया जा सकता होता, तो छम्मन साहब और ठाकुर नवाब अली खाँ जैसे मनीषी गंडा बंधवा कर भैया गनपत राव के शिष्य न होते। राग के आविर्भाव-तिरोभाव का जो प्रयोग भैया गनपतराव ने ठुमरी के माध्यम से किया, उसके रहस्य तक स्व० भातखण्डेजी की दृष्टि न पहुँची, परन्तु वे इस काम से चकित अवश्य हुए और उन्हें कहना पड़ा—"ठुमरी का गान घृणित कदापि नहीं है।...ठुमरी उत्तम प्रकार से गाना सरल नहीं है।"[२०]

ठुमरी प्रशंसा या निन्दा एक बात है और ठुमरीगान के रहस्य को समझना दूसरी बात। भातखण्डेजी ने कहा है—"महाराष्ट्र में राग व उसके शास्त्र की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है शायद इसीलिए ठुमरी का महत्व वहाँ उतना नहीं है।' इस वक्तव्य में 'शायद' शब्द कहे दे रहा है कि भातखण्डेजी यह वक्तव्य निश्शंक होकर नहीं दे रहे हैं। वास्तव में महाराष्ट्र में ठुमरी न गायी गायी, न समझी गयी।

राग शुद्धि के संबंध में भातखण्डेजी ने जयपुर और रामपुर की परम्परा को प्रमाण माना है।[२१] इन दोनों स्थानों की अपेक्षा महाराष्ट्र में राग शुद्धि का ध्यान या ज्ञान अधिक होता, तो भातखण्डेजी इन स्थानों के गुणियों की चरण धूलि को अपने मस्तक का शृंगार क्यों बनाते और यदि ठुमरीगान घटिया चीज होती, तो 'सनदपिया' जैसे व्यक्तियों को जन्म देने वाली परम्परा के मालिक छम्मन साहब बोल-बनाव में भैया गनपतराव के शिष्य क्यों होते।

इस युग के स्व० फैयाज खां और मुश्ताक हुसेन खां जैसे मूर्धन्य गायकों ने ठुमरी गायी और खूब गायी। भातखण्डेजी कहते हैं - "उच्चकोटि के गायक ठुमरी-गान को निम्न कोटि का गान कहते हैं, बड़ी बैठकों में प्रसिद्ध गायक ठुमरी नहीं गाते।"[२२] समझ में नहीं आता कि यह सब कुछ भातखण्डेजी ने कैसे लिख डाला। स्व० भातखण्डेजी की दृष्टि में फैयाज खां, 'उच्चकोटि के गायक' भी थे और 'प्रसिद्ध' भी, अन्यथा भातखण्डेजी अपने प्रमुख शिष्य को फैयाज खां का शिष्य क्यों करते। फैयाज खां भरी महफिलों में, और सबसे बड़ी महफिल रेडियो में, ठुमरियाँ और दादरे ठाठ से गाते थे।

स्व० भातखण्डेजी जिस रामपुर दरबार के विनम्र विद्यार्थी रहे, उसने विद्याधरी, राजेश्वरी, मलका, जुहराबाई, जानकी बाई, बड़ी मोती बाई, रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी, ढेला बाई, अख्तरी बाई जैसी गायिकाओं को भरपूर सम्मान

---

१९. उर्दू, आजकल, अगस्त १९५५, पृ० ३६

२०. क्र० पु० मा० भा० ४, पृ० ५०

२१. भा० सं० शा०, भाग ४, पृ० ६०५

२२. क्र० पु० मा०, भाग ४, पृ० ५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया। बिन्दादीन की ठुमरियाँ अपनी अभिनय-संबंधिनी विशेषताओं के कारण उस दरबार में भली-भाँति समाहृत हुई। मुश्ताक हुसेन खां जैसे कलाकार ने वहाँ विधिवत ठुमरी गान में भैया गनपतराव से दीक्षा ली।

कुछ गायकों ने ठुमरी से परहेज किया, आज भी करते हैं। कारण क्या है ? जो लोग अच्छी ठुमरी गा नहीं सकते, वे ठुमरी की निन्दा करते हैं।

ऐसे गायक भी हैं, जो ठुमरी अच्छी गाते हैं परन्तु महफिल में गाना नहीं चाहते हैं। इन्हें भय है कि यदि श्रोता इनसे अच्छी ठुमरी सुन लेंगे, तो फिर इनसे कुछ और नहीं सुनेंगे। ये दया के पात्र हैं।

कंठ का व्यायाम करने वाले गायकों का रंग रसभरी ठुमरी के सामने जमता नहीं, ये लोग ईर्ष्या के कारण ठुमरी को गालियाँ देते हैं।

एक वर्ग निहायत ईमानदार हैं। वह कहता है कि पुरुष ठुमरी गाने की 'टेकनीक' पर अधिकार भले ही कर लें, परन्तु वह न नारी का कंठ ला सकता है, न आकृति। इसलिए ठुमरी नारियों को ही गाना चाहिए, वही अधिक स्वाभाविक है। पुरुष ठुमरी गान का शिक्षक भले ही हो, परन्तु जनता के समक्ष उसे अपनी कला शिष्याओं के माध्यम से ही प्रस्तुत करना चाहिए।

सूफी कहता है—पुरुष तो ईश्वर ही है, बाकी सब नारियाँ हैं। जहाँ 'इश्के हकीकी' की बात है, वहाँ प्रत्येक 'जीव' ईश्वर रूपी 'प्रियतम' से मिलने के लिए 'बिरहिन' है। इसलिए प्रत्येक को ठुमरी गाना चाहिए। •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेद और गान

ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें संगृहीत मन्त्र 'ऋक्' (हिन्दी में ऋचा) कहलाते हैं। ऋग्वेद में वैदिक युग की झलक है। प्रत्येक ऋक् छन्दोबद्ध है।[1]

मंत्र-भाग ही वेद नहीं कहलाता, अपितु मंत्र-संहिता (मंत्रों के संग्रह) के पारस्परिक अर्थों की व्याख्या करने वाले 'ब्राह्मण' नामक ग्रन्थ भी 'वेद' कहलाते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों के तीन विभाग—ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् हैं।

ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतियाँ हैं, यजुर्वेद छन्दोबद्ध नहीं है और उसमें यज्ञों का विधान है, सामवेद मंत्रों का गेय रूप है; अथर्ववेद में सुखमूलक, कल्याणप्रद मन्त्रों का संग्रह तो है ही, इसमें मारण-मोहन इत्यादि तांत्रिक प्रयोगों का बीज भी है। ऋग्वेद ही अन्य वेदों का मूल है।

'वाक्य' का स्वर-हीन रूप में बाँचना 'वाचन' है, किसी भी वाक्य में यदि ध्वनि की ऊँचाई-निचाई तो हो, परन्तु स्वर अपने ठीक-ठीक स्थान पर न लगें, तो यह क्रिया 'पाठ' है, किसी भी वाक्य को इस ढंग से गाया जाए, कि उसमें 'स्वर' अपने ठीक-ठीक स्थान पर लगें, तो यही क्रिया 'गान' है।[2]

संगीत के विद्यार्थी को इसीलिए यह बताया जाता है कि संगीत का मूल

---

१. इन वैदिक छन्दों के नाम 'गायत्री' (छः अक्षर), 'उष्णिक्' (सात अक्षर), 'अनुष्टुप्' (आठ अक्षर), 'बृहती' (नौ अक्षर), 'पंक्ति' (दस अक्षर), 'त्रिष्टुप्' (ग्यारह अक्षर) 'जगती' (बारह अक्षर)' 'अतिजगती' (तेरह अक्षर), 'शक्वरी' (चौदह अक्षर), 'अति-शक्वरी' (पन्द्रह अक्षर), 'अष्टि' (सोलह अक्षर), 'अत्यष्टि' (सत्रह अक्षर), 'धृति' (अठारह अक्षर), 'अतिधृति' (उन्नीस अक्षर), 'कृति' (बीस अक्षर), 'प्रकृति' (इक्कीस अक्षर), 'आकृति' (बाईस अक्षर), 'विकृति' (तेईस अक्षर), और 'संकृति' (चौबीस अक्षर) हैं। ऋक्' स्त्रीलिंग शब्द है।

२. "उदात्तानुदात्त स्वरित कम्पित रूपतया स्वराणां यद्रक्ति प्रधानत्वमनुरणनमयं तत्त्यागेनोच्चनीच मध्यम स्थान स्पर्शित्वमात्रं पाठयोपयोगीति दर्शितम्। यदि हि स्वरगता रक्तिः पाठ्ये प्राधान्येनावलम्बयेत तदा गानक्रियासौ स्यान्न पाटः।"

अभिनव भारती सत्रहवाँ अध्याय, पृ० ३८५, नाटयशास्त्र।

अर्थात् "उदात्त (चतुःश्रुतिक), 'अनुदात्त' (द्विश्रुतिक), स्वरित' (त्रिश्रुतिक), और कम्पित रूप में स्वरों की अनुरणनमय रञ्जक प्रधानता को छोड़ने के बाद, केवल ऊँचे, नीचे और मँझले स्थान का स्पर्शमात्र पाठ्य के लिए उपयोगी है, यदि स्वर से सम्बद्ध रञ्जन का अवलम्बन प्रधान रूप में किया जायेगा, तो यह क्रिया 'पाठ' न रहकर 'गान' हो जायेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामवेद (ऋग्वेद का गेय रूप) है। वेद का 'पाठ्य' रूप उन लोगों के लिए उपयोगी है, जो नाट्य के विद्यार्थी हैं। नाट्यशास्त्र के सत्रहवें अध्याय में 'पाठ्य' पर पृथक् विचार किया गया है। 'पाठ्य' का मूल 'ऋग्वेद', गीत का मूल 'सामवेद', अभिनय का मूल 'यजुर्वेद' तथा रसों का मूल 'अथर्ववेद' में है।[३]

'गीत' के चार अंग, 'स्वर', 'पद', 'ताल' और मार्ग हैं।[४] 'स्वर' से 'तात्पर्य' षड्ज इत्यादि स्वर, 'पद' से तात्पर्य अकारादि स्वरों से युक्त व्यञ्जनों का सार्थक या अर्थहीन समूह 'ताल' का अर्थ विशिष्ट-विभाग सहित मात्राओं की आवृत्ति और 'मार्ग' का अर्थ द्रुत, मध्य या बिलम्बित लय से युक्त रास्ता है। अतः संगीत के विद्यार्थी को सामवेद में क्रमशः स्वरों, पदों, तालों और मार्गों का बीज ढूँढ़ना होगा।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि मूलतः 'सामगान' में ग्राम-विभाग नहीं है।[५] सामगान से 'गान्धर्व' का विकास हो चुकने के पश्चात् साम-गान करने वालों ने 'गान्धर्व' को मूर्च्छनाओं का प्रयोग भी साम-गान में करना आरम्भ कर दिया।[६] अस्तु, हमें षड्जग्रामीय स्वरों का मूल 'सामवेद' में खोजना होगा।

जिस समय दशम शती ई० के आरम्भ में, महामहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त नाट्य-शास्त्र की अपनी प्रसिद्ध टीका 'अभिनव-भारती' की रचना, कश्मीर-प्रदेश के अन्तर्गत प्रवरपुर ग्राम में बैठकर कर रहे थे। उस समय तक कश्मीर मुसलमानों के आक्रमण से अप्रभावित था और वहाँ सामगान एवं संगीत की परम्परा अपने विशुद्ध

---

३. जग्राह पाठ्य मृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयं रसानाथर्वणादपि॥ ना० शा', प्रथम अध्याय।

४. "तैः स्वरैः पदै स्तालै मार्गेरेवं चतुर्भिरङ्गैः रूपेतं गीतम्"। संगीत-रत्नाकर, रागविवेकाध्याय, कल्लिनाथ-टीका, पृ० ३३।

५. अतएव सामवेदे ग्राम विभागाभावात् तदुपयोगिन्यां नारदीय शिक्षायां तदभिधानमौत्तराधर्य्यमात्र मेव तूक्तम्—"यः सामगानां"

अभिनव भारती, अट्ठाईसवाँ अध्याय, पृ० १३

६. मूर्च्छनानां यद्यपीहागमे नास्त्युपयोगः, तथापि दृष्ट सामक्रियां वा स्फुट एवोपयोगः। तथा हि दर्शितं, "उत्तरमन्द्रया तिस्रो गाथाः" इति, तानानां "आग्नेष्टोमीपमाद्यं स्याद् द्वितीयं वाजपेयिकं" इत्यादीना मनिरूपण द्वारेणैव वायु पुराणादौ यज्ञोपयोगी सामऋग्गाथोपयोगः प्रदर्शितः। अग्निष्टोमिक सामेन शिवं स्तुत्वा तत्फलमिति च प्रयोक्तुरदृष्टं श्रूयते। तथा 'सदस्याग्निष्टोम साम शृग्वतः पातकै मुंच्यते लोकान् जयति' इति।

दक्ष प्रोक्तं पठेद्यश्च शृणुयाद च्छुद्धषड्जया।
प्रत्यहं सन्ध्ययो स्तौतु रुद्रलोकं गमिष्यतः॥

इति च प्रयोक्तणां चादृष्ट द्वारेण सुखोत्पादक प्रत्युपयोगो दर्शितः ऋग्गायासामोपयोगादेव नारदीयशिक्षायां पुराणादौ च तानपर्यन्त मेव स्वरमण्डलं दर्शितम्।

अभिनव भारती, अध्याय २८, पृ० ६०

७. चतुःश्रुतिरुदात्त उच्चत्वात्, द्विश्रुतिसुदात्तः, नीचैस्त्वात्, त्रिश्रुतिः स्वरितः मध्यवर्तिवया समाहारत्वात्।

वही, अध्याय २८, पृ० १४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

रूप में जीवित थी। अत. साम-सम्बन्धी स्वरों के विषय में परम पूज्य आचार्य अभिनव गुप्त की उक्ति का प्रमाण है।

आचार्य का कथन है—"उच्चता (पूर्ववर्ती स्वर की अपेक्षा अधिक-से-अधिक ऊँचाई) के कारण चतुःश्रुति स्वर 'उदात्त' है, नीचता (पूर्ववर्ती स्वर की अपेक्षा कम-से-कम ऊँचाई) के कारण 'द्विश्रुति' स्वर 'अनुदात्त' है और (उदात्त और अनुदात्त का) मध्यवर्ती एवं समाहार (द्विश्रुति की अपेक्षा अधिक ऊँचाई और चतुःश्रुति की अपेक्षा कम ऊँचाई) के कारण त्रिश्रुति स्वर 'स्वरित' है"।

सामवेद में स्वरों का क्रम अवरोहात्मक होता है, अतः आज वागीश्वरी में (भीमपलासी में नहीं) में प्रयुक्त होने वाले मध्यम, गान्धार, ऋषभ और षड्ज क्रमशः उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और उदात्त हैं। इनके सामवेद-सम्बन्धी नाम प्रथम, द्वितीय तृतीय, चतुर्थ हैं, ये अवरोह की ओर क्रमशः चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक, द्विश्रुतिक और चतुःश्रुतिक हैं, इन मध्यम, गान्धार, ऋषभ और षड्ज के संवादी तारसप्तकीय षड्ज एवं मध्यसप्तकीय निषाद, धैवत और पंचम क्रमशः हैं, षड्ज ग्रामीय सप्तक को प्राप्त करने की यह सरलतम विधि है[8]।

---

८. इस सरल सी वात को लोगों ने व्यर्थ उलझा दिया है। वागीश्वरी गाते समय तानपूरे की बाईं ओर के तार पर मध्यम मिला रहता है। आरोह की ओर क्रमशः धैवत, निषाद और तार स्थानीय षड्ज के साथ निरन्तर गूंजने वाले मध्यम का सप्तश्रुतिक, नवश्रुतिक और त्रयोदश श्रुतिक सहज और प्राकृतिक सम्बन्ध है। वागीश्वरी के ऋषभ और मध्यम में षट्-श्रुति इष्ट सम्बन्ध है, अर्थात् वागीश्वरी का ऋषभ षड्ज के पश्चात् तीन श्रुति ऊँचा है और मन्द्र निषाद की अपेक्षा सातश्रुति। तानपूरे पर मध्यम गुञ्जित होने के कारण वागी-श्वरी में षड्ज ग्रामीय स्वर स्वतः लगते हैं। भीमपलासी में पंचम की प्रबलता के कारण तानपूरे पर पञ्चम भी स्थापित किया जाता है, अतः भीमपलासी के ऋषभ-धैवत एवं गान्धार और निषाद वागीश्वरी के इन स्वरों की अपेक्षा एक-एक प्रमाण श्रुति चढ़ जाते हैं।

(क) षड्ज-ग्रामीय षाड्जी जाति अन्य सभी जातियों एवं रागों की जननी है। इसमें षड्ज और धैवत की संगति अनिवार्य है, 'स ध़ नि़ प़' इसका प्रमुख संचार है। धैवत और निषाद की खोज तुम्वुरु ने की, जिस क्रम से खोज हुई, उसी क्रम से मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, मन्द्र धैवत, मन्द्र निषाद और मन्द्र पञ्चम को नारदीय शिक्षा में साम-वेदियों का क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, एवं सप्तम स्वर कहा गया। अतः इस क्रम में 'म, ग, रे, स, ध़, नि, प' देखकर चौंकना व्यर्थ है। 'गान्धर्व' में स्वरों की गणना आरोह की ओर होती है, अतः गान्धर्व में निषाद को सप्तम कहा गया है।

"म, ग, रे, स, ध़, नि, प' में 'नि ध प के स्थान पर ध निप' होना (ध्वनि और संगीत पृ० १४० के अनुसार) प्राचीन यूनानी पद्धति में भी पाया जाता है। मनुस्मृति, अध्याय १० श्लोक ४३, ४४ के अनुसार यवन (यूनानी) पहले तो क्षत्रिय थे, परन्तु

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साम-गान में तीन, चार, पाँच, छः या सात स्वरों का उपयोग होता है। तीन स्वरों से कम में साम-गान नहीं होता। अधिकांशतः साम-गान पाँच या छः स्वरों के प्रयोग से युक्त है। कुछ लोगों के अनुसार कौथुम शाखा के अन्तर्गत दो सामों का गान सप्तस्वर युक्त है।

स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी वर्णों ने साम-गान से गान्धर्व को पृथक् कर दिया। वीणा पर जब सातों स्वरों की स्थापना हो गई, तब यह दिखाई दिया कि पंचम का संवाद षड्ज के साथ रहने पर त्रिश्रुतिक ऋषभ के साथ पंचम का संवाद नहीं रहता और यदि पंचम को उतारकर ऋषभ का संवादी किया जाए, तो षड्ज-पंचम संवाद नष्ट हो जाता है। अतः षड्ज-पंचम-संवाद की स्थिति में सप्त-स्वरों का समूह षड्ज-ग्राम कहलाया और ऋषभ-पंचम संवाद की स्थिति में सप्त-स्वरों के समूह को मध्यम-ग्राम कहा गया। साम-गान अवरोहात्मक था और उसमें ग्राम-विभाग नहीं था।

एक युग वह आया, जिसमें मूर्च्छनाओं के असम्पूर्ण रूपों का नामकरण यज्ञों के नाम पर किया गया और यह माना गया कि जिस 'तान' (मूर्च्छना के असम्पूर्ण रूप) का नाम जिस यज्ञ के अनुसार रखा गया है, उस 'तान' में गान करने वाले को उसी यज्ञ का फल प्राप्त होगा।'

ब्राह्मणों के अदर्शन के कारण शूद्र हो गये, अतः यूनानी स्वरों में नारदीय शिक्षा, जैसा व्यक्तिक्रम पाना जाना यूनान पर भारतीय प्रभाव का द्योतक है।

शिक्षा-ग्रन्थों में निम्नलिखित प्रक्षिप्त पंक्तियाँ लोगों को चक्कर में डालती हैं :—

उदात्ते निषाद गान्धारौवनुदात्त ऋषभ धैवतौ।
स्वरित प्रभवा ह्येते षड्ज मध्यम पञ्चमाः॥

श्लोक के प्रत्येक चरण में आठ-आठ अक्षर होते हैं, जबकि इसके पहले चरण में नौ और दूसरे चरण में दस अक्षर हैं। पहले चरण में निषाद-गान्धार अवरोही क्रम से हैं और दूसरे चरण में 'ऋषभ-धैवत' आरोही क्रम में हैं, चौथे चरण में षड्ज-मध्यम-पञ्चम आरोही क्रम में हैं, अतः इस पाठ में क्रम-भङ्ग दोष है। श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरण में छठे अक्षर 'लघु' हैं जबकि छन्द शास्त्र के अनुसार इन्हें 'गुरु' होना चाहिए, अतः यह श्लोक (!) किसी ऋषि या आचार्य की रचना नहीं है। ये पंक्तियाँ सर्वथा निरर्थक भी हैं इनका कोई संगत अर्थ भी नहीं है।

यदि यह प्रलाप मूलतः शिक्षा-ग्रन्थों में होता, तो आचार्य अभिनवगुप्त का ध्यान इस ओर अवश्य जाता। उनके युग तक शिक्षा ग्रन्थ दूषित नहीं हुए थे।

नौ तंत्रियों पर षड्ज-ग्रामीय स्वरों की स्थापना के लिए 'भरत का संगीत-सिद्धान्त, पृ० १२ और सितार पर षड्ज ग्रामीय स्वरों की स्थापना के लिए पृ० १५ देखिए। आश्चर्य की बात है कि स्व० डॉ० परांजये के ग्रन्थ 'भारतीय संगीत का इतिहास' में साम-वेदीय अथवा षड्जग्रामीय स्वरों की स्थापना के लिए कोई उपाय नहीं बताया गया।

६. षड्ज ग्राम की षड्जहीन सात तानों के नाम अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय, षोडशी, पुण्डरीक, अश्वमेध और राजसूय, ऋषभहीन सात तानों के नाम स्विष्टकृत्, बहुसौवर्ण, गोसव, महाव्रत, विश्वजित्, ब्रह्मयज्ञ और प्राजापत्य, पञ्चमहीन सात तानों के नाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋचाओं का गेय रूप ही 'साम' है। 'सा' का अर्थ ऋचा और 'अम' का अर्थं स्वर-समूह है, अतः 'सा+अम =साम' को 'साम' कहा जाता है। वेदवाणीयुक्त स्वर-समूह ही 'साम' है। 'साम' तीन ऋचाओं का सम्मिलित गेय रूप है, क्योंकि वैदिक साम के अंगों (प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन) के विस्तार के लिए कम-से-कम तीन ऋचाएँ आवश्यक हैं।[10] इन अंगों में 'हिंकार' और 'ओंकार' जोड़ देने पर इनकी संख्या सात हो जाती है।

यदि साम-गान को कोई व्यक्ति माना जाए, तो वाणी-भाग उसकी अस्थि और स्वर-भाग उस पर चढ़ा हुआ मास है।[11]

अश्वक्रान्त, रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त, सूर्यक्रान्त, गजक्रान्त, बलभित् और नागपक्ष तथा निषादहीन तानों के नाम चातुर्मास्य, संस्था, शस्त्र, उक्थ, चतुर्थ, सौत्रामणी और चित्रा हैं।

षड्ज ग्रामीय षड्ज-पंचम हीन तानों के नाम इडा, पुरुषमेध, श्येन, वज्र, इषु, अङ्गिरा, कंङ्क, निषाद-गान्धार हीन तानों के नाम ज्योतिष्टोम, दर्श, नान्दी, पौर्णमास, अश्वप्रति ग्रह, रात्रि और सौभर तथा ऋषभ-पंचमहीन तानों के नाम सौभाग्यकृत्, कारीरी, शान्तिकृत्, पुष्टिकृत्, वैनतेय, उच्चाटन और वशीकरण हैं। 'मध्यमग्रामीय षड्जहीन तानों के नाम सावित्री, अर्धसावित्री, सर्वतोभद्र, आदित्यानामयन, गवामयन सर्पाणामयन और कौणपायन, ऋषभहीन तानों के नाम अग्निचित्, द्वादशाह, उपांशु, सोम, अश्वप्रतिग्रह, बर्हि और अभ्युदय हैं तथा गान्धारहीन तानों के नाम सर्वस्वदक्षिण दीक्षा, सोम, समित्, स्वाहाकार, तनूनपात् और गोदोहन हैं।

मध्यमग्रामीय ऋषभ-धैवत-हीन तानों के नाम त्रैलोक्यमोहन, वीर, कन्दर्प-बलुशातन शंख चूड, गजच्छाय, रौद्र एवं विष्णु-विक्रम तथा निषाद गान्धार हीन तानों के नाम भैरव, कामद, अवष्टय, अष्टकपाल, स्विष्टकृत्, वषट्कार और मोक्षद हैं।

शारंगदेव ने 'गान्धर्व में इन तानों को वेद प्रेरित कहा है। क्योंकि सामवेदीय स्वर सप्तक ही मध्यमग्रामीय स्वर-सप्तक का मूल और इस प्रकार इन समस्त तानों का बीज है। रत्नाकार के ग्राम-मूर्च्छना-तान-प्रकरण से तानों के ये उपर्युक्त नाम लिये गये हैं। तानों का क्रमिक रूप जानने के लिए देखिये 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' ले० वृहस्पति, पृ० ४३-४८, 'संगीतरांज, सं० डॉ० प्रेमलता, पृ० १३२-१३८।

१०. सैव नाम ऋगासीत् अमो साम नाम, सा वाक् सामोपावदत् मिथुनं सम्भवाव प्रजाज्या इति, नेत्यब्रवीत् साम ज्यायान् वा अतो मम महिमेति, ते द्वे भूत्वे उपावदताम् ते प्रति च स न समवदत्, तास्तिस्त्रो भूत्वोपावदंस्तत् तिस्टभिः समभवत्, तस्मात् तिष्टभिः स्तुवन्तिः तिस्टमि रुद्गायन्ति, तिस्टभिर्हि साम संभितम्'''यद्वैतत् सा च अमश्च समभवताम्, तत्साम्नः सामत्वम्' (ऐतरेय ब्राह्मण, १२-१२)

अर्थात्—'सा' नाम ऋचा थी और 'अम' नाम साम। वह वाणी (ऋचा) साम से बोली कि हम दोनों प्रजनन के लिए परस्पर विवाह कर लें। साम ने कहा कि मैं बड़ा और विशाल हूं (तू छोटी है) इसीलिए मेरी महिमा है। 'तब' दो ऋचाओं ने सम्मिलित रूप में आकर अपनी प्रार्थना दुहराई, परन्तु उसने उन दोनों से बात भी न की, तब वे तीन आईं, तब 'अम' ने उन्हें अपने अङ्क में आश्रय दिया। अतः तीन ऋचाओं के द्वारा स्तुति करते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साम के पूर्वोक्त अंगों को 'भक्ति' (भाग) कहा जाता है। कुछ सामों में प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन नामक पाँच भक्तियाँ हैं और कुछ सामों में 'हिंकार' और 'ओंकार' भी। पाँच भक्तियों वाले साम पंचविध और सात भक्तियों वाले साम सप्तविध कहलाते हैं। इन भक्तियों और अंगों को समझ लिया जाए।

यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण सोलह होते हैं, इनमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा कहे जाने वाले ऋत्विक् प्रमुख हैं। 'प्रस्तोता' कहा जाने वाला ऋत्विक् 'प्रस्ताव' नामक अंग का, 'उद्गाता' नामक ऋत्विक् 'उद्गीथ' का, 'प्रतिहर्ता' नामक ऋत्विक् प्रतिहार नामक अंग का गान करता है।

'उपद्रव' का गान एक विशिष्ट क्रम से 'उद्गाता' करता है और 'निधन' के गान में प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और उद्गाता सम्मिलित हैं।

'प्रस्ताव का अर्थ 'प्रारम्भ' है। जिस अंग से सामगान का आरम्भ किया जाए वह 'प्रस्ताव' है। 'हिंकार' या 'हुँकार' की ध्वनि से इसका आरम्भ होता है। विभिन्न सामों में 'प्रस्ताव' के अन्तर्गत गाये जाने वाले अक्षरों की संख्या विभिन्न हो सकती है।

'उद्गीथ' का अर्थ गान का उठाया हुआ भाग है, स्पष्ट है कि 'प्रस्ताव' इसके लिए भूमिका बना देता या आधार प्रस्तुत कर देता है। जैसा कि कहा जा चुका है, इसे 'उद्गाता' गाता है। उद्गीथ का आरम्भ ओंकार से किया जाता है।

'प्रतिहार' का अर्थ दो भागों को जोड़ने वाला अंग है। प्रतिहार का गान

तीन ऋचाओं से उद्गान करते हैं, तीन ऋचाओं से युक्त ही साम है'''अथवा 'सा' और 'अम' एकाकार हो गये, अत: साम की संज्ञा 'साम' है।

वैदिक ऋक्, वैदिक गाथा और वैदिक साम के ढांचे पर लौकिक भाषा में प्रणीत गीत लौकिक ऋक्, लौकिक गाथा और लौकिक साम कहलाये। वैदिक साम के प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन नामक अङ्ग लौकिक साम में क्रमश: उद्ग्राह, अनुद्ग्राह, सम्बन्ध, ध्रुवक एवं आभोग कहलाते हैं, लौकिक प्रबन्धों के उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग नामक धातुओं का बीज वैदिक और लौकिक साम के पूर्वोक्त अङ्कों में ही है।

लौकिक ऋक्, लौकिक गाथा और लौकिक साम का उपयोग शिवस्तुति में ब्रह्मप्रोक्त कहा जाता है। अन्य देवताओं की स्तुति में इस प्रकार का उपयोग उचित है।

देवता विशेष की प्रशंसा से युक्त ऋचाएं गाथा कहलाती थीं। जब कुछ लोग 'गान' को आजीविका बना कर 'नरों' (आश्रयदाताओं अथवा धनदाताओं) का 'आशंसन (प्रशंसा, स्तुति, खुशामद) करने के लिए लौकिक भाषा में गाथाएं, गढ़ने और उनके गेय रूप का प्रयोग करने लगे, तब ऐसे लोगों को निन्दनीय माना गया और ऐसी गाथाओं को 'नाराशंसी' कहा गया। इनके द्वारा दिया दान लेना निषिद्ध घोषित किया गया। ये नाराशंसी गाथाएं वेद का 'मल' (मैल या विष्ठा) कहलाई। ऐसी गाथाएं गाने वालों को बन्दीजनों, चारणों, भाटों और संगीतजीवियों का पूर्वज कहा जा सकता है।

११, 'तस्य ह वा एतस्य साम्न ऋगेवास्थीनि स्वरो मांसानि''''''

सामविधान-ब्राह्मण, १-१-४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना प्रतिहर्ता का कार्य है। कभी प्रतिहार में दो भाग भी दिखाई देते हैं।

'उपद्रव' का गान उद्‌गाता करता है, इसमें प्रतिहर्ता द्वारा गाये हुए मुख्य प्रतिहार को ही उद्‌गाता दुहराता है।

प्रतिहार के अवशिष्ट अंश के पश्चात् ओंकार जोड़कर जब प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहर्ता साथ-साथ गाकर सामगान का समापन करते हैं, तब यही भाग 'निधन' कहलाता है। निधन का अर्थ 'अन्त' या 'समाप्ति' है। हीजु, उर्ज, ऊ इत्यादि अक्षर-समूह साम के अन्त या मध्य में आते हैं।

'उपगाता' नामक ऋत्विक् निरन्तर आधार स्वर का उपगान करते रहते हैं, जिससे गान में निरन्तरता बनी रहती है और प्रस्तोता, उद्‌गाता और प्रतिहर्ता सुरीलेपन के साथ गाते रहते हैं।

गाने के लिए मूलभूत ऋचाओं के अक्षरों में कुछ विकार किए जाते हैं, वे हैं, विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम और स्तोभ।

ऋक् में आये हुए शब्द 'अग्न' को गाते समय 'ओग्नायि' कहना विकार है।

'वीतये' को 'वोइ तो या रयि' कहना 'विश्लेषण' है, इसमें 'वी' के 'व' को पृथक् और 'इ' को पृथक करके 'वोइ' और 'ये' के 'य' और 'इ' को अलग करके 'या र यि' कहागया है।

ह्रस्व को दीर्घ या दीर्घ को प्लुत बोलना 'विकर्षण' (विशेषतया खींचना) है। 'ये' के स्थान पर 'या २ ३ यि' प्रयोग 'विकर्षण' है।

किसी पद को दुहराना अभ्यास है, जैसे 'तोयायि तोयायि'।

किसी पद के बीच में विराम करना 'विराम' है 'गृणानो हृत्यदातये' स्थान पर 'गृणानोह त्यदातये' गाना 'विराम' है।

स्तोभ वे वर्ण, पद या वाक्य हैं, जो मूल ऋचा में नहीं होते, अपितु पादपूर्ति के लिए साम में सम्मिलित किए जाते हैं। 'हाउ', 'औहोवा' जैसे पद 'स्तोभ' हैं।

भरतोक्त प्रकरण-गीतों में स्तोभ का प्रयोग उन पर सामवेद का ही प्रभाव है।

पारम्परिक रूप में सामगान करने वाले ऋत्विजों का एक स्वतंत्र वर्ग बन गया, वे लोग 'सामग' कहलाते थे। गेय ऋचाओं का संकलित रूप सामवेद कहलाया।

सामवेद के दो प्रधान भाग 'आर्चिक' और 'गान' हैं। 'आर्चिक' में गेय ऋचाओं का संग्रह है और 'गान' में उन ऋचाओं के गेय रूप हैं। आर्चिक के दो रूप 'पूर्वार्चिक' और 'उत्तरार्चिक' हैं। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक या अध्याय हैं। इनमें से पाँच में अग्नि, इन्द्र इत्यादि देवताओं की स्तुतियाँ हैं। पाँच अध्यायों में संगृहीत ऋचाएँ 'ग्रामगान' और षष्ठ अध्याय में संकलित ऋचाएँ 'आरण्य गान' हैं। 'उत्तरार्चिक' मे नौ प्रपाठक हैं, जिनमें १२२५ मंत्र हैं, वे तीन-तीन ऋचाओं पर आश्रित 'प्रगाथों' का संग्रह है। इन 'प्रगाथों' में विद्यमान प्रथम ऋचाओं की प्राप्ति पूर्वार्चिक में भी होती है, 'प्रगाथ' की अन्य ऋचाओं का गान भी प्रथम ऋचा की शैली के अनुसार होता है।

सामवेद के गान-ग्रन्थ चतुर्विध हैं, जिनमें से 'ग्रामगेयगान' और 'आरण्यगान' योनिगान अर्थात् आधारभूत गान कहलाते हैं तथा 'ऊहगान' और 'ऊह्यगान' को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विकृति-गान कहा जाता है। 'आरण्यगान' के पश्चात् 'ग्रामगेयगान' की शिक्षा दी जाती थी, अतः ग्रामगेयगान को वेयगान भी कहा जाता था। 'ग्रामगान' में पूर्वार्चिक के प्रथम पाँच अध्याय हैं और आरण्यगान में पूर्वार्चिक का अन्तिम अर्थात् छठा अध्याय आता है।

ग्रामगेय गान पर आश्रित गान कुछ परिवर्तित रूप में 'ऊहगान' कहलाते हैं। इसी प्रकार कुछ परिवर्तित रूप में आरण्यगान ऊह्यगान कहलाते हैं।[12]

---

१२. ऋग्वेद का गेय रूप ही सामवेद है। कुछ ग्रन्थों के अनुसार सामवेद की बारह शाखाएं हैं। अथर्ववेद के परिशिष्ट चरण-व्यूह के अनुसार सामवेद की सहस्र शाखाएं हैं, जिनमें राणायनीय, सात्यमुग्र, कालाप और महाकालाप, कौथुम और लांगलिक अवशिष्ट रह गई थीं, उनमें से भी आजकल केवल कौथुमीय, राणायनीय और जैमिनीय बच रही हैं।

राणायन, सात्यमुग्र, व्यास, भागुरि, ओतुण्डि, गोल्मुलवि, भानुमान, औपमन्यव, काराटि, मशक, गार्ग्य, वार्षगण्य, कौथुमि, शालिहोत्रं और जैमिनि इन तेरह सामग आचार्यों के साथ शटि, भाल्लवि, कात्यवि, ताण्डव, वृषाण, शमवाहु, रुरुकि, अगस्त्य, वष्कशिरा तथा हूहू के तर्पण का विधान भी गोमिलगृह्य कर्मप्रकाशिका में है। चरण-व्यूह के अनुसार कौथुमीय शाखा के सात और राणायनीय शाखा के नौ भेद हैं। ब्राह्मण के अनुसार सामगों की परम्परा में क्रमशः प्रजापति, बृहस्पति, नारद, व्यास, जैमिनि, ताण्डि तथा शाट्यायनि हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रप्रस्थ-मत और उसका जन्म

श्रीमन्महामङ्गलमूर्तये नमः।

भारतीय दृष्टि सङ्गीत को मोक्ष का साधन मानती है। शैव परम्परा के अनुसार ज्ञान के देवता शंकर हैं। उनके ही अनुग्रह से व्यक्ति को अच्छा कण्ठ मिलता है।

मुस्लिम आक्रान्ताओं ने भगवान् सोमनाथ तक के मन्दिर को नष्ट किया, जो संगीत का भी एक बड़ा केन्द्र था। उन लोगों के व्यवहार से दुःखी होकर भारतीय विद्वान् मुसलमानों से भारतीय विद्याओं के रहस्य छिपाने लगे।

कुरआन के अनुसार यद्यपि संगीत त्याज्य है, तथापि सूफ़ी मुसलमान भक्ति-परक संगीत को ग्राह्य मानते थे और ईश्वरीय प्रेम से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ गाते-बजाते थे। मुस्लिम देशों में भी इन लोगों के संगीत प्रेम पर शासन की ओर से कोई प्रतिबन्ध न था।

मुहम्मद गोरी की सेनाओं के साथ चिश्तिया परम्परा के प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती भारत आये और अजमेर में बस गये। शैख मुईनुद्दीन चिश्ती के आश्रय में अनेक क़व्वाल गायक रहते थे, जो भारतीय भाषा में सूफ़ी भावनाओं से युक्त गीत गाते और भारतीय जनता को आकृष्ट करते थे।

मुसलमान संगीत को गणित की एक शाखा मानते हैं, उनका अपना एक अलग संगीतशास्त्र है। मुसलमानों के इस शास्त्र ने भारतीय संगीत को इतना अधिक प्रभावित किया कि मुस्लिम प्रभावित भारतीय दृष्टि कालान्तर में वैदिक परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न हो गई।

इतिहास का संक्षेप यों है।

अमीर ख़ुसरो की माँ हिन्दू थीं। पिता लाचीन प्रदेश के तुर्क थे। अमीर ख़ुसरो का जन्म ज़िला एटा के पटियाली गाँव में हुआ था। अमीर ख़ुसरो की मातृ-भाषा ब्रजभाषा थी। भारतीय रीति-नीति से प्रगाढ परिचय, भारतीय कलाओं से प्रेम, ब्राह्मणों से निकट सम्पर्क इत्यादि विशेषताएँ ख़ुसरो को मातृ-पक्ष से मिलीं। इस्लाम धर्म्म, अरबी, फ़ारसी, तुर्की का ज्ञान, मुस्लिम आचार-विचार इत्यादि विशेषताएँ ख़ुसरो के लिए पिता के पक्ष की देन थीं। सूफ़ियों के समन्वयवाद के क़ारण वे शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती के परम कृपापात्र रहे। विद्वान्, प्रतिभाशाली और मनस्वी कवि होने के कारण उन्हें मुस्लिम सुलतानों का आश्रय भली-भाँति मिला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय और ईरानी कलाकारों की गोष्ठियाँ उन्होंने आयोजित कीं। उनमें विचार-विनिमय किया और कराया। फलतः मुस्लिम संगीत-सिद्धान्तों को भारतीय जामा पहनाया गया और 'इन्द्रप्रस्थ मत' के नाम से एक नवीन सम्प्रदाय का सूत्र-पात हुआ। इन्द्रप्रस्थ-मत को राज्याश्रय भी मिला और सूफी कलाकारों के द्वारा इसका प्रचार जनता में भी हुआ।

मुस्लिम गुणी मन्द्र, मध्य और तार स्थानों में बारह-बारह स्वतन्त्र ध्वनियाँ मानते थे, इनमें कोई ध्वनि किसी अन्य ध्वनि का विकार नहीं मानी जाती थी। एक स्थान में बारह ध्वनियों या स्वरों की सत्ता मानना भारतीयों के लिए एक नई बात थी, क्योंकि वे तो प्रत्येक स्थान में सात-सात स्वर ही मानते थे। समझौता यों हुआ कि षड्ज और पंचम को अचल मानकर अवशिष्ट पाँच स्वरों के दो-दो भेद मान लिए जाएँ।

स्थिति यों है—

विदेशी स्वर-नाम	इन्द्रप्रस्थमत के स्वर नाम
१. रास्त	खरज
२. शाहनवाज़	उतरी रिखब
३. दोका	चढ़ी रिखब
४. कुर्द	उतरी गंधार
५. सीका	चढ़ी गंधार
६. गिरका	उतरी मद्धम
७. हिजाज़	चढ़ी मद्धम
८. नवा	पंचम
९. हिसार	उतरी धैवत
१०. हुसेनी	चढ़ी धैवत
११. अगन्	उतरी निखाद
१२. नीम माहुर	चढ़ी निखाद

आज 'ठाठ' या 'मेल' शब्द से हम जो अर्थ ग्रहण करते हैं, ईरानी लोगों के पास उसके लिए 'मुक़ाम' शब्द था। 'मेल' या 'ठाठ', इस 'मुक़ाम' के ही पर्याय शब्द हैं। मुक़ाम, मेल, या ठाठ में 'स' से 'सं' तक आठ स्वर होते हैं। मुक़ाम, मेल या ठाठ 'ऑक्टेव' या अष्टक' है 'सप्तक' नहीं।

'स-म' और 'प-सं', क्रमशः अष्टक के 'पूर्वार्द्ध' और 'पश्चार्द्ध' के द्योतक हैं। 'पूर्वार्द्ध' ईरानियों के 'पस्ती' (निम्न भाग) शब्द के लिए है और 'उत्तरार्द्ध' ईरानियों के 'बलन्दी' (उच्चभाग) शब्द का द्योतक है।

इन्द्रप्रस्थ के प्रभाव से भारत में सप्तक का स्थान अष्टक ने ले लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिणाम यह हुआ कि भावी पीढ़ियों के लिए वे ग्रन्थ दुर्बोध हो गये, जो इन्द्रप्रस्थ-मत के जन्म से पूर्व भारत में लिखे गये थे।[1]

जिन रागों में पंचम हो, उनमें तानपूरे की बाईं ओर 'पंचम' में मिलाना इन्द्रप्रस्थ मत का ही प्रभाव है। 'स' पूर्वार्द्ध का आदिम स्वर है और 'प' पश्चार्द्ध का प्रथम स्वर है। अष्टक-सिद्धान्त में ये दोनों स्वर अचल माने जाने के कारण तानपूरे पर विराजमान रहते हैं। जिन रागों में पंचम का प्रयोग अत्यन्त अल्प है, उनके व्यवहार के समय भी तानपूरे के माध्यम से पंचम का ध्वनित होते रहना इन्द्रप्रस्थ-मत का ही प्रसाद है।

इन्द्रप्रस्थ-मत के गुणी स्वरों की चढ़ी हुई अवस्था को उनकी मूल अवस्था मानते थे, इसीलिए 'ऐमन' उनका पहला ठाठ था, क्योंकि इसमें स, प अचल और अन्य सभी स्वर चढे हैं।

'ऐमन' एक विशुद्ध अरबी शब्द है, जिसका अर्थ 'कल्याणयुक्त' अथवा 'कल्याणकारक' होता है। 'ऐमन ठाठ' का नाम 'कल्याण' अथवा 'कल्याणी', शताब्दियों के पश्चात् रखा गया है, जो 'ऐमन' शब्द का अनुवाद मात्र है।

मुस्लिम गुणी सायंकाल के पश्चात् अपने गान का मंगलाचरण 'ऐमन' की मंगलमयता के कारण ऐमन राग से ही करते हैं। भातखण्डे जी ने इसी परम्परा से प्रभावित होकर 'प्रथम कल्याण ठाठ...' लक्षण-गीत की रचना की और अपनी पुस्तक में ऐमन का विवेचन ही सर्वप्रथम किया है।

इन्द्रप्रस्थमत के गुणी अपने व्यवहार के लिए वर्तमान दस ठाठों को ही स्थूल आधार मानते थे। भातखण्डे जी के मुस्लिम गुरु ने कण्ठ की तैयारी का आधार प्रचलित दस ठाठों को ही बताया था।[2]

मुस्लिम गुणियों के अनुसार ऐमन का मध्यम उतारने पर बिलावल, बिलावल का निषाद उतारने पर खमाज, खमाज का गान्धार उतारने पर काफ़ी, काफी का धैवत उतारने पर आसावरी और आसावरी का ऋषभ उतारने पर भैरवी ठाठ की स्थापना होती है। इस प्रकार ऐमन, बिलावल, खमाज, काफी, आसावरी और भैरवी ठाठ में एक क्रम है, जिसका आरम्भ ऐमन है और समाप्ति भैरवी पर है।

यह एक शृंखला हुई।

दूसरी शृंखला यों है—

ऐमन का ऋषभ उतारने पर मारवा, मारवे की धैवत उतारने पर पूर्वी, पूर्वी का गान्धार उतारने पर तोड़ी और पूर्वी का मध्यम उतारने पर भैरव ठाठ उत्पन्न होगा। इस शृंखला का प्रथम ठाठ ऐमन और अन्तिम ठाठ भैरव है।[3]

यह दृष्टि दसों ठाठों का मूल 'ऐमन' को ही सिद्ध करती है।

जिन रागों में किसी एक ठाठ के ही स्वरों का प्रयोग होता था, उनका

---

१. विशिष्ट अध्ययन के लिए पढ़िये, संगीत-चिन्तामणि प्रथम खंड, पृ० २४, पृ० १८२-२२०, पृ० ४१०-४५७, पृ० ३६७-३८७

२. भातखण्डे-संगीत-शास्त्र, द्वितीय भाग, पृ० ३४७

३. विशेष अध्ययन के लिए पढ़िये 'संगीत चिन्तामणि' प्रथम खंड, पृ० ३६७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्बन्ध ठाठ-विशेष के साथ निश्चित करना सरल था, परन्तु संकीर्ण रागों में, जहाँ एक अथवा कई स्वरों के दोनों (चढ़े और उतरे) रूपों का उपयोग होता था, किसी ठाठ-विशेष के लिए आग्रह न था, क्योंकि इनमें विभिन्न ठाठों से सम्बद्ध विभिन्न रागों का संकर सम्भव था।

वास्तव में 'ठाठ' का अधिक उपयोग वीणा, सितार अथवा सारंगी जैसे वाद्यों के लिए है, जिनमें पर्दों या तरबों को मिलाना पड़ता है। कण्ठ से तो, अशिक्षित बच्चे, जवान और बूढ़े भी, अनजाने ही किसी न किसी ठाठ का उपयोग करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दरबार और संगीत

राजतंत्र में समाज की सर्वांगोण उन्नति का दायित्व राजा पर था। कलाओं का परिपोषण और संवर्द्धन भी वही करते थे। अनेक प्रौढ़ संगीत-ग्रन्थों के रचयिता प्रसिद्ध नरेश हुए हैं। वे स्वयं भी संगीत के मर्मज्ञ होते थे और गुणियों के पोषक भी। संगीत-क्षेत्र में नवोन चिन्तन के भी वे पक्षपाती थे।

संगीत-रत्नाकर के तेलुगु टीकाकार विट्ठल के पिता ने गयासुद्दीन खिलजी के दरवार की 'समिति' के सम्मुख बाईस श्रुतियों की सिद्धि करके एक सहस्त्र स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त की थीं। हुमायुँ के दरवार में गुणीजनों को संज्ञा 'अहले मुराद' थी।

संगीतज्ञों का वह वर्ग 'हुजूरी' कहलाता था, जो विचारक और रचना-निपुण होता था। अपनी गुणसम्बन्धी श्रेष्ठता, विचारशीलता और रचनाकुशलता के कारण यह वर्ग वादशाह के पास प्रतिदिन 'हाजिर' रहता था। अकबरी दरबार के तानसेन और रामदास जैसे कलाकार इसी वर्ग में आते थे। मलारों और कानड़ों के नये-नये प्रकारों की सृष्टि इस वर्ग ने की। पुराने और प्रचलित रागों में नई-नई वन्दिशें भी यह वर्ग करता था। इनकी रचनाओं पर विचार-विमर्श भी आपस में होता था और परिणाम-स्वरूप किसी नवीन राग या बंदिश का प्रामाणिक टकसाली या मुहरबन्द रूप निश्चित होता था।

'हुजुरी' वर्ग के कलाकार इन टकसाली बन्दिशों की शिक्षा कलाकारों के उस वर्ग को देते थे, जो 'दरबारी' कहलाता था। ये लोग 'दरवारे आम' में उपस्थित होते थे। 'हुजुरियों' की अपेक्षा यह वर्ग नीचा था।

हुजुरी वर्ग के लोग कभी-कभी दरबार की मुंहलगी गायिकाओं को टकसाली बन्दिशों की शिक्षा देते थे, वैसे गणिकाओं को प्रामाणिक बन्दिशें सिखाना 'दरबारी' वर्ग का कार्य था।

वे गवैये 'शहरी' कहलाते थे, जो राजाश्रित नहीं थे। ये लोग 'दरबारी' वर्ग से टकसालो बन्दिशों की शिक्षा लेते थे और अपनी शिष्य गायिकाओं को सिखाते थे। सच पूछा जाए, तो वह टकसाली बन्दिशें ही 'शहरी' कलाकारों और गणिकाओं की निधि थीं। किसी भी गायिका के रूप और गुण की चर्चा दरबार तक पहुँच सकती थी, जिसके साथ 'शहरी' गायकों के भाग्य खुल सकते थे। दरबार में नियुक्ति उसी गायिका या 'शहरी' गायक की हो सकती थी, जो टकसाली बन्दिशों का भण्डार हो।

बादशाहों के गर्वनरों के दरबार में भी उन्ही कलाकरों की कद्र होती थी, जिन्हें टकसाली बन्दिशें याद हों, अतः 'हुजूरी' वर्ग के द्वारा निर्मित बन्दिशों का प्रचार सारे देश में हो जाता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन मुहरबन्द या टकसाली बन्दिशों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन 'पाप' था। कारण यह था कि 'शहरी' प्रकार के गवैयों से या अन्य गायिकाओं से यह आशा नहीं कीं जाती थी कि वे राग के नियमों से भी परिचित हों, अतः राग की शुद्धि के लिए बन्दिश के रूप को अपरिवर्तित रखना और उसी के आधार पर गाना उनका धर्म था।

'सदारंग' के युग तक यह व्यवस्था बनी हुई थी। सदारंग काव्य और संगीत में प्रसिद्ध महाकवि आचार्य देव के शिष्य थे और अपने युग के सभी प्रसिद्ध गुणियों की संगति से इन्होंने लाभ उठाया था। साहित्य और संगीत की दृष्टि से इनकी रचनाएँ श्रेष्ठ थीं। इनकी टकसाली और मुहरबन्द रचनाएँ समस्त देश में प्रसिद्ध हुईं। ये अनुपम वीणावादक, श्रेष्ठ ध्रुवपद गायक और ध्रुवपदकार एवं सहस्रों खयालों के प्रणेता थे। सदारंग का प्रमुख शिष्य कासिम अली था और शिष्याएँ पन्नाबाई एवं कमालबाई।

सदारंग के युग तक गायकों के दो वर्ग थे, 'कलावन्त' और 'क़व्वाल'। क़व्वाल वर्ग पुराना खयाल गायक था, यह तान, पलटे, ज़मज़मे और तहरीर को खयाल-गायकी की जान समझता था। मियाँ शोरी के पितामह ताजख़ाँ क़व्वाल 'सदारंग' के प्रमुख प्रतिस्पर्धी थे। कलावन्त वर्ग प्रभाव का क़ायल था। कव्वालों ने 'सदारंग' के खयालों को 'खयाल' ही न माना और उन्हें 'मुंडा' या 'लँगड़ा' ध्रुवपद कहा। यह सब कुछ होने पर भी 'सदारंग' के खयाल प्रसिद्ध हुए और खूब हुए। उनमें राग-शुद्धि और प्रभाव के प्रति आग्रह था। अवध के दरबार और रामपुर-दरबार में सदारंग की सन्तानें ही बादशाहों या नवाबों के 'गुरु' पद पर प्रतिष्ठित हुईं।

'सदारंग' के खयाल सीधी पट्ली के खयाल कहलाये।

कलावन्तों और कव्वाल बच्चों का झगड़ा आज तक चला आ रहा है, कुछ रागों का 'कलावन्ती' रूप उनके कव्वाली रूप से पृथक है। तान और फिरत की सुविधा के लिए कव्वाल बच्चों ने एक ओर तो रागों के स्वरों में परिवर्तन कर लिया और दूसरी ओर कुछ ऐसी तानों को जायज़ मान लिया जिनमें रागाभास तो रहता है, 'राग' नहीं रहता। इसीलिए मुहम्मद करम इमाम ने राग शुद्धि की दृष्टि से बड़े मुहम्मद खाँ की अपेक्षा उनके भाई अहमद खाँ को श्रेष्ठ बताया है।

अस्तु, वाजिदअली शाह के युग तक ध्रुवपद, खयाल, और राग इन तीनों की काफ़ी दुर्दशा हो चुकी थी। वाजिदअलीशाह के पतन के पश्चात् 'सदारंग' की सन्तानों ने रामपुर-दरबार में आश्रय लिया। सुरसिंगारवादक उस्ताद बहादुर हुसेन खाँ १८५७ ई० में रामपुर आये और नवाब यूसुफअली खाँ (राज्य काल, १८५५-१८६४ ई०) के आश्रय में रहे। नवाब कल्बेअली खाँ (राज्यकाल १८६४-१८८७ ई०) ने भी इनका अत्यन्त सम्मान किया। बहादुर हुसेन खाँ के साथ बीनकार और ध्रुवपदगायक अमीरखाँ और उनके भाई रईस खाँ भी रामपुर आये। कल्बेअली खाँ के राज्यकाल में ही बहादुर हुसेन खाँ जनवरी १८७९ ई० में स्वर्गवासो हुए और अगस्त १८८० ई० में अमीर खाँ की मृत्यु हुई।

बहादुर हुसेन खाँ और अमीर खाँ ने अपनी समस्त विद्या नवाब हैदरअली खाँ को दे दी थी, जो नवाब कल्बे अली खाँ के छोटे भाई थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैदरअली खाँ ने ही अमीर खाँ के पुत्र वज़ीर खाँ का पालन-पोषण किया और उन्हें वह सब कुछ सिखा दिया, जो उन्होंने वज़ीर खाँ के पिता अमीर खाँ से सीखा था।

अपने पुत्र सआदत अली खाँ (छम्मन साहब) को नवाब हैदरअली खाँ ने वह तो सिखाया ही, जो अमीर खाँ से सीखा था। साथ ही साथ वह सब कुछ भी सिखाया जो बहादुर हुसेन खाँ से सीखा था, इसीलिए छम्मन साहब को विभिन्न रागों के सत्रह सौ होरी-ध्रुवपद याद थे। साथ ही साथ अनुपम सुरसिंगार-वादक होने के कारण छम्मन साहब राग-तत्व को भी भली-भाँति समझते थे। वे सुशिक्षित और अनेक भाषाओं के पण्डित थे और नवाब हामिद अली खाँ (मृत्यु १९३० ई०) के युग में रियासत के होम मेम्बर थे।

१९१५ ई० में भातखण्डे जी को नवाब छम्मन साहब का सत्संग प्राप्त हुआ। छम्मन साहब ने उन्हें अनेक बन्दिशें सिखाईं और उन्हें रागों के रहस्यों का ज्ञान कराया। इस समय से पूर्व भातखण्डेजी को प्रायः ऐसे कलाकारों का सान्निध्य मिला, जो राग धर्म अथवा नियम से परिचित नहीं थे, जो केवल गाते थे। ऐसे कलाकारों स कभी-कभी राग-सम्बन्धी भूलें भी होती थीं, इन भूलों को वे कलाकार अपने घराने की विशेषता कह कर छुट्टी पा लेते थ।

यह कहना तो अधिक समीचीन नहीं होगा कि सदारंग से लेकर छम्मन साहब के युग तक बन्दिशों का साहित्य-पक्ष सर्वथा सुरक्षित था, या भ्रष्ट नहीं हुआ था, परन्तु यह ठीक है कि रागरूप सुरक्षित था। प्रायः दो सौ वर्षों के अन्तराल में परम्परा की इतनो सुरक्षा भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी।

स्व० अलाउद्दीन खाँ को सैकड़ों होरी-ध्रुवपद याद थे। रचनाओं का यह भण्डार उनके वादन पर अंकुश रखता था। एक व्यवस्था बनी हुई थी।

आज का युग

स्व० भातखण्डेजी क्रमिक-पुस्तक-मालिका के छः भागों में अपनी निधि का संग्रह कर गए और हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चार भागों में अपने विचारों का। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भातखण्डेजी द्वारा प्रस्तुत साहित्य एक बहुमूल्य विचारणीय सामग्री है और समस्त संगीत-जगत इस सम्बन्ध में स्व० भातखण्डेजी का ऋणी है।

अलाउद्दीन खाँ ने रामपुर से बन्दिशों का संग्रह भी किया, परन्तु उन्होंने वजीर खाँ के वीणावादन और छम्मन साहब के सुरसिंगारवादन से रागों का क्रमिक विस्तार भी सीखा, सदारंग की परम्परा ही केवल ऐसी परम्परा थी, जिसमें गान और वादन दोनों की सिद्धि कराई जाती थी। अलाउद्दीन खाँ हों या हाफिजअली खाँ दोनों ने ही अपने ज्ञान और प्रस्तुतीकरण की कला से यश कमाया, अपनी परम्परा के प्रति इनकी पूर्ण निष्ठा रही। इसीलिए अलाउद्दीन खाँ ने अली अकबर खाँ और रविशंकर जैसे यशस्वी शिष्य उत्पन्न किए।

भातखण्डेजी ने रामपुर से ज्ञान तो लिया, परन्तु वे ख़याल के रसिया थे। सदारंग परम्परा ने खयाल याद किए, शिष्यों को सिखाए, परन्तु महफिल में उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खयाल नहीं गाये। वे जानते थे कि तानों, पलटों, जमजमों और तहरीरों में राग का शुद्ध रहना सम्भव नहीं और जब तक गायकी में यह सब कुछ न हो, तब तक वह खयाल गायकी नहीं कहलाएगी।

खयाल के प्रति अपने आत्यन्तिक अनुराग के कारण स्व० भातखण्डेजी ने अपने अनुयायियों को अन्य घरानों का शिष्य कराया, जिनकी कला में सदारंग परम्परा के चैन का दर्शन दुर्लभ था। भातखण्डेजी के अपने अनुयायी अपने गुरु खयाल गायकों में राग की शुद्धता की दृष्टि से कुछ कमियाँ देखते थे। प्रत्यक्ष सत्य यह है कि रामपुर-परम्परा के शिष्य अलाउद्दीन खाँ ने ही श्रेष्ठ कलाकार उत्पन्न किए। ये लोग टकसाली बन्दिशों से सम्पृक्त रहे, इनके मन में द्विविधा उत्पन्न न हुई। अस्तु।

बन्दिशें लोग आज भी कर रहे हैं, परन्तु उन्हें टकसाली, मुहरबन्द या प्रमाणित रूप देने वाला केन्द्रीय प्रतिष्ठान कहाँ है? ऐसी दशा में ये बन्दिशें मासिक पत्रों या अपने रचयिताओं तक सीमित रहती हैं।

बन्दिशें बनाने वालों की योग्यता का मानदण्ड क्या है? जो भी कुछ गुनगुनाता है, वह बन्दिश कर डालता है, उस बन्दिश में जीवन का सत्य, राग का सौन्दर्य और बन्दिश की चुस्ती कितनी है, है भी या नहीं, यह निश्चय करने वाला कौन है?

जो बन्दिशें पुरानी कही जाती हैं, उनके अनेक रूप अनेक व्यक्तियों के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं, मूल रूप के निश्चय का उपाय क्या है?

अनेक गुणी अपने बच्चों को छोटा छोड़कर मर जाते हैं, उनके बच्चे रियाज़ करके सुरीले और लयदार बन जाते हैं, इनका राग-सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त सीमित होता है, फिर भी खानदानी कलाकार होने का दम्भ इनमें कम नहीं होता, इनकी योग्यता की परीक्षा का उपाय क्या है?

नवीन चिन्तन सदा से होता आया है, परन्तु उस चिन्तन का आधार गुरु-परम्परा होती है। नये राग बनाने वाले इस युग में भी हैं, परन्तु उन्हें पुराने कितने रागों की शिक्षा है, इसकी परीक्षा का उपाय क्या है?

कुछ सुदर्शन एवं सुकण्ठ कलाकारों ने कान्फ्रेंसों में ख्याति अर्जित की है, परंतु इनकी समझ-बूझ के विषय में कुछ न कहा जाना ही अच्छा है। प्रबन्धकों से मधुर सम्बन्ध बनाने में ये कुशल हैं, गुणियों की सभा में इनका दर्शन दुर्लभ है।

अस्तु, आवश्यकता है एक ऐसे प्रतिष्ठान की, जो 'व्यवस्था' उत्पन्न करे, इस सम्बन्ध में अधिकारी व्यक्तियों को स्वयं कहीं एकत्र होना होगा और इस दिशा में स्वावलम्बन से कार्य लेना होगा। •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हजरत अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का जन्म सन् १२५४ ई० में ब्रजभूमि के अन्तर्गत एटा जिले के पटियाली नामक ग्राम में हुआ, गंगा जिसके निकट ही बहती है। इनकी माँ विशुद्ध भारतीय थीं और इनके पिता सैफुद्दीन तुर्क थे। खुसरो के नाना 'रावत' (जमीदार) थे और इनकी उपाधि 'एमादुलमुल्क' थी। खुसरो के नाना का घर भारतीय संस्कृति का केन्द्र था।

खुसरो की मातृभाषा हिन्दी या 'हिन्दवी' थी जिससे उन्हें अत्यन्त प्रेम था, तुर्की उनकी पितृ-भाषा थी और उस समय बोली जाती थी। फ़ारसी उस समय की राजभाषा थी, जिसमें गद्य और काव्य लिखकर खुसरो महाकवि कहलाए, अरबी इनकी धार्मिक भाषा थी और ब्राह्मणों के अनुग्रह भाजन होने के कारण ये संस्कृत भी जानते थे। अपनी अत्यन्त परिपक्व अवस्था में इन्होंने भारतीय ब्राह्मणों को अरस्तू के समान कहा है और उनके प्रति अत्यन्त आदर व्यक्त करते हुए स्वयं को उनका शिष्य और कृपापात्र कहा है।[1]

संक्षिप्त जीवनी

खुसरो का वास्तविक नाम अबुल्हसन था। चार वर्ष की आयु में ये अपने पिता के साथ दिल्ली गये। छह वर्ष की आयु में खुसरो अनाथ हो गये, क्योंकि १२६० ई० में इनके पिता एक युद्ध में मारे गये, अतः खुसरो का पालन-पोषण और प्रशिक्षण उनके नाना की देखरेख में हुआ।

छब्बीस वर्ष की आयु (१२७९ ई०) में खुसरो मुलतान चले गये जहाँ बादशाह बलबन का बड़ा लड़का सूबेदार था। खुसरो की प्रसिद्धि उस समय तक एक महाकवि के रूप में हो चुकी थी और मुलतान में उनका सम्पर्क शैख बहाउद्दीन ज़करिया जैसे महान् सुहरवर्दी सूफी और संगीतज्ञ के पुत्र शैख कदवा के साथ रहा जो शाहजादा मोहम्मद के यहाँ होने वाली संगीत की महफिलों में झूम-झूमकर नाचते थे।[2]

१२८५ ई० में शाहजादा मोहम्मद मंगोलों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया और अमीर खुसरो बंदी हो गये। दो वर्ष तक इन्हें हिरात और बलख में बन्दी जीवन बिताना पड़ा और जैसे-तैसे ये वहाँ से भाग निकले और बादशाह बलबन के दरबार में पहुँचे।

---

१. खिलजी कालीन भारत पृष्ठ १८० पर उद्धृत, खुसरो कृत 'नुहसिपहर'।

२. आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ० १७१, १७२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलबन की सेवा में पहुँचकर अमीर खुसरो ने उसे अपना लिखा हुआ वह 'मर्सिया' (शोक-गीत) सुनाया जो शाहजादा मोहम्मद की मृत्यु के विषय में लिखा गया था। उसकी करुण भावनाओं से द्रवित होकर बादशाह बलबन इतना रोया कि उसे ज्वर चढ़ आया और तीसरे दिन उसका देहान्त हो गया।

तत्पश्चात् अमीर खुसरो ने मीर अली जामदार का आश्रय लिया और जब वह अवध का सूबेदार हुआ तब ये उसके साथ अवध चले गये और दो वर्ष पश्चात् १२८८ ई० में दिल्ली लौटकर सम्राट कैकुबाद के आश्रित हो गये, जो स्वयं भी एक भारतीय नारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसके पश्चात् खुसरो क्रमशः जलालुद्दीन खिलजी (रा० का० १२९०-९६ ई०), अलाउद्दीन खिलजी (रा० का० १२९६-१३१६ ई०), कुतुबुद्दीन खिलजी (रा० का० १३१६-२० ई०), गयासुद्दीन तुगलक (रा० का० १३२०-१३२५ ई०) के आश्रय में रहे। मोहम्मद तुगलक (रा० का० १३२५-१३५१ ई०) के राज्याभिषेक के कुछ ही महीनों पश्चात् अमीर खुसरो स्वर्गवासी हो गये और अपने पीर निजामुद्दीन चिश्ती की कब्र के पास ही दफनाये गये।

खुसरो का संगीत ज्ञान

खुसरो का संगीत गुरु कोई नहीं था परन्तु उन्होंने जब छत्तीस वर्ष की आयु (१२९० ई०) में 'किरानुस्सादैन' की रचना की तो उसमें लिखा कि मुझे ईरानी संगीत का ज्ञान भलीभाँति है, सम्भवतः ये मुलतान के संगीतज्ञों के सत्संग का परिणाम था।

अपनी मृत्यु से प्रायः पांच वर्ष पूर्व कुतुबुद्दीन खिलजी के राज्यकाल में अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'नुहसिपहर' की रचना की जिसमें अमीर खुसरो ने कहा है— "संसार के किसी भी देश के संगीत को भारतीय संगीत के समान नहीं कहा जा सकता, यहाँ का संगीत मन तथा प्राणों में ज्वाला भड़का देता है। संसार के विभिन्न भागों से संगीत सीखने लिए लोग भारत में आए, परन्तु वर्षों प्रयत्न करने पर भी वे सफल न हुए।

यहाँ का संगीत मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं तक को प्रभावित कर देता है। भारतीय संगीत से हरिण कृत्रिम निद्रा में निमग्न होकर शिकार हो जाते हैं। यदि कोई अरब के संगीत से भारतीय संगीत की तुलना करे, तो मैं कहूँगा कि संगीत के सहारे यात्रा करने वाले ऊँटों को चलने का तो होश रहता है, परन्तु भारतीय संगीत के द्वारा मोहित हरिण तो सर्वथा चेतनाहीन हो जाते हैं।"[३]

खुसरो के एक अन्य ग्रन्थ 'एजाज-ए-खुसरवी, से ज्ञात होता है कि वे भारतीय संगीत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए भारतीय और अभारतीय संगीतज्ञों की प्रतियोगिता भी कराते थे।

उपर्युक्त उद्धरणों से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि खुसरो ईरानी संगीत

---

३. नुहसिपहर (खिलजी कालीन भारत पृ० १८० पर उद्धृत)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के भी मर्मज्ञ थे और भारतीय-देशी संगीत में इतने रमे हुए थे कि उन्होंने संसार भर के संगीत को भारतीय संगीत की अपेक्षा कहीं हीन समझा।

'नुह सिपहर' की रचना के समय अमीर खुसरो की आयु छियासठ वर्ष थी, परन्तु उसमें न तो वे स्वयं को किसी नये राग का आविष्कर्ता कहते हैं और न किसी नवीन वाद्य का उद्भावक। वे स्वयं को ब्राह्मणों का परम भक्त कहते हैं, अतः उनकी दृष्टि में गोपाल नायक का आदरणीय होना ही सम्भव है। गोपाल नायक का एक ध्रुवपद सिद्ध करता है कि उन्होंने सम्राट अलाउद्दीन खिलजी की सेवा में प्रस्तुत होकर उसके प्रताप का वर्णन किया था।[4]

खुसरो के विषय में प्रसारित भ्रान्त धारणाओं का निराकरण

अमीर खुसरो के युग से बहुत पहले कव्वाली प्रचलित थी। खुसरो के जन्म से पूर्व सुलतान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (रा० का० १२१०-१२३५ ई०) के दरबार में काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी के कव्वाल महमूद की बड़ी ख्याति थी।[5] अतः अमीर खुसरो को कव्वाली का आविष्कारक कहना उपहासास्पद है।

अबुल्फजल ने अकबर के युग में रचित अपने ग्रन्थ 'आईने अकबरी' में कहा है कि अमीर खुसरो ने 'समित' और 'तातार' की सहायता से 'कौल' और 'तराना' का आविष्कार किया, परन्तु ये धारणा भी भ्रान्त है क्योंकि खुसरो के जन्म से पूर्व कैकुबाद के यग में भी कौल गाये जाते थे।[6]

मोहम्मद करम इमाम ने सन् १८५४ में लिखित अपने ग्रन्थ 'मअदन्-उल-मूसिकी' में अमीर खुसरो को सितार और तबले का आविष्कारक कह मारा है, यह भी एक अनर्गल कल्पना है क्योंकि न तो अमीर खुसरो अथवा उनके किसी सम-सामयिक ग्रन्थकार ने कहीं 'सितार' का उल्लेख किया है, न मोहम्मद शाह रंगीले के समय तक लिखे हुए ग्रन्थों में 'सितार' या किसी सितारवादक की चर्चा है और न ईरानी सितार के साथ ही वर्तमान भारतीय सितार का कोई सम्बन्ध है।

सितार में बजने वाली पुरानी से पुरानी गतें 'फीरोजखानी' कहलाती हैं। 'फीरोजखाँ' की ही मुद्रा 'अदारंग' है, जिनके पिता खुसरो खाँ ने सितार का आविष्कार किया। मुगलसम्राट शाहआलम ने १७९८ ई० में संकलित अपने ग्रंथ 'नादिरातिशाही' में भारतीय वाद्यों के अन्तर्गत सितार की चर्चा पहली बार की है। मोहम्मद शाह रंगीले के समवर्ती दरगाह कुली खाँ के द्वारा उल्लिखित कलाकारों की सूची में किसी भी तबलावादक का उल्लेख न होना इस बात का पुष्टतम प्रमाण है कि तबले का आविष्कार भी रंगीले के युग के पश्चात हुआ है।[7]

---

४. देखिए, 'ध्रुवपद और उसके आश्रयदाता' नामक लेख में अलाउद्दीन खिलजी का वृत्तान्त।
५. आदि तुर्ककालीन भारत पृष्ठ ३०१
६. वही पृष्ठ २३२
७, 'मुसलमान और भारतीय संगीत' पृष्ठ ७९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमीर खुसरो का सांगीतिक महत्व

सत्रहवीं शताब्दी में व्यंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित ने अपने ग्रन्थ 'संगीत सुधा' में विद्यारण्य मत का उल्लेख किया है जिसमें पचास रागों को मेलों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है।

विद्यारण्य खुसरो के सम-सामयिक थे और उन्होंने सन् १३३६ ई० में हरिहर और बुक्क को उत्साहित करके विजयनगर साम्राज्य की स्थापना कराई थी। उस समय दिल्ली से बलात् हटाकर मोहम्मद तुगलक द्वारा देवगिरि में बसाए हुए कलाकार विजयनगर में भागकर आ बसे थे, क्योंकि मोहम्मद तुगलक की आज्ञा के अनुसार पुनः दिल्ली जाकर बसने में उन्हें प्राण-संकट दिखाई देता था। हरिहर और बुक्क अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल में दिल्लो के कारागार की यन्त्रणा सह चुके थे, इसीलिए कलाकारों को उनसे सहानुभूति की आशा थी।

परिस्थितियों से यह सिद्ध होता है कि गोपाल नायक और अमीर खुसरो के पारस्परिक सहयोग से 'चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय' की स्थापना हुई जिसमें आलाप, ठाय, गीत और प्रबन्ध ये चार दण्ड हैं जिन पर संगीत का वितान तना हुआ है। इन्हीं दोनों के सहयोग से भारतीय रागों का वर्गीकरण वर्तमान बारह स्वरों में हुआ और यह दृष्टि 'इन्द्रप्रस्थ मत' कहलाई। निजामुद्दीन चिश्ती की दरगाह में ऐसे अनेक हिन्दी गीत गाये जाते हैं, जो अमीर खुसरो की कृति कहे जाते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि ब्रज और हिन्दी के भक्त अमीर खुसरो ने चिश्तिया परम्परा को भी ब्रज के रंग में रंग दिया। 'ए, मां रंग हैं', 'मोहे अपने ही रंग में रंग ले निजाम पिया' जैसी रचनाओं में ब्रज का रंग बोल रहा है, तो 'बहुत कठिन है, डगर पनघट की' में पनघट लीला का प्रभाव है। 'अरब यार तोरो बसन्त मनाऊँ, बसन्त-पंचमी को गाया जाता है, अर्थात् 'वसन्त' खुसरो के द्वारा चिश्ती परम्परा में भी पहुँच गया है। 'छाप-तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिला के' में वाह्य आचारों का परित्याग है, तो 'मैं निजाम से नैना लगाय आई रे' में प्रेमिका की लगन है, यह प्रेमिका विशुद्ध भारतीय है।[८] •

---

८. 'महान् भारतीय हृदय: अमीर खुसरो साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६ नवम्बर १९७५, पृष्ठ ८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानसेन के विषय में कुछ ऐतिहासिक सामग्री

अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कलाकार तानसेन के विषय में कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों में बिखरी पड़ी है। इन इतिहासों और उनके लेखकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—जो प्रस्तुत लेख का आधार हैं—

शेख अबुल फ़जल

शेख अबुल फ़जल और फ़ैज़ी दोनों परस्पर सहोदर थे, इनके पिता शेख मुबारक महापण्डित थे। अकबरी दरबार में इन लोगों का प्रवेश १५७५ ई० में हुआ।

इस समय अकबरी दरबार के आश्रित मियाँ तानसेन का गला अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण अच्छा गाना गाने के लिए उपयुक्त न रहा था। शेख अबुल फ़जल (१५७५ ई० से १५८९ ई०)तक तानसेन के साथ अकबरी दरबार में रहे। २६अप्रैल १५८९ ई० में तानसेन की मृत्यु के पश्चात् ही अबुल फ़जल तानसेन से पृथक् हुए।

'आईने अकबरी' और 'अकबरनामा' अबुल फ़जल के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूंनी

मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूँनी भी अकबरी दरबार में तानसेन के साथ थे। उनके द्वारा लिखित इतिहास-ग्रन्थ 'मुन्तखबुत्तवारीख है।

जहाँगीर

तानसेन पर अत्यन्त अनुग्रह करने वाले सीकरी के सन्त शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से इनका जन्म हुआ था, इसका वास्तविक नाम 'सलीम' था। अपने पिता अकबर की मृत्यु के पश्चात् यह मुगल-सम्राट हुआ। जहाँगीर तानसेन का बहुत बड़ा प्रशंसक था।

'तुजुके-जहाँगीरी' जहाँगीर की डायरी है। 'जहाँगीरनामा' भी इसी के दरबार में लिखा हुआ इतिहास-ग्रन्थ है।

मुजतमद खाँ

मुजतमद खाँ जहाँगीर का आश्रित इतिहास लेखक था। इसके ग्रन्थ का नाम 'इकबालनामा जहाँगीरी' है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाहजहाँ

सम्राट शाहजहाँ के आदेश से बख्शू के एक सहस्र ध्रुवपदों का संकलन 'सहरस' के नाम से किया गया। 'सहरस' की भूमिका ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसे शाहजहाँ ने प्रमाणित किया है।

फखरुल्लाह

यह शाहजहाँ के युग में कश्मीर का गवर्नर था। इसके 'रागदर्पण' के नाम से 'मानकुतुहल' का फ़ारसी अनुवाद किया। तानसेन की संगति करने वाले दीर्घजीवी भगवानदास पखावजी तथा तानसेन के कई शिष्यों के साथ फखरुल्लाह का प्रत्यक्ष परिचय था। 'रागदर्पण' के अन्तिम दो अध्याय इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

इन प्रामाणिक और प्रसिद्ध लेखकों के आधार पर तानसेन के विषय में इतना कहा जा सकता है।

जीवन-सम्बन्धी तथ्य

तानसेन का जन्म-काल

'अकबरनामा' में कहा गया है कि १५६२ ई० में अकबरी दरबार में प्रवेश से पूर्व तानसेन रीवाँ से रिटायर होने का विचार कर रहे थे।

मुल्ला बदायूंनी ने कहा है कि शैख मुबारक के शब्दों में १५७५ई० में तानसेन की आवाज़ जंगली जानवरों जैसी हो गई थी।

तानसेन के बड़े बेटे तानतरंग खाँ अकबरी दरबार के मूर्धन्य गायकों में थे। इन सभी दृष्टियों से तानसेन का जन्म-वर्ष १५०० ई० अथवा इससे पूर्व सिद्ध होता है।

तानसेन के समकालीन किसी भी लेखक ने तानसेन का जन्म-वर्ष नहीं लिखा है। अबुल फजल और अब्दुल कादिर बदायूंनी के कुछ शब्दों से तानसेन के जन्म-वर्ष के विषय में लगभग अनुमान लगाया जा सकता है।

अबुलफजल के अनुसार १५६२ ई० से पूर्व तानसेन रीवाँ-नरेश रामचन्द्र की सभा में थे और वहाँ से 'रिटायर' होने के विषय में विचार कर रहे थे।[1]

मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी के अनुसार १५७५ ई० में तानसेन की आवाज अबुल फजल के पिता शैख मुबारक की दृष्टि में जंगली जानवरों के आवाज जैसी हो गई थी।[2]

हमारी दृष्टि में तानसेन की आवाज में ऐसी खराबी अत्यधिक वृद्धावस्था के

---

१. अकबरनामा, बेवरिजकृत अनुवाद, प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, संस्करण १९१२ ई०, खण्ड २, पृ० २७९।

२. मुन्तखबुत्तवारीख़; डब्ल्यू एच लो कृत अनुवाद, खण्ड २, पृ० २७३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण हो सकती है। उस समय तानसेन की आयु ७५ वर्ष अथवा उससे अधिक होगी।

तानसेन अकबरी दरबार में अत्यन्त अनिच्छापूर्वक आए थे, अकबर की ओर स भेजा हुआ जलाल खाँ कूर्ची उन्हें बलपूर्वक लाने के लिए भेजा गया था।[३] राजा रामचन्द्र ने एक बार प्रसन्न होकर तानसेन को एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ पुरस्कार में दी थीं।[४] अत: लोभ के कारण वे अकबरी दरबार में नहीं आए थे। वे वास्तव में भगवद्भजन के लिए दरबारी जीवन छोड़ना चाहते थे। अकबरी दरबार में वे विवशतापूर्वक १५६२ ई० में गए, उस समय अकबर केवल बीस वर्ष का लड़का था और तानसेन की आयु बासठ वर्ष अथवा उससे अधिक थी।

इन दो साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तानसेन का जन्म वर्ष १५०० ई० अथवा उससे पूर्व था।

अकबर के प्रमुख छत्तीस कलाकारों में तानसेन के बड़े पुत्र तानतरंग खाँ और कई शिष्य भी थे, अत: तानसेन वयोवृद्ध अवस्था में अकबरी दरबार में पहुँचे थे।

काजी मेराज धौलपुरी ने अकबर के समकालीन फजलअलीशाह के ग्रन्थ 'तवारीखे कुल्लियात ग्वालियर' और १८८९ ई० में प्रकाशित 'मुन्तखबुत्तवारिख' के पृष्ठ १३१ का उद्धरण देते हुए लिखा है कि मानसिंह के पुत्र विक्रमाजीत ने तानसेन को 'तानसेन' उपाधि दी।[५]

विक्रमाजीत का शासन-काल १५१६-१५१८ ई० है। यदि १५१८ ई० में भी विक्रमाजीत ने तानसेन को उपाधि दी हो, तो तानसेन की आयु १५१८ ई० में कम-से-कम पच्चीस वर्ष मानना होगा, इस दृष्टि से तानसेन का जन्म १५१८-२५ =१४९३ ई० में चला जाता है और यही अधिक सम्भव है।

इस दृष्टि से अकबरी दरबार में प्रवेश के समय तानसेन की आयु प्राय: ६९ वर्ष और १५७५ ई० में प्राय: बयासी वर्ष प्रतीत होती है, जब उनका कण्ठ-स्वर सर्वथा बिगड़ गया था।

यों कहा जा सकता है कि तानसेन का जन्म वर्ष १५०० ई० से पूर्व लगभग १४९३ ई० भी हो सकता है।

शैख मुहम्मद गौस और तानसेन

'अकबरनामा' के अनुसार शैख मुहम्मद गौस की मृत्यु १० मई १५६३ ई० को अस्सी वर्ष की आयु में हुई।[६] अर्थात् शैख मुहम्मद गौस का जन्म वर्ष १४८३ ई० है। तानसेन का जन्म वर्ष यदि १४९३ ई० माना जाए, तो उस समय शैख मुहम्मद गौस की आयु केवल दस वर्ष सिद्ध होती है, यदि तानसेन का जन्म वर्ष १५०० ई० माना जाये, तो शैख मुहम्मद गौस उस समय सत्रह वर्ष के सिद्ध होते हैं।

---

३. वही, पृष्ठ ३४५।

४. वही, पृष्ठ ३४५।

५. उर्दू-आजकल अगस्त १९५६, पृ० ८७।

६. अकबरनामा, खण्ड २, पृ० १३३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अकबरनामा' के अनुसार शैख मुहम्मद गौस शेर खाँ के भय से गुजरात भाग गए और इन्होंने गुजरात के साथ एक गुप्त संधि की। इस संधि का वृत्तान्त शैख गदाई ने बैरम खाँ को बता दिया। बैरमखाँ ने इन्हें पकड़ा, परन्तु ये किसी प्रकार भागे और १५५९ ई० में ग्वालियर पहुँच कर फकीर हो गए। अर्थात् अपने स्वर्गवास से केवल चार वर्ष पूर्व ये छिहत्तर वर्ष की आयु में फकीर हुए।[७]

ऐसी अवस्था में यदि शैख मुहम्मद गौस के आशीर्वाद से तानसेन का जन्म होने की बात कहें, तो अकबरी दरबार में प्रवेश के समय तानसेन की आयु डेढ़-दो वर्ष माननी पड़ेगी। लोगों को बच्चा पैदा होने की दुआ तो फकीर होने पर ही दी जा सकती है।

'अकबरनामा' के अनुसार तानसेन की मृत्यु २६ एप्रिल १५८९ ई० में आगरा में हुई और अकबर के आदेश के अनुसार शाही गायक-वादक तानसेन की शव-यात्रा के साथ गाते बजाते विवाहोत्सव जैसा मनाते हुए गए और उन्होंने तानसेन को 'सुपुर्दख़ाक' कर दिया।[८] 'अकबरनामा' में यह कहीं नहीं लिखा कि गायक-वादक तानसेन के शव को लेकर ग्वालियर गए और शव ग्वालियर में गाड़ा गया।

शैख मुहम्मद गौस की परम्परा में गाना बजाना 'हराम' है, उनके मकबरे में एक गाने-बजाने वाले के शव को गाते-बजाते लाया जाना और उसका वहाँ गाड़ा जाना शैख मुहम्मद गौस के धार्मिक विश्वासों के प्रतिकूल है। शैख मुहम्मद गौस के मकबरे में तानसेन के गाड़े जाने की बात न तो 'अकबरनामा' में है, न 'मुन्तखबुत्तवारीख' में। यहाँ तक कि मुहम्मद करम इमाम जैसे कट्टर मुसलमान ने अपने ग्रन्थ 'मअदन्-उल्मूसिकी' (रचना काल १८५४ ई०) तक में शैख मुहम्मद गौस के साथ तानसेन के किसी सम्बन्ध की चर्चा नहीं की है।

सम्भव है, शैख मुहम्मद गौस के मकबरे में स्थित कब्र की बात किसी को स्वप्न में सूझी हो।

स्वामी हरिदास और तानसेन

स्वामी हरिदास का जन्म १४८० ई० में हुआ था, अर्थात् मानसिंह तोमर के राज्यारोहण वर्ष १४८६ ई० में हरिदासजी केवल छः वर्ष के थे, पच्चीस वर्ष की आयु १५०५ ई० में हरिदासजी वृन्दावन आए, उस समय मानसिंह तोमर के शासन का उन्नीसवां वर्ष था।

मानसिंह तोमर के द्वारा ब्रजभाषा-ध्रुवपद का आविष्कार सर्वसम्मत है। स्वामी हरिदास जी ध्रुवपद गायक थे, अतः ध्रुवपद-शैली की शिक्षा उन्होंने मानसिंह तोमर के गायकों से ही ली।

यह अत्यन्त मनोरंजक बात है कि हरिदासजी के संगीत गुरु के विषय में

---

७. अकबरनामा, खण्ड २, पृ० १३३-१३५।

८. वही, खण्ड २, पृ० ८८०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिदास का प्रत्येक भक्त सर्वथा मौन का आश्रय लेता है।

ध्रुवपद शैली के जन्म और विकास के यज्ञ में जो बैजू मानसिंह तोमर का प्रधान पुरोहित था, उसे भी हरिदास के भक्त हरिदासजी का शिष्य कह देते हैं।

तानसेन को हरिदासजी का शिष्य सिद्ध करने के लिए अठारहवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में हरिदास और अकबर के साक्षात् की एक कहानी भी प्रचारित की गई है। इस साक्षात का समय संवत् १६२७ (१५७० ई०) कहा जाता है।[1]

१५७० ई० में हरिदासजी की आयु नव्वे वर्ष थी और अकबर उस समय अट्ठाईस वर्ष का कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह नव्वे वर्ष के बूढ़े हरिदास जी का गाना सुनने के लिए तानसेन का तानपुरा उठाकर वृन्दावन गया था', यह विश्वास करने के योग्य भक्ति प्रत्येक इतिहास-प्रेमी के हृदय में तो होना असम्भव है।

बड़ी मनोरंजक बात यह है कि इस काल्पनिक घटना का चित्रण जिस चित्र में किया गया है, उसमें अट्ठाइस वर्ष की आयु का अकबर बूढ़ा दिखाया गया है। उसके बाल सफेद हैं, नव्वे वर्ष के हरिदासजी युवक हैं और तानसेन भी भगवान की कृपा से जवान हैं।

ऐतिहासिक तथ्यों का अज्ञान ही ऐसे चित्रों का जन्म देता है।

हरिदासजी भी किसी गायक के शिष्य कहे जाएँ, यह बात भक्तवृन्द को रुचती नहीं और बैजू अथवा तानसेन हरिदासजी के शिष्य न कहे जाएँ, इससे बड़ी अभद्रता भला क्या हो सकती है।

तानसेन की जाति

ग्वालियर के संगीत जीवी ध्रुवपद गायक अबुल्-फज़्ल की भाषा में 'कलावन्त' कहलाते थे। अबुल-फज्ल ने 'कीर्तनिया' लोगों के अतिरिक्त किसी वर्ग को ब्राह्मण नहीं कहा। वैसे तो आजकल भी हिन्दू संगीत जीवी जातियों में उत्पन्न व्यक्ति 'ब्राह्मण' होने के लिए आकाश पाताल एक करते हैं परन्तु सूत, मागध, बन्दीजन और नट इत्यादि हिन्दू संगीत जीवी जातियों की ही आनुवंशिक आजीविका संगीत है। तानसेन भी एक हिन्दू संगीतजीवी जाति में उत्पन्न हुए थे।

तानसेन का गुरु

तानसेन को दरबारी जीवन बिताना था, उन्हें दरबारी संगीतज्ञों से दरबारी कला की प्राप्ति हुई। इन्हीं लोगों की संगति में रहते-रहते यह किसी मुस्लिम रूपाजीवा के सम्पर्क में आए और नवयौवन में इनके दो पुत्र तानतरंग खाँ और बिलास खाँ हुए। यह बिलास खाँ ही जहाँगीर के दरबारी गायक लाल खाँ के ससुर थे। तानसेन की किसी पुत्री की चर्चा किसी प्रामाणिक इतिहासकार ने नहीं की है। 'रागदर्पणकार' फखरुल्लाह ने स्पष्ट लिखा है कि लाल खाँ अपने बाल्यकाल में तानसेन के पास आ गए थे और तानसेन ने बिलास खाँ की पुत्री का विवाह लाल खाँ से कर दिया था। तानसेन की हिन्दू पत्नी से सूरतसेन उत्पन्न हुए थे।

---

१. कृष्ण भक्ति काव्य में सखी-भाव, पृ० ४३८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न तो तानसेन को आरम्भ से बाबाजी बनना था और न तानसेन जैसे आचार विचार वाले व्यक्ति को संगीत-शिक्षा देने के लिए स्वामी हरिदास जैसे श्याम-श्यामा रस मग्न सन्त के पास अवकाश था, अतः तानसेन ने दरबारी संगीत की कला ग्वालियर के गुणियों से ही ली।

'मुन्तखबुत्तवारीख' के अनुसार बाजबहादुर और तानसेन, दोनों ही सूर सुल्तान अदली के शिष्य थे, अदली मुकाम-पद्धति का अच्छा पण्डित था।[१०] और १५५४ ई० में बादशाह हुआ था।

तानसेन का धर्म

तानसेन जन्मतः हिन्दू थे, उस युग में रूपाजीवाओं के प्रति आसक्ति शान की बात समझी जाती थी। तानसेन भी किसी मुस्लिम रूपाजीवा के सम्पर्क में आए थे, जो तानतरंग खाँ और विलास खाँ की जननी थी, परन्तु सूरतसेन की माँ तानसेन की हिन्दू पत्नी थी। अकबरी दरबार में प्रवेश के पश्चात् शैख सलीम चिश्ती के निकट सम्पर्क में आने का अवसर तानसेन को मिला। शैख सलीम चिश्ती तानसेन का गाना बहुत पसन्द करते थे, यहाँ तक कि अपनी मृत्यु के दिन भी शैख सलीम ने तानसेन का गाना सुना था।[११] शैख सलीम चिश्ती के प्रति भक्ति के कारण ही अकबर ने सीकरी को अपनी राजधानी बनाया था।

बादशाह शैख सलीम चिश्ती का मुरीद था, उन्हीं के आशीर्वाद से १५६९ ई० में सलीम (जहाँगीर) का जन्म हुआ था, अतः तानसेन भी सम्भवतः शैख सलीम चिश्ती के मुरीद हो गए थे।

तानसेन की शव-यात्रा के साथ गाना-बजाना विवाहोत्सव जैसा मनाया जाना उन्हें हिन्दू ही सिद्ध करता है, चिश्ती परम्परा के सन्तों के जनाजे के साथ गाने की परम्परा निजामुद्दीन चिश्ती के जनाजे से आरम्भ हुई, जिसे मुहम्मद तुगलक ने भी कन्धा दिया था।[१२]

अस्तु, इस तथ्य का साधक कोई प्रमाण नहीं कि तानसेन ने विधिवत् इस्लाम धर्म अंगीकृत किया था।

'रागमाला' नामक एक पुराने ध्रुवपद-संग्रह में तानसेनकृत एक ध्रुवपद संगृहीत है, जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि तानसेन सूफी-सम्पर्क में रहने पर भी पुनर्जन्मवादी रहे। ध्रुवपद का शुद्ध पाठ यों हैं :

मेरे तौ अलह नाम कौ आधार, जिनिर चौ संसार, काम, क्रोध, लोभ तजि जंजार।
जिनि रचौ अरस कुंरस जिमीं असमान निरंकार, सांचौ क्यों न जपौ परवरदिगार॥
जाहीं तें जिह गुन पायौ, साँचे तुम सेख वार वार कहे तिहि नाम भुजवार।
कहैं मियां तानसेन पाक साफ़ रहिये, जातें जनम जीतब नाहिं बार-बार॥[१३]

---

१०. मुन्तखबुत्तवारीख, खण्ड १, पृ० ५५७।
११. तुजुके जहाँगीरी, खण्ड २, पृ० २१।
१२. निजामीबंसरी, पृ० ३३७।
१३. संगीत चिंतामणि, पृ० ४८२।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह ध्रुवपद खण्डित रूप में आज भी गाया जाता है, जिसमें से तानसेन को पुनर्जन्मवादी हिन्दू सिद्ध करने वाले शब्द 'जा तें जनम जीतब नाहिं बार-बार' कुशलतापूर्वक गायब कर दिये जाते हैं।

तानसेन की योग्यता

जहाँगीर के शब्दों में तानसेन अकबरी दरबार के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ और उच्चकोटि के कवि थे।[१४] 'इकबालनामः जहाँगीरी' के अनुसार तानसेन ने अपने अनेक ध्रुवपदों में अकबर का नाम डाल दिया।[१५] अबुलफज्ल के अनुसार तानसेन ने अपने विनम्र और सरल स्वभाव के कारण अकबरी दरबार के कलाकारों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया और संगीत में विकास करने के साथ-साथ वस्तुओं (बन्दिशों) के विषय में परिवर्तन किया।[१६]

'सहसरस' की भूमिका के अनुसार तानसेन गान-कला के उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए कलाकार थे। यद्यपि अकबर के दरवार में अच्छे ध्रुवपदकार और गायक थे, तथापि ध्रुवपदों की रचना और गान में तानसेन जैसा कोई न था। शैली की परिपक्वता और गान-सौन्दर्य के कारण अकबर ने तानसेन को 'कण्ठाभरण-वाणीविलास' उपाधि दी थी। तानसेन का कण्ठ स्वर अत्यन्त परिपुष्ट और पाटदार था। यद्यपि तानसेन को अकेले गाने का आदेश दिया जाता था, तथापि वह सर्पदाइयों (स्वरप्रदायियों अर्थात् साथ-साथ स्वर लगाने या स्वर देने वाले) लोगों के साथ गाते थे। शाही दरबार के गायक तानसेन की रचनाओं का अत्याधिक सम्मान करते थे।[१७]

तानसेन भारतीय मूर्च्छना-पद्धति के भी मर्मज्ञ थे और सुलतान अदली की शिष्यता से उन्हें ईरानी-पद्धति की कव्वाल-शैली पर भी अधिकार प्राप्त हुआ था।

'अकबरनामा' के अनुसार तानतरंग खाँ अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में थे।

'रागदर्पण' के अनुसार विलास खाँ तानसेन के छोटे पुत्र थे। 'रागदर्पण' के अनुसार ही हमीरसेन और सूरतसेन भी तानसेन के पुत्र थे, रागदर्पणकार का प्रत्यक्ष परिचय इन लोगों से था। सूरतसेन, सोहिलसेन और सुधीन सेन का संक्षिप्त विवरण भी रागदर्पणकार फखरुल्लाह ने दिया है।

मिसरी खाँ ढारी विलास खाँ का शिष्य और ढारी होने के कारण संगीत-जीवी जाति में उत्पन्न व्यक्ति था।[१८]

---

१४. तुजुके जहाँगीरी, अनुवादक अलेक्जेंडर रोजर्स, खण्ड १, पृ० ४१३।

१५. अकबर-नामा, अनुवादक बेवरिज, खण्ड २, पृ० २७९ की पाद-टिप्पणी।

१६. वही। पृ० वही।

१७. सहसरस' भूमिका, पृ० १२, संगीत नाटक-एकेडमी प्रथम संस्करण १९७२।

१८. (सदारंग के वंशजों ने अपने आपको तानसेन की परम्परा से सम्पृक्त करने के लिए एक काल्पनिक समोखनसिंह, नबातखां और मिसरी सिंह की कथा गढ़ डाली है। सदारंग के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागदर्पणकार के अनुसार लाल खाँ विलास खाँ का दामाद था, जिसे शाहजहाँ ने गुनसमन्दर खाँ उपाधि दी थी। मुगल दरबार में तानतंरग खाँ के पश्चात तानसेन का स्थान लाल खाँ को दिया जाना यह सिद्ध करता है कि तानसेन के पुत्र तानतंरग खाँ और विलास खाँ पुत्रहीन थे।

"औरंगजेब नाया" के अनुसार लाल खाँ के चार पुत्र थे, खुशहाल खाँ, विसराम खाँ रसबैन खाँ तथा एक और। इनके चौथे पुत्र का नाम औरंगजेबनामा में नहीं है।

मियाँ चन्द और रंग खाँ (रंगसेन) भो रागदर्पणकार के अनुसार तानसेन के शिष्य थे।

अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची में मियाँ चन्द का स्थान पाँचवाँ, तानतंरग खाँ का चौदहवाँ और रंगखाँ (रंग सेन आगरा निवासी) का इक्कीसवाँ है। रागदर्पणकार के अनुसार बख्त खाँ भी तानसेन के शिष्य थे और बसन्ती बख्तखाँ के शिष्य थे।

औरंजेबनामा के अनुसार १६७२ ई० में बिसराम खाँ की मृत्यु हुई और औरंगजेब ने बिसराम खाँ के पुत्र भूपत खाँ को मातमी खिलअंत दी।

तानसेन की परम्परा का पूर्वोक्त प्रमाणंक विवरण अकवर, जहांगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजेव के दरबार से सम्बन्ध इतिहासकारों के आधार पर है।

तानसेन से सम्बद्ध भ्रान्तियाँ और उसका मूल

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वामी हरिदास जी के सम्प्रदाय से सम्बद्ध पुस्तक 'निजमत-सिद्धान्त-सार' और वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध दो सौ बावन वैठावन की रचना हुई। इन दोनों सम्प्रदायों ने तानसेन को अपने-अपने सम्प्रदाय से सम्बद्ध करने के लिए विचित्र-विचित्र कहानियों की सृष्टि की। तानसेन के विषय में इन दोनों सम्प्रदायों की कहानियाँ परस्पर विरोधी तो हैं ही, इतिहासविरुद्ध भी हैं। यदि इन दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थकारों ने 'अकबरनामा' मुन्तखबुतवारिख, जहाँगीरनामा, तुजुके जहाँगीरी, इकबालनाम : जहाँगीरी, 'रागदर्पण' औरंगजेबनामा, जैसे ग्रन्थ पढ़े होते तो, काल्पनिक कहानियों की सृष्टि न हो पाती।

तानसेन को अपनी परम्परा से सम्पृक्त करने की दौड़ में शैखमुहम्मद गौस की परम्परा के लोग काफी पिछड़ गये। इन लोगों ने शैख मुहम्मद गौस और तानसेन के पारस्परिक सम्बन्ध वाली कहानियाँ उन्नीसवीं शताब्दी में गढ़ी।

शिवसिंह सरोज मिश्रबन्ध विनोद' के माननीय रचयिताओं ने साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर ही तानसेन के विषय में मत प्रकट किये। डा० सुनिति कुमार चटर्जी और विसेण्ट स्मिथ को भी अधिक व्यस्तता के कारण तथ्यों की खोज के लिए प्रर्याप्त अवसर न मिला।

समकालीन दरगाह कुली खां ने सदारंग को समसामयिक अनेक गुणियों का शिष्य कहा है। तानसेन की काल्पनिक पुत्री की काल्पनिक सन्तानों के द्वारा प्रस्तुत वंश-वृक्ष सर्वथा इतिहासविरोधी, अनुपयुक्त एवं असंगत है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन सज्जनों को तानसेन विषयक दन्तकथाएँ पढ़ना हों, वे निम्नलिखित ग्रन्थ देखने का कष्ट करें :

मिश्र बन्धु विनोद, भाग १ पृ० ६,२८२,२८३,३०३,२७६
शिव सिंह सरोज, पृ० ४२६,४०२
ए स्केच आव् हिन्दी लिटरेचर पृ० ३६
नेशनल फ्लैग एण्ड अदर एसेज पृ० ७७,८१,८४
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० ६,४७५, ४७६,१६१,१६३
अमर कलाकार तानसेन
विलावल अंक संगीत कला पृ० ६,५८,५६,६०
अकवर दी ग्रेट मुगल पृ० ४२२
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ६,६८,७७
कविता कौमुदी भाग १, पृ० २३०
भक्तमाला नामादास पृ० ६०६
हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग १ पृ० ५८
निजमत सिद्धान्त-सार
हमारे संगीत रत्न पृ० १६१,५४६,५१२
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० ५८-११४

आज संगीत प्रमुख विश्वविद्यालयों में पाठ्य विषय हैं। संगीत के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए इतिहास का अध्ययन अनिवार्य है। सत्य की खोज प्रत्येक विद्यार्थी का कर्त्तव्य है। प्रस्तुत लेख का प्रयोजन कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाश में लाना है, संयोगवश जिन तक लोगों की दृष्टि अभी तक नहीं पड़ी है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'उत्तम' गाना

गाने-बजाने वालों में एक कहावत प्रसिद्ध है—"उत्तम 'गाना, मध्यम 'बजाना,' अधम 'नाचना', विकट 'बताना।' गाने की उत्तमता उसकी प्रमुखता में है, वादन को गाने का अधीन, अनुवर्ती अथवा सहायक रहना होता है। वादकों द्वारा गाने की 'सङ्गति' की जाती है। वादक स्वतन्त्र नहीं, परतन्त्र होता है।

सारङ्गी, वीणा, वंशी इत्यादि वाद्य गाने के स्वर-पक्ष की सङ्गति करते हैं, तबला, मृदङ्ग इत्यादि, गाने में आने वाले व्यञ्जन-समूहों की गति का साथ निबाहने की चेष्टा करते हैं, नर्तक साहित्य-पक्ष के भावों को मूर्त करने लिए प्रयत्नशील रहते हैं, परन्तु गीत की भाषा का अनुकरण किसी निर्जीव उपकरण के द्वारा सम्भव नहीं। अतः प्रमुख गायक के 'गीत' की पूर्ण सङ्गति सहायक गायक अथवा गायिका के द्वारा ही सम्भव है।

एक कहावत है :—"जलो, कण्ठ बिन, राग।" यदि गायक को प्रकृति ने अच्छा कण्ठ नहीं दिया है, तो उसके द्वारा राग की अन्त्येष्टि सुविधापूर्वक हो जायेगी। "जलो कण्ठ, बिन राग।" यदि कण्ठ है और राग की शिक्षा नहीं है, तो भी स्थिति शोचनीय है। कोकिल के कण्ठ की प्रशंसा सर्वत्र होती है, परन्तु उसे गायिका कोई नहीं मानता।

यदि 'राग' अमृत है, तो 'ताल' उसके लिए कुम्भ है। पात्रहीन अमृत बहा बहा फिरेगा, उचित रूप में प्रतिष्ठित, सुसज्जित अथवा सुरक्षित नहीं रहेगा।

गायक का दायित्व महान् है। केवल बन्दिशें रट लेने से कोई अच्छा गायक नहीं हो सकता। श्रेष्ठ गायक का प्रगाढ़ परिचय 'गेय राग' से होना चाहिये। रागविशेष के 'वर्ण' या 'चलन' की युक्तियुक्तता का ज्ञान गायक की श्रेष्ठता के लिए परमावश्यक है। यदि किसी 'बन्दिश' में किसी निरक्षर, अशिक्षित अथवा अतत्वज्ञ व्यक्ति के प्रमाद से कोई विकार आ गया है, तो श्रेष्ठ गायक उस 'बन्दिश' का परित्याग कर देगा। हाँ अविवेकी कलाकार वैसी बन्दिशों से भी चिपटा रहेगा। उसे यह समझाया जाना कठिन है कि प्रत्येक 'स्वर्गीय' व्यक्ति 'सदारङ्ग' नहीं होता।

राग और लय के अतिरिक्त 'बन्दिश' के साहित्य का बहुत बड़ा महत्व है। बन्दिश के साहित्य-पक्ष का प्राण, श्रेष्ठ गायक के समक्ष सदैव मूर्त रहता है। यदि वह गेय वस्तु के अर्थ को नहीं समझेगा, तो अपनी कला में अनुभूति कहाँ से लायेगा? अनुभूति हीन गाना तो व्यायाममात्र है। भले ही वह थोड़ी देर के लिए श्रोताओं को चमत्कृत कर दे, उनकी सुध-बुध कैसे बिसरायेगा।

गाने में उच्चारण का बड़ा महत्व है। गेय शब्दों का यथार्थ उच्चारण गायक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की सफलता में सहायक होता है।

अक्षरशत्रु गायक और स्वरशत्रु साहित्यकार, दोनों ही से दूर रहना अच्छा है। अक्षरहीन गायक 'अर्थ' का अर्थ केवल 'पैसा' समझेगा और सङ्गीतशत्रु कवि आपके सामने शब्दों के ढेले लुढ़का देगा, जो सङ्गीतकला के लिए सर्वथा दुष्पाच्य होंगे।

सङ्गीत के वाणी-पक्ष और गेय पक्ष, दोनों का स्रष्टा, 'वाग्गेयकार' कहलाता है। वाग्गेयकार सत्कवि और श्रेष्ठ संगीतज्ञ का समन्वित व्यक्तित्व होता है। ऐसे व्यक्ति की कृतियाँ ही गायक को सम्मान दिलाती हैं।

संगीत-जगत् में आज जिसे 'चीज़' कहा जाता है, वह वास्तव में संगीत के एक पारिभाषिक शब्द 'वस्तु' का अनुवाद है और 'बन्दिश' एक अन्य पारिभाषिक शब्द 'प्रबन्ध' का। 'प्रबन्ध' अर्थात् 'प्रकर्षपूर्ण बन्ध' में सभी तत्व सुनिबद्ध होना चाहिये। 'प्रबन्ध' बड़े, मँझोले और छोटे हो सकते हैं।

'बन्दिश' शब्द एक कसाव, एक सुघड़पन का बोध कराता है। 'चुस्ती' बन्दिश का गुण है और 'सुस्ती' (शैथिल्य) उसका दोष है।

'चीज़ों' का विशाल भण्डार परिश्रमपूर्वक इकट्ठा करने का महत्वपूर्ण कार्य इस युग से ऐसे तपस्वियों ने भी किया है, जिनकी मातृभाषा 'हिन्दी' नहीं थी, उनके ऋण से उऋण तभी हुआ जा सकता है, जब कि उन 'चीज़ों' की भाषा को शुद्ध किया जाये। उनमें आये हुए ऐसे विकारों को दूर किया जाये जिन्होंने 'चीज़ों' अथवा उनके अंशों को अर्थहीन बना दिया है। दुष्टार्थ, अनिष्टार्थ अथवा अनर्थ 'चीज़ें, गायक और श्रोता के अन्तस् का स्पर्श कैसे करेंगी। इनसे अच्छे गायकों का निर्माण कैसे होगा !

ऐसा भी समझा जाने लगा है कि शास्त्रीय (!) सङ्गीत में अर्थ का कोई महत्व नहीं है। 'तराना', 'तिरवट', 'सरगम' जैसी चीज़ों के विषय में यह दृष्टिकोण ठीक है, क्योंकि इन चीज़ों में मानव-कण्ठ वाद्यों का अभिनय करता है, परन्तु जिन 'चीज़ों' में एक पक्ष 'भाषा' भी है, वहाँ उसका महत्व किसी भी दृष्टि से कैसे कम किया जा सकता है ?

वीणा, सितार, सरोद, सारङ्गी, वंशी, शहनाई इत्यादि वाद्य 'राग' और 'लय' की अभिव्यक्ति तो कर सकते हैं, परन्तु राग, लय और भाषा का समन्वित रूप अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य केवल मानव-कण्ठ में है, इसीलिए गाना 'उत्तम' कहा गया है। •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्व० दबीर खाँ

उस्ताद दबीर खाँ देश के उन चुने हुए गुणियों में हैं, जिन्हें इस वर्ष संगीत-नाटक-अकादमी के द्वारा पुरस्कृत किया गया है। खाँ साहब के परिवार के साथ हमारे आनुवंशिक सम्बन्ध हैं। इसी रिश्ते से वह मुझे 'बहू-बेगम' कहते हैं।

पिछले महीने महीने खाँ साहब कृपापूर्वक घर पधारे थे। उत्सुकतावश मैंने उनसे अनेक प्रश्न किए। खाँ साहब ने उन सभी के उत्तर दिए। प्रश्नोत्तर का सारांश कुछ इस प्रकार है—

खाँ साहब दबीर खाँ का जन्म १९०७ ई० में हुआ। खाँ साहब का जन्म-स्थान रामपुर (उत्तर प्रदेश) देसी रियासत होने के कारण संगीत का एक प्रमुख केन्द्र था। उस्ताद 'अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद हाफिजअली खाँ-जैसे प्रमुख गुणी रामपुर के गुणियों के सत्संग से लाभान्वित होकर संगीत-जगत में सम्मानित स्थान प्राप्त कर सके हैं। दबीर खाँ साहब के पिता मोहम्मद नजीर खाँ 'प्यारे मियां' को गान और वीणावादन की शिक्षा थी, परन्तु वह भरे यौवन में ही स्वर्गवासी हो गए।

१९१४ ई० में उस्ताद दबीर खाँ साहब की शिक्षा का आरम्भ हुआ। १९२६ ई०तक वह अपने दादा उस्ताद वजीर खाँ साहब की शिक्षा के अनुसार अभ्यास करते रहे। इसी वर्ष वजीर खाँ साहब का स्वर्गवास हो गया। उस्ताद वजीर खाँ साहब, रामपुर नरेश हामिद अलीखां के गुरु थे। उनके स्वर्गवास के पश्चात दबीर खां और उनके चचा सगीर खां को नवाब हामिदअली खां ने अपनी सन्तानों की भाँति रखा। नवाब साहब के स्नेह ने इन दोनों को वजीर खाँ साहब का अभाव खलने न दिया।

सन १९३० ई० में नवाब हामिदअली खाँ का स्वर्गवास हो गया। उन दिनों काली बाबू नामक एक बंगाली सज्जन रामपुर में सरोद सीखते थे, जिन्हें रामपुर जाकर सरोद सीखने की प्रेरणा गौरीपुर के स्व० बृजेन्द्रमोहन राय चौधरी, राज-शाही के श्री बृजेन्द्रमोहन मित्र इत्यादि संगीत-प्रेमी रईसों ने दी थी। काली बाबू की सम्मति से १९३० ई० में सगीर खाँ साहब बंगाल चले गए, जहाँ लोगों ने उन्हें सिर आँखों पर बिठाया। १९३२ ई० में दबीर खाँ साहब भी कलकत्ता चले गए। कलकत्ते ने उन्हें अत्यन्त सम्मान दिया।

दबीर खाँ साहब की पाँच सन्तानें हैं, जिनमें सब से छोटा पुत्र इस समय चौदह वर्ष का है, उसकी शिक्षा हो रही है।

जब अवध के नवाब वाजिदअली शाह को अंग्रेजों ने कलकत्ते में रखा, तब दबीर खाँ के पूर्वज स्व० सादिकअली खाँ वाजिदअली शाह के साथ थे। दबीर खाँ साहब के वंश के प्रति बंगाल की भक्ति बहुत पुरानी है। इसीलिए बंगाल ने दबीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाँ साहब को अत्यन्त सम्मान दिया। रामपुर का स्मरण खां साहब बड़े भावनापूर्ण शब्दों में करते हैं। कहने लगे – "नवाब हामिदअली खाँ साहब के दरबार में हैदरखां गफूर खाँ, नजीर खाँ जैसे गवैये, करीम खाँ, वहीद खाँ, महमूद खाँ जैसे सितारनवाज फिदाहुसेन खां, छुन्नू खाँ और अब्दुल्ला खां सरोदिए, नत्थू खाँ, अजीम खाँ, मसीत खाँ जैसे तवलानवाज, मुन्नन खाँ, बुन्दा खाँ जैसे सारंगीनवाज, गयाप्रसाद और उनके साहबजादे अयोध्याप्रसाद जी जैसे पखावजी, अच्छन महाराज और लच्छू (लुच्चू) महाराज जैसे कथक थे, उस दरबार का भला क्या कहना।"

"कहा जाता है कि आप लोगों के पास कई किस्म की तालीम होती है?" मैंने पूछा। बोले—"ठीक है, तालीम खास, तालीम तसरूफी, तालीम मामूली, ये तीन किस्म की तालीमें हैं। खास तालीम औलादों या उन शागिर्दों के लिए है, जिन में औलाद जैसी गैरत हो। वहादुर हुसेन खाँ साहब ने नवाब हैदरअली खाँ को खास तालीम ही दी थी। तालीम तसरूफी उन शागिर्दों के लिए हैं। जो पेट भरने का गुजारा चाहते हैं, तालीम मामूली उन लोगों के लिए है, जो सिर्फ शौकीन हैं।"

"आचार्य बृहस्पति का कहना है किसी नाई को भी वजीर खाँ साहब ने ध्रुव-पद की तालीम दी थी और सुरबहार वताया था, यह कहाँ तक ठीक है?" मेरा अगला प्रश्न था।

दबीर खाँ साहब बोले—"उन का नाम था—अब्दुर्रहीम। हम लोग उन्हें अब्दुर्रहीम भाई कहते थे। अब्दुर्रहीम भाई को बहुत ध्रुवपद याद थे, सुरबहार भी वह अच्छा बजाते थे। दिन-रात खिदमत कर के उन्होंने हमारे बुजुर्गों के दिल में घर कर लिया था। उनके सामने लोगों की तालीम होती थी। सुनते थे, समझते थे, रिआज करते थे। जलसों में गीत बजाते थे। वल्ला जमादार सितार बजाता था और अच्छा बजाता था।" खाँ साहब ने चुटकी ली।

"उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब और उस्ताद हाफिजअली खाँ साहब दोनों ही आपके दादा के शागिर्द हैं, फिर भी—"मैंने पूछा। खाँ साहब ने कहा—"यह सवाल नाजुक है। हाफिजअली खाँ हों या अलाउद्दीन खाँ, दोनों ही गाते-बजाते हुए आए थे। दोनों का सिलसिला अलग था, तबियत का रुझान अलग था। दोनों ने ही बहुत से गुणियों से फायदा उठाया, जिसे जहाँ से जितना मिल गया। बुन्दा खाँ और मुन्नन खाँ सारंगीनवाज भी मामूली लोग नहीं थे, न रामपुर-दरबार के सरोदिये ही मामूली थे। जिससे जिसका जितना दिल मिल जाए।"

मैंने इस प्रश्न पर अधिक बल न देकर दूसरा प्रश्न किया—"आपके खानदान में बीन के कुछ कायदे हैं। उन्हें आपके खानदान से बाहर कोई जानता है?"

"मैं तो जानता हूँ, दुनिया जाने या न जाने", खाँ साहब ने कहा।

"वह तो बाकायदा लिखे हुए हैं, नवाब रजाअली खाँ साहब के पास मैंने देखे और समझे थे," आचार्य जी बोले।

"नवाब हामिदअली खाँ साहब ने ही उन्हें कलमबन्द कराया था, उसी की एक नकल मेरे पास है।" दबीर खाँ साहब ने बात साफ की।

"खानदान से बाहर के लोगों को आपने बीन क्यों न बताई?" मैंने छेड़ने के लिए पूछा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मजाक है बीन। नानी याद आ जाती है, पखावज के दाएँ और बाएँ का जवाब बीन में ही है। सुर, राग, लय और पखावज के सारे बोल, परन, लड़ी, लड़गूंथ, लड़लपेट, लड़गुथान, गद्दा, धमका, छपका, ठोक, झार एक मुसीबत हो तो हो।" खाँ साहब ने झल्लाकर कहा। फिर बोले "कायदे का पखावजी ही कहाँ मिलता है। रामपुर दरबार के गयाप्रसाद जी के पखावज में बादल भी गरजते थे और 'रिमझिम' भी होती थो। बीन के साथ पखावज ऐसी होना चाहिए, जैसे फुहार पड़ रही हो। ऐसी पखावज तो रामपुर के अयोध्याप्रसाद बजाते हैं। हमारे और उनके बुजुर्गों की संगत सैंकड़ों बरसों से रही है। अब दरबार कहाँ हैं ? मेरे वालिद नजीर खाँ साहब 'प्यारे मियाँ' और पं० अयोध्याप्रसाद की जोड़ी रामपुर दरबार में तैयार हुई थी ? वालिद साहब का इन्तकाल हो गया, मैं कलकत्ते चला आया। अयोध्याप्रसाद या उनकी औलाद को रामपुर में बीनकार नसीब नहीं, मुझे कलकत्ते में वैसा पखावजी नसीब नहीं। किसे बताएँ बीन ? कैसे रियाज करें ? किससे अपनी मुसीबत कहें ?" खाँ साहब ने दुखी होकर कहा।

"दरबार तो अब दुबारा वापस आने से रहे।" मैंने कहा, तो वह बोले—"बीन और पखावज अब दुबारा वापस आने से रही। जब तक सरपरस्ती न हो खाने-पीने से बेफिक्री न हो, आर्टिस्ट तैयार नहीं होता। बंगाल के जिन रईसों ने मुझे कलकत्ते बुलाया, उनकी जमींदारियाँ न रहीं। आज मुझे ट्यूशनें करनी पड़ती हैं, सितार की, गाने की ट्यूशनें। पेट भी तो है। मेरे बड़े बूढ़ों के नाज बादशाह, नवाब, राजा और रईस उठाते थे, वे लोग बेफिक्री से रियाज करते थे, शागिर्द तैयार करते थे। अगर मैहर का सहारा न होता, तो अली अकबर खां और रविशंकर भी तैयार न हुए होते।"

खाँ साहब से मुझे सहानुभूति हुई। खाँ साहब फिर बोले—"बीन सरस्वती जी का साज है। औरतों की खूबसूरत आवाज को बीन की झनकार की मिसाल दी जाती है। बीन का साधना बड़ा नाजुक काम है। यह बजाने वाले पर सवार रहती है। बीस साल के रियाज से बीन कुछ-कुछ काबू में आती है। आज किसे इतना वक्त है, किसे इतनी बेफिक्री है ?"

"आप तो गाते भी हैं ?" मैंने पूछा।

"मुझे गाने की तालीम न होती, तो आज रोटी न मिलती।"

"खयाल-गायकी के बारे में आपका क्या खयाल है ?"

"निहायत नेक खयाल है" खाँ साहब बोले। "बशर्ते राग का धरम रहे। बहलावों में बीन का अंग झलकना चाहिए, राग की बढ़त का शऊर होना चाहिए, आकार साफ होना चाहिए, तान के दाने मोती का मानिन्द साफ होने चाहिए, मात्रा पर काबू होना चाहिए, अलफाज का सत्यानाश नहीं होना चाहिए।"

"आप के बड़े-बूढ़ों ने खयालिए तैयार किए हैं, इनायतहुसेन खाँ साहब को बहादुरहुसेन खाँ साहब ने ही तैयार किया था, भला आप लोगों ने खयाल क्यों न गाया ?" मैंने प्रश्न किया।

"जिसे जिस चीज की तलाश होती थी, उसे वही चीज हमारे यहाँ से मिल जाती। बृहस्पति भाई के परदादा पण्डित दत्तराम जी और बहादुरहुसेन खाँ साहब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

में भाइयों जैसा प्यार था। किसी को किसी से छिपाव न था। पण्डितों का यह खानदान ध्रुवपद, बीन पखावज सितार, तबला सब कुछ पेट में डाले बैठा था। सबूत बृहस्पति भाई हैं। जिसे छू दें, सोना हो जाए। तुम्हारे गले में बीन किस ने बिठाई? यह कव्वाल बच्चों की फिरत, लय पर यह काबू तुम में कहाँ से आया। राग की बढ़त का यह शऊर, लम्बी-लम्बी छूटों पर यह काबू, ये रीत के बहलावे इन बृहस्पति भाई की ही तो इनायत है। या यह सब कुछ कहीं और से आया है? ऐमनी-बसन्त, ऐमनी विहाग, पूरिया विहाग जो गा रही हो, वह अपने शौहर की ही इनायत से तो गा रही हो?"···

मुझे हँसी आ गई। "मेरा जिक्र छोड़िए खाँ साहब" मैंने कहा।

जिक्र क्यों छोड़ूं उस्ताद तो हमारे कई हैं, लेकिन जो गाना कलकत्ते में गा कर आई हो, वह किस की देन है?" खाँ साहब ने कहा।

"मेरे घर की" मैंने हँस कर कहा।

"अब तो कहोगी ही, रामपुर के पण्डितों के घर की बहू हो न"—कह कर खाँ साहब हँसने लगे।

"आप लोगों ने खयाल क्यों न गाया?"—मैंने फिर पूछा।

"तुम्हारे लिए छोड़ दिया।"—बात को टालते हुए खाँ साहब ने कहा और उठ खड़े हुए। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बृहस्पति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi